प्रस्तावना.

वर्तमान समयमें हिंदी भाषा काव्यके प्राचीन वा अर्वाचीन जितने ग्रन्थ देखनेमें आते हैं. उनमेंसे शतांश भी ऐसे ग्रन्थ नहिं निकलेंगे जिनमें कि वैराग्य वेदान्त नीति वा भक्तिरसका स्वाद मिलसके. ऐसे ग्रन्थ जिनमें कि अलङ्कार—नायकादि भेदोंकी भरमार है हजारों मिलते हैं तथा विलासितापूर्ण संसारमें दिन पर दिन नये बनते ही चलेजाते हैं. इन ग्रन्थोंसे सर्वसाधारणको कितना लाभ पहुंचता है सो तो हम नहिं कह सक्ते परन्तु इस समय कविवर भूधरदासजीके दो सवैये याद आगये हैं, उन्हें पाठकोंको सुनाये देते हैं।

राग उदै जग अन्ध भयो, सहजैं सब लोगन लाज गमाई।
सीख विना सब सीखत हैं, विषयानके सेवनकी सुघराई॥
तापर और रचें रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझनकी अखियाँनमें, झोंकत हैं रज रामदुहाई॥ १॥

हे विधि ? भूल भई तुमतें, समझे न कहाँ कसतूरि बनाई ?।
दीन कुरंगनके तनमें! तृण दंत धरे करुणा नहिं आई॥
क्यों न रची तिन जीभन-जे, रसकाव्य करें परको दुखदाई।
साधुअनुग्रह दुर्जनदण्ड, दुहू सधते विसरी चतुराई॥ २॥

हर्षका विषय है कि ऐसे समयमें जब कि भाषा साहित्य केवल मात्र शृङ्गाररसके भरोसेपरही जी रहाथा, जैनकवियोंने उसमें वेदान्त, वैराग्य भक्तिरसका श्रेयस्कर संचार करनेकेलिये अतिशय प्रयत्न किया है. क्योंकि जैनकवियोंके बनाये हुये जितने ग्रन्थ आजतक देखे व सुने गये हैं उनमेंसे किसीमें भी विषयान्ध करनेवाले रसोंका प्रवेश नहिं हुआ है. बल्कि यों कहना चाहिये कि उनके इस बातकी दृढ़ प्रतिज्ञा ही थी. जोकि उनके बनाये हुये नाटक समयसार, प्रवचनचार, बनारसीविलास, द्यानतविलास, ब्रह्मविलास भूधरविलास बुधजनशतसयी, वृंदावनशतसयी आदिग्रन्थोंके देखनेसे भली भांति ज्ञात हो सक्ती है।

पण्डित हेमराजजी बनारसीदासजी, भगवतीदासजी, द्यानतरायजी, भूधरदासजी, रामचन्द्रजी, सेवारामजी (जाट) जिनवख्श (मुसलमान) वृंदावनजी, दौलतरा-

[1-2] (१-२) ये दोनोंकवि-तुलसीदासजीके समकालीन थे.

मजी, विहारीलालजी आदि वडे २ भाषाकवि जैनियोंमें हुए हैं. जिनकी काव्यशक्ति प्रसंशनीय थी. इनमेंसे भैया भगवतीदासजीकृत यह ब्रह्मविलास ग्रन्थ (जिसको एक प्रकारका वेदांत कहनाचाहिये) है. इस ग्रन्थके विषयमें कुछ कहनेसे पहिले हम उक्त कविवरके विषयमें कुछ लिखकर पाठकोंको यथाशक्ति परिचय देना चाहते हैं।

कविवर भगवतीदासजीका जन्म आगरेमें ही हुआ था और वे अपने अन्तसमय-तक प्रायः वहींपर रहे हैं, ऐसा उनके ग्रन्थसे जान पड़ता है. इनके पिताका नाम लालजी था. ये ओसवाल जातिके वणिक थे. इन्होंने प्रशस्तिमें अपना गोत्र कटारिया लिखा है. इनके समयमें औरंगजेव वादशाह मौजूद थे. इनकी जन्मतिथि व मृत्यु तिथिका अभीतक हमें पता नहीं लगा तौ भी उनकी कवितासे जो वि० संवत् १७३१ से १७५५ तकका क्रमशः उल्लेख मिलता है. उससे जान पड़ता है कि, उनका जन्म अ-ठारहवीं शताब्दीके पहिले ही हुआ होगा. इसके पहिले या आगेकी कोई भी कविता अभीतक नहिं मिली है. कवितामें इन्होंने अपना पद व भोग 'भैया' वा 'भविक' तथा एक जगह 'दासकिशोर' भी रक्खा है.

एक दन्तकथासे प्रसिद्ध है कि कविवर केशवदासजी तथा दादू पंथी वावा सुंदर-दासजी और भैया भगवतीदासजी एकही गुरुके शिष्यथे अर्थात् काव्य विषय इन्होंने एकही गुरुसे सीखा था. विद्याभ्यासके पश्चात् तीनों पृथक् २ होगये. कविवर केशव-दासजीने जव 'रसिकप्रिया' ग्रन्थ निर्माण किया तो उसकी एक २ प्रति सहपाठी वा मित्र होनेके कारण वावा सुन्दरदासजी तथा भगवतीदासजीके पास समालोचनार्थ भेजी. भगवतीदासजीने रसिकप्रियाको देखकर एक छंद वनाया, और उसे रसिकप्रियाके पृष्ठपर लिखकर वापिस भेज दिया था. वह यह है.

> वडी नीति लघु नीति करत है, वाय सरत वदवोय भरी।
> फोड़ा आदि फुनगुणी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी॥
> शोणित हाड मांसमय मूरत, तापर रीझत घरी घरी।
> ऐसी नार निरखकर केशव, 'रसिकप्रिया' तुम कहा करी?॥१९॥

(ब्रह्मविलास पृष्ठ १८४)

इसी प्रकार वावा सुंदरदासजीने भी जो कि वैराग्य वेदान्त विषयके अच्छे कवि थे, रसिकप्रियाकी वहुत कुछ निंदा की है. जो कि उनके वनाये हुए सुंदरविलाससे प्रगट है।

इस दन्तकथाके कथनानुसार इन्हें केशवदासजीके समकालीन ही कहना चाहिये परन्तु इतिहास प्रकाशकोंने केशवदासजीका शरीरपात विक्रमसंवत् १६७० में होना लिखा है. इसकारण इस दन्तकथापर विश्वास नहिं किया जा सक्ता. कदाचित् रसिकप्रिया इनके देखनेमें पीछेसे आई हो और फिर यह छंद बनाया हो तो भी संभव हो सक्ता है.

यह ब्रह्मविलास ग्रन्थ यथार्थमें उनकी विक्रम संवत् १७३१ से १७५५ तककी कविताका संग्रह है जो कि सांसारिक कार्योंसे निराकुलित होनेपर समय समय पर बनाया गया है. किन्तु द्रव्यसंग्रह आदिमें इनके मित्र मान-सिंहजीकी कविताका भी प्रवेश है. यद्यपि वह कविता इतनी उत्तम नहीं है. जो इनकी कविताके शामिल की जाय तो भी कविवरने अपने मित्रके उत्साहवर्द्धनार्थ इस ग्रन्थमें स्थानप्रदानकरके यथार्थ मित्रता वा सज्जनताका परिचय दिया है।

भगवतीदासजी संस्कृत और हिंदीके ज्ञाता होनेके अतिरिक्त फारसी, गुजराती मारवाड़ी बंगला आदि भाषाका भी ज्ञान रखते थे, ऐसा अनुमान उनकी कवितामें प्र-योजित शब्दोंसे तथा कोई २ कविता खास गुजराती फारसीमें करनेसे स्पष्टतया हो सक्ता है. तथा ओसवाल जातिकी उत्पत्ति मारवाड़ देशसे होनेके कारण क-विवर भगवतीदासजीकी मातृभाषा मारवाड़ी होनाभी संभव है. क्योंकि इनकी कविता-में यत्र तत्र मारवाड़ी भाषाके (जो कि प्रायः प्राकृत भाषाके शब्दोंसे सुशोभित है) शब्दोंका प्रयोग अधिक पाया जाता है.

इस ग्रन्थके शोधनेका भार ग्रन्थप्रकाशक पं० पन्नालालजीने मुझ अल्पज्ञपर डाला था. यद्यपि मैं काव्य विषयका इतना जानकार नहीं हूं जो ऐसे २ अपूर्वभावविशिष्ट ग्रन्थोंका संशोधन कर सकूं. परन्तु उक्त प्रकाशकजीकी आज्ञाका उल्लंघन करनेको असमर्थ होकर मुझसे जहांतक बना है परिश्रम करनेमें त्रुटि नहीं की है. फिर भी संभव है कि प्रमादवशतः अनेक अशुद्धियां रहगई होंगी. आशा है कि उन्हें पाठक महाशय सुधारके पढ़नेकी कृपा करेंगे.

इस ग्रन्थमें परमात्मशतक और कुछ चित्रबद्धकविता जो पूर्वार्द्धमेंथी और जिसे साथ प्रकाशित करनेकी आवश्यकता समझ अनवकाशवशतः रख छोडी थी वह हमने कठिन २ दोहोंके अर्थसे यथाशक्ति विभूषितकर अन्तमें लगाई है. आशा है कि पाठक महाशय इस क्रमभंग करनेके अपराधको क्षमा करेंगे. इसके अतिरिक्त इस ग्रंथमें य, व, श, ष, स, ख, क्ष, च्छ अनुसार और सानुनासिक संबंधी रदबदलकी त्रुटियां भी विशेष रही होंगी सो पाठक महाशय मुझे अल्पज्ञ बालक जान क्षमा करेंगे.

इस ग्रन्थके संशोधनार्थ ४ प्रतियोंकी सहायता लीगई है. जिनमेंसे एक तो वि० संवत् १७८० की, दूसरी सं. १८०४ की, तीसरी सं. १९२० की और चौथी सं १९५३ की लिखीहुई है. इनमेंसे सं. १७८० की प्रतिसे हमें वहुत कुछ सहायता मिली है. क्योंकि यह प्रति ग्रन्थनिर्माण होनेके थोड़े ही दिन पीछेकी लिखीहुई होनेसे वहुत कुछ शुद्ध है. अन्य प्रतियोंमें अनभिज्ञ लेखकोंकी असावधानीकी परम्परासे वहुत कुछ पाठान्तर पाया गया है.

अन्तमें ग्रन्थकर्त्ता व प्रकाशकमहाशयके परिश्रमपर ,विचार करके पाठकगण इस ग्रन्थसे अपना और अपनी सन्ततिका हितसाधन करेंगे ऐसी आशा करके इस प्रस्तावनाको पूर्ण करता हूं ।

मुम्बयी.
१७-१२-१९०३ ई०

सर्वसज्जनोंका हितैषी दास-

नाथूराम, प्रेमी जैन.

सूचीपत्र.

श्रीवीतरागाय नमः

स्वर्गीय कविवर भैया भगोतीदासकृत

ब्रह्मविलास.

अथ पुण्यपच्चीसिका.

मङ्गलाचरण छप्पय.

प्रथम प्रणमि अरहंत, वहुरि श्रीसिद्ध नमिज्जै।
आचारज उवझाय, तासु पद वंदन किज्जै॥
साधु सकल गुणवंत, शान्तमुद्रा लखि वंदों।
श्रावक प्रतिमा धरन, चरन नमि पापनिकंदों॥
सम्यकवंत स्वभाव धर, जीवजगतमहिं होंहि जित।
तित तित त्रिकाल वंदित 'भविक' भावसहित शिरनाय नित॥१॥

श्रीजिनेन्द्रस्तुति छप्पय.

मोहकर्म जिहँ हस्यो, कस्यो रागादिक नष्टित।
द्वेष सवै परिहस्यो, जागि क्रोधहिं किय भिष्टित॥
मानमूढ़ता हरिय, दरिय माया दुखदायिन।
लोभ लहरगति गरिय, खरिय प्रगटी जु रसायिन॥
केवल पद अवलंवि हुव, भवसमुद्रतारनतरन।
त्रयकाल चरन वंदत 'भविक' जयजिनंद तुह[1] पय[2] शरन॥२॥

---

१ तुम्हारे. २ पद.

श्रीसिद्धस्तुति छप्पय छन्दः

अचल धाम विश्राम, नाम निहचै पद मंडित।
यथाजात परकाश, बास जहँ सदा अखंडित॥
भासहि लोकालोक, थोक सुखसहज विराजहिं।
प्रणमहि आपु सहाय, सर्वगुणमंदिर छाजहिं॥
इहविधि अनंत जिय सिद्धमहिं, ज्ञानप्रान विलसंत नित।
तिन तिन त्रिकाल वंदत 'भविक' भावसहित नित एकचित॥३॥

श्रीआचार्यजीकी स्तुति छप्पय छन्द.

पंच परम आचार, ताहि धारहिं आचारज।
ज्ञान चार संयुक्त, करत उत्तम सब कारज॥
देत धर्म उपदेश, हेत भविजीय विचारत।
जिनवानी जो खिरत, सु तौ निज हिरदै धारत॥
कहत अर्थ परकाशकें, केवलपद महिमा लखत।
जुगसाधुमध्यपरधानपद, आचारज अमृत चखत॥ ४॥

श्रीउपाध्यायस्तुति कवित्त.

द्वादशांगवानी सुबखानी वीतराग देव, जानी भव्यजीवन अनादिकी कहानी है। ताके पाठ करिवेको भेद हृदै धरिवेको, अर्थके उचरिवेको पंडित प्रमानी है॥ पर समुझायवेको ज्ञान उपजायवेको, रूपके रिझायवेको निपुण निदानी हैं। याहीतें प्रमाण मानी सत्य उवज्झायवानी, 'भैया' यों वखानी जाकी मोक्षवधू रानी है॥ ५॥

श्रीमुनिराजकी स्तुति.

दहिकैं करम अघ लहिकैं परममग, गहिकैं धरमध्यान ज्ञानकी लगन है। शुद्ध निजरूप धरै परसों न प्रीति करै, बसत शरीरपै

अलिप्त ज्यों गगन है ॥ निश्चै परिणामसाधि अपने गुणैं अराधि, अपनी समाधिमध्य अपनी जगन है । शुद्ध उपयोगी मुनि राग-द्वेष भये शून्य, परसों लगन नाहिं आपमें मगन है ॥ ६ ॥

श्रावकप्रशंसा.

मिथ्यामतरीत टारी भयो अणुव्रतधारी, एकादश भेद भारी हिरदै वहतु है । सेवा जिनराजकी है यहै शिरताजकी है, भक्ति मुनिराजकी है चित्तमें चहतु है । वीसद्वै निवारी रीति भोजन न अक्षप्रीति, इंद्रिनिको जीत चित्त थिरता गहतु है । दयाभाव सदा धरै, मित्रता प्रगट करै, पापमलपंक हरै मुनि यों कहतु है ॥ ७ ॥

सम्यक्तकी महिमा.

भौथिति निकंद होय कर्मवंद मंद होय, प्रगटै प्रकाश निज आनंदके कंदको । हितको दृढाव होय विनैको वढाव होय, उपजै अंकूर ज्ञान द्वितियाके चंदको ॥ सुगति निवास होय दुर्गतिको नाश होय, अपने उछाह दाह करै मोहफंदको । सुख भरपूर होय दोष दुख दूर होय, यातै गुणवृंद कहैं सम्यक सुछंदको ॥ ८ ॥

श्रीजिनेन्द्रदेवकी प्रतिमाको नमस्कार छप्पय.

प्रथम प्रणमि सुरलोक, जहां जिनचैत्य अकृत्रिम ।
चैत्य चैत्य प्रतिविंव, एकसो आठ अनूपम ॥
वहुरि प्रणमि मृतलोक, विम्ब जिनके जिहँ थानक ।
कृत्य अकृत्तिम दुविधि, लसै प्रतिमा मनमानक ॥
पाताल लोक रचना प्रवल, तिहँ थानक जिनविँव विदित ।
तहँ तहँ त्रिकाल वंदित 'भविक' भावसहित शिरनायनित ॥ ९ ॥

सम्यग्दृष्टिकी महिमा कवित्त.

स्वरूप रिझवारेसे सुगुण मतवारेसे, सुधाके सुधारेसे सुप्राण दयावंत हैं । सुबुद्धिके अथाहसे सुरिद्धपातशाहसे, सुमनके सनाहसे महाबडे महंत हैं। सुध्यानके धरैयासे सुज्ञानके करैयासे, सुप्राण परखैयासे शकती अनंत हैं । सवै संघनायकसे सवै बोलला यकसे सवै सुखदायकसे सम्यकके संत हैं ॥ १० ॥

(सवैया)

काहेको कूर तू क्रोध करै अति, तोहि रहैं दुख संकट घेरें ।
काहेको मान महाशठ राखत, आवत काल छिनै छिन नेरे ॥
काहेको अंध तु बंधत मायासों, ये नरकादिकमें तुहे गेरें ।
लोभ महादुख मूल है भैया, तु चेतत क्यों नहिं चेत सवेरे॥११॥

कवित्त.

जेते जग पाप होंहि अभ्रमके व्याप होंहि, तेते सब कारजको मूल लोभकूप है । जेते दुखपुंज होहिं कर्मनके कुंज होहिं, तेते सब बंधनको मूल नेह रूप है ॥ जेते बहु रोग होंहिं व्याधिके संयोग होंहिं, तेते सब मूलको अजीरन अनूप हैं । जेते जगमर्ण होंहिं काहूकी न शर्ण होंहिं, तेते सब रूपको शरीरनाम भूप है ॥१२॥

ज्ञानमें है ध्यानमें है वचन प्रमाणमें है, अपने सुथानमें है ताहि पहचानुरे । उपजै न उपजत मूए न मरत जोई, उपजन मरन व्योहार ताहि मानुरे॥ रावसो न रंकसो है पानीसो न पंकसो है, अति ही अटंकसो है ताहि नीके जानुरे । आपनो प्रकाश करै अष्टकर्म नाश करै, ऐसी जाकी रीति 'भैया' ताहि उर आनुरे॥१३॥

सेर आध नाजकाज अपनों करै अकाज, खोवत समाज सब

---

(१) अन्न.

राजनितें अधिके। इंद्र होतो चंद्र होतो नरनागइन्द्र होतो करत तपस्या जोपैं पैठि साधुमधिकैं॥इन्द्रिनको दम होतो 'यम ओ नियम होतो,' जमको न गम होतो ज्ञान होतो अधिकें। लोकालोक भास होतो अष्टकर्म नाश होतो, मोखमें सुवास होतो चलतो जो सधिकें॥ १४॥

सवैया.

काहेको कूर तू भूरि सहै दुख,पंचनके परपंच भखाये।
ये अपने अपने रसको नित पोखतु हैं, तोहि लोभ लगाये॥
तू कछु भेद न बूझतु रंचक, तोहि दगा करि देत बँधाये॥
है अवके यह दाव भलो नर! जीत ले पंच जिनंद वताये॥ १५॥
हे नर अंध तू बंधत क्यों निज, सूझत नाहिं कै भंग खई है।
जे अघ संचतु है नित आपको, ते तोहि सौंज करैंगे गई है॥
ये नरकादिकमें तोहि डारिकें, देहैं सजा वहु ऐसी भई है।
मानत नाहिं कहूं समुझाय, सु तोकों दई मति ऐसी दई है॥१६॥

कवित्त.

धूमनके धौरहर देख कहा गर्व करै, ये तो छिनमाहिं जांहि पौंन परसत ही। संध्याके समान रंग देखत ही होय भंग, दीपकपतंग जैसें काल गरसत ही॥ सुपनेमें भूप जैसें इंद्रधनुरूप जैसें, ओसवूंद धूप जैसें दुरै दरसत ही। ऐसोई भरम सव कर्म-जालवर्गणाको, तामे मूढ मग्न होय मरै तरसत ही॥ १७॥

मात्रिक कवित्त.

देख तू दृष्टि विचार अभ्यंतर, या जगमहिं कछु सांचो आह।
मात तात सुत बन्धव वनिता, इनसो प्रीति करै कित चाह।

(१) 'दूर सव तम हो तो' ऐसा भी पाठ है. (२) बहकाये. (३) 'तोही' ऐसा भी पाठ है. (४) 'शठ' ऐसा भी पाठ है.

तन यौवन कंचन औ मंदिर, राजरिद्ध प्रभुता पद काह ।
ये उपजै विनशै अपनी थिति, तूं कित नाथ होंहि शठ! ताह ॥१८॥

कवित्त.

संसारी जीवनके करमनको वंध होय, मोहको निमित्त पाय रागद्वेषरंगसों । वीतराग देवपैं न रागद्वेष मोह कहूं, ताहीतैं अवंध कहे कर्मके प्रसंगसों ॥ पुग्गलकी क्रिया रही पुग्गलके खेतवीचि, आपहीतैं चलै धुनि अपनी उमंगसों । जैसें मेघ परें विनु आपनिज काज करैं, गर्जि वर्षि झूम आवे शकति सु ढंगसों ॥ १९ ॥

मात्रिक कवित्त.

आतमसूवा भरममहिं भूल्यो, कर्म नलिनपैं बैठो आय ।
विषयस्वादविरम्यों इह थानक, लटक्यो तरैं ऊर्द्धभये पाँय ॥
पकरैं मोहमगन चुंगलसों, कहै कर्मसों नाहिं वसाय ।
देखहु किन? सुविचार भविक जन, जगत जीव यह धरैं स्वभाय २०
तोलों प्रगट पूज्यपद थिर है, तोलों सुजस लहै परकास ।
तोलौं उज्जल गुणमणि स्वच्छित, तोलों तपनिर्मलता पास ॥
तोलों धर्मवचनमुख शोभत, मुनिपद ऐसे गुनहिं निवास ।
जोलों रागसहित नहिं देखत, भामनिको मुखचंदविलास ॥ २१ ॥

कवित्त.

जोपैं चारों वेद पढे रचिपचि रीझ रीझ, पंडितकी कलामें प्रवीन तू कहायो है । धरम व्योहार ग्रन्थ ताहूके अनेक भेद, ताके पढे निपुण प्रसिद्ध तोहि गायो है ॥ आतमके तत्त्वको निमित्त कहूं रंच पायो, तोलों तोहि ग्रन्थनिमें ऐसे के वतायो है ।

जैसें रसव्यञ्जनिमें करछी फिरै सदीव, मूढतासुभावसों न स्वाद कछु पायो है ॥ २२ ॥

सवैया.

चेतन ऐसेमें चेतत क्यों नहि, आय बनी सबही विधि नीकी ।
है नरदेह यो आरज खेत, जिनंदकी वानी सु बूंद अमीकी ॥
तामें जु आप गहो थिरता तुम, तौ प्रगटै महिमा सब जीकी ।
जामें निवास महासुखवास सु, आय मिलै पतियां शिवतीकी॥२३

कवित्त.

ग्रीपममें धूप परै तामें भूमि भारी जरै, फूलत है आक पुनि अतिही उमहिकें । वर्षाऋतुमेघ झरै तामें वृक्ष केई फरै, जरत जवासा अघ आपुहीतें डहिकें ॥ ऋतुको न दोष कोऊ पुण्यपाप फलै दोऊ, जैसें जैसें किये पूर्व तैसें रहै सहिकें । केई जीव सुखी होंहि केई जीव दुखी होंहिं, देखहु तमासो 'भैया' न्यारे नेकु रहिकें ॥ २४ ॥

दोहा.

पुण्य ऊर्द्ध गतिको करै, निश्चै भेद न कोय ।
तातैं पुण्यपचीसिका, पढे धर्म फल होय ॥ २५ ॥

सत्रहसे तेतीसके, उत्तम फागुन मास ।
आदिपक्ष नमि भावसों, कहै भगोतीदास ॥ २५ ॥

इति पुण्यपचीसिका समाप्ता ॥ १ ॥

अथ शतअष्टोत्तरी कवित्तबन्ध लिख्यते ।

दोहा.

ओंकार गुण अति अगम, पँचपरमेष्टि निवास ।
प्रथम तासु वंदन किये, लँहिये ब्रह्मविलास ॥ १ ॥

छप्पय.

द्रव्य एक आकाश, जासुमहिं पंच विराजत ।
द्रव्य एक चिद्रूप, सहज चेतनता राजत ॥
द्रव्य एक पुनि धर्म, चलन सबको सहकारी ।
द्रव्य सुएक अधर्म, रहनथिरता अधिकारी ॥
द्रव्य एक पुद्गल प्रगट, अरु अंतक पट मानिये ।
निज निज सुभावमें सब मगन, यह सुबोध उर आनिये ॥ २ ॥

जीव ज्ञानगुण धरै, धरै मूरतिगुण पुद्गल ।
जीव स्वपर करि भेद, भेद नहि लहै कर्ममल ॥
जीव सदा शिवरूप, रूपमें दर्वसु ओरें ।
जीव रमै निजधर्म, धर्मपर लहै न ठौरें ।
जीव दर्व चेतन सहित, तिहूं काल जगमें लसै ।
तसु ध्यान करत ही भव्य जन, पंचमिगति पलमें बसै ॥ ३ ॥

रसनाके रस मीन, प्राण पलमाहिं गमावै ।
अलि नासा परसंग, रैन बहु संकट पावै ॥
मृग करि श्रवण सनेह, देह दुरजनको दीनी ।
दीपक देख पतंग, दृष्टि हित कैसी कीनी ॥
फरसइंद्रिवस करि पर्‌यो, कौन कौन संकट सहै ।
एक एक विषबेलिसम, पंचन सेय तु सुख चहै ॥ ४ ॥

---

(१) 'होवत'–ऐसा भी पाठ है. (२) काल.

चेतु चेतु चित चेतु, विचक्षण वेर यह ।
हेतु हेतु तुव हेतु, कहित हों रूप गह ॥
मानि मानि पुनि मानि, जनम यहु वहुर न पावै ।
ज्ञान ज्ञान गुण जान, मूढ क्यों जन्म गमावै ॥
वहु पुण्य अरे नरभौं मिल्यो, सो तू खोवत वावरे ।
अज हूं संभारि कछु गयो नहि 'भैया' कहत यह दावरे ॥५॥

कवित्त.

जैसो वीतराग देव कह्यो है स्वरूपसिद्ध, तैसो ही स्वरूप मेरो यामें फेर नाहीं है । अष्टकर्म भावकी उपाधि मोमें कहूं नाहिं, अष्ट गुण मेरे सो तो सदा मोहि पांहीं है ॥ ज्ञायक स्वभाव मेरो तिहूं काल मेरे पास, गुण जे अनन्त तेऊ सदा मोहिमाहीं हैं । ऐसो है स्वरूप मेरो तिहूं काल सुद्धरूप, ज्ञानदृष्टि देखतैं न दूजी परछांही है ॥ ६ ॥

विकट भौसिंधु ताहि तरिवेको तारू कौन, ताकी तुम तीर आये देखो दृष्टि धरिकैं । अवके संभारेतैं पार भले पहुँचत हौं, अवके संभारे विन बूडत हो तरिकैं ॥ वहुरयो फिर मिलवो नाहिं ऐसो है संयोग, देव गुरु ग्रंथ करि आये हिय धरि कैं । ताहि तू विचारि निज आतमनिहारि 'भैया' धारि परमातमाहिं शुद्ध ध्यान करिकैं ॥ ७ ॥

जोपं तोहि तरिवेकी इच्छा कछू भई भैया, तो तौ वीतरागजूके वच उर धारिये । भौसमुद्रजलमें अनादिही तैं बूडत हो, जिननाम नौका मिली चित्ततैं न टारिये ॥ खेवट विचारि शुद्ध थिरतासों ध्यान काज, सुखके समूहको सुदृष्टिसों निहारिये । चलिये जो इह पंथ मिलिये ज्यौं मारगमें, जन्मजरामरनके भयको निवारिये ॥ ८ ॥

ज्ञानप्रान तेरे ताहि नेरे तौ न जानत हो, आनप्रान मानि आनरूप मानि रहे हो । आतमके वंशको न अंश कहूं खुल्यो कीजै, पुग्गलके वंशसेती लागि लहलहे हो ॥ पुग्गलके हारे हार पुग्गलके जीते जीत, पुग्गलकी प्रीतसंग कैसें वहबहे हो । लागत हो धायधाय लागै न उपाय कछू, सुनो चिदानंदराय ! कौन पंथ गहे हो ? ॥ ९ ॥

छंद द्रुमिला ।

इक बात कहूं शिवनायकजी, तुम लायक ठौर कहां अटके ? ।
यह कौन विचक्षन रीति गही, विनुदेखहि अक्षनसों भटके ॥
अजहूं गुणमानो तो शीख कहूं, तुम खोलत क्यों न पटै घटके ? ।
चिनमूरति आपु विराजतु है, तिन सूरत देखे सुधा गटके ॥१०॥

सवैया

शुद्धितें मीन पियें पय बालक, रासभ अंगविभूति लगाये ।
राम कहे शुक ध्यान गहे वक, भेड़ तिरै पुनि मूंड़ मुड़ाये ॥
वस्त्र विना पशु व्योम चलै खग, व्याल तिरैं नित पौनके खाये ।
एतो सवै जड़ रीत विचक्षन! मोक्ष नहीं विनतत्वके पाये॥११॥
कर्म स्वभावसों तांतोसो तोरिकें, आतम लक्षन जानि लये हैं ।
ध्यान करै निहचै पदको जिहँ, थानक और न कोऊ ठये हैं ॥
ज्ञान अनंत तहां प्रतिभासत, आपु ही आपु स्वरूप छये हैं ।
और उपाधि पखारिकें चेतन, शुद्ध भये तेउ सिद्ध भये हैं॥१२॥
देखत रूप अनूप अनूपम, सुंदरता छवि रीझिकैं मोहै ।
देखत इन्द्र नरेन्द्र महामुनि, लच्छिविभूषण कोटिक सोहै ॥

(१) जलशुद्धि. (२) राख. (३)'नातोसो तोरिकें' ऐसा भी पाठ है.

देखत देव कुदेव सबै जग, राग विरोध धरै उर दो है।
ताहि विचारि विचक्षन रे मन! द्वैपल देखु तो देखत को है॥१३॥

कवित्त.

सुनो राय चिदानंद कहोजु सुबुद्धि रानी, कहैं कहा वेर वेर नैकु तोहि लाज है। कैसी लाज कहो कहां हम कछू जानत न, हमें इहां इंद्रनिको विषै सुख राज है॥ अरे मूढ विषै सुख सेयें तू अनन्ती वेर, अज हूं अघायो नाहिं कामी शिरताज है। मानुष जनम पाय आरज सुखेत आय, जो न चेतै हंसराय तेरो ही अकाज है॥१४॥

सुनो मेरे हंस एक वात हम सांची कहैं, कहो क्यों न नीके कोउ मुखहू गहतु है। तुम जो कहत देह मेरी अरु नीकै राखों, कहो कैसें देह तेरी राखी ये रहतु है?॥ जाति नाहिं पांति नाहि रूपरंग भांति नाहिं, ऐसें झूठ मूठ कोउ झूंटोहू कहतु है। चेतन प्रवीनताई देखी हम यह तेरी, जानिहो जु तव ही ये दुख को सहतु है॥ १५॥

सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा लाहु, कौन विवसाहु, जाहि ऐसें लीजियतु है। दश द्यौंस विषैसुख ताको कहो केतो दुख, परिकें नरकमुख कोलों सीजियतु है॥ केतो काल बीत गयो अजहू न छोर लयो, कहूं तोहि कहा भयो ऐसे रीझयतु है। आपु ही विचार देखो कहिवेको कौन लेखो, आवत परेखो तातें कह्यो कीजियतु है॥ १६॥

मानत न मेरो कह्यो मान बहुतेरो कह्यो, मानत न तेरो गयो कहो कहा कहिये?। कौन रीझि रीझि रह्यो कौन बूझ बूझ रह्यो, ऐसी वातैं तुमे यासों कहा कही चहिये?। एरी मेरी रानी तोसों कौन है सयानी सखी, एतौ वापुरी विरानी तू न रोस गहिये।

(१) दिन. (२) विचारी.

इनसो न नेह मोहि तोहीसों सनेह वन्यों, रामकी दुहाई कहूं तेरे गेह रहिये ॥ १७ ॥

जीवन कितेक तापै सामा तू इतेकु करै, लक्ष कोटि जोर जोर नैकु न अघातु है। चाहतु धराको धन आन सव भरों गेह, यों न जानैं जनम सिरानो मोहि जात है॥ कालसम क्रूर जहां निशदिन घेरो करै, ताके वीच शशा जीव कोलों ठहरातु है। देखतु हैं नैन-निसों जगसब चल्यो जात, तऊमूढचेतै नाहिं लोभै ललचातुहै॥१८॥

कहां हैं वे वीतराग जीते जिन रागद्वेष, कहां है वे चक्रवर्ति छहों खंडके धनी। कहां हैं वे वासुदेव युद्धके करैया वीर, कहां हैं वे कामदेव कामकीसी जे अनी ॥ कहां है वे राजा राम राव-नसे जीते जिनि, कहां हैं वे शालिभद्र लच्छि जाके थी घनी। ऐसे तो कईक कोटि है गये अनंती वेर, डेढ दिन तेरी वारी काहेको करै मनी ॥ १९ ॥

सुनिरे सयाने नर कहा करै घरघर, तेरो जु शरीरघर घरीज्यों तरतु है। छिन२ छीजे आय जल जैसें घरी जाय, ताहूको इलाज कछु उरहू धरतु है॥ आदि जे सहे हैं ते तौ यादि कछु नाहि तो-हि, आगें कहो कहा गति काहे उछरतु है। घरी एक देखो ख्याल घरीकी कहां है चाल, घरी घरी घरियाल शोर यों करतु है ॥२०॥

पाय नर देह कहो कीनों कहा काम तुम,रामा रामा धनधन कर-त विहातु है। कैक दिन कैक छिन रहि है शरीर यह, याके संग ऐसें काज करतु सुहातु है॥ जानत है यह घर मरवेको नाहिं डर, देख भ्रम भूलि मूढ फूलि मुसकात है। चेतरे अचेत पुनि चेतवेको नाहि ठौर, आज कालि पींजरेसों पंछी उड जातु है ॥ २१ ॥

कर्मको करैया सो तो जानै नाहिं कैसे कर्म, भरममें अनादिही-

को करमैं करतु है। कर्मको जनैया(भैया)सोतो कर्म करै नाहिं, धर्म माहि तिहूंकाल धरमैं धरतु है॥दुहूंनकी जाति पांति लच्छन स्व भाव भिन्न, कवहू न एकमेक होइ विचरतु है। जा दिनातें ऐसी दृष्टि अन्तर दिखाई दई, तादिनातें आपु लखि आपुही तरतु है॥२२॥

सवैया.

जीव अकर्ता कह्यो परको, परको करता पर ही परवान्यो।
ज्ञान निधान सदा यह चेतन, ज्ञान करै न करै कछु आन्यो॥
ज्यों जग दूध दही घृत तक्रकी, शक्ति धरै तिहुं काल वखान्यो।
कोऊ प्रवीन लखै दृगसेती सु, भिन्न रहै वपुसों लपटान्यो॥२३॥

मात्रिक कवित्त.

चेतन चिह्न ज्ञान गुण राजत, पुद्गलके वरणादिक रूप।
चेतन आपरु आन विलोकत, पुग्गल छाँह धरै अरु धूप॥
चेतनकै थिरता गुण राजत, पुग्गलकै जड़ता जु अनूप।
चेतन शुद्ध सिधालय राजत, ध्यावत है शिवगामी भूप॥ २४॥

कवित्त.

जीवहू अनादिको है कर्महू अनादिको है, भेदहू अनादिको है सर्व दोऊदलमें। रीझवेको है स्वभाव रीझनाहीं है स्वभाव, रीझवे-को भावसो स्वभाव है अमलमें॥ साँचेही सो करै प्रीति सांचेसों न करी प्रीति, सांची विधि रीतिसो बहाय दई पलमें। ज्ञान गुन काम कीने काम के न काम कीने, ध्यानमें मुकाम कीने वसे आप थलमें॥ २५॥

दासीनके संग खेल खेलत अनादि बीते, अजहूं लों वहै बुद्धि कौन चतुरई है। कैसी है कुरूपकारी निशि जैसें अँधियारी, औ-

(१) 'न रहै' ऐसा भी पाठ है.

गुन गहनहारी कहा जान लई है ॥ इनहीकी संगतसों संकट अनेक सहे, जानि वूझ भूल जाहु ऐसी सुधि गई है । आवत परेखो हंस! मोहि इन वातनको, चेतनाके नाथको अचेतना क्यों भई है ॥ २६ ॥

कहाँ कहाँ कौनसंग लागेही फिरत लाल! आवो क्यों न आज तुम ज्ञानके महलमें । नैकहू विलोकि देखो अन्तरसुदृष्टिसेती, कैसी कैसी नीकी नारि ठाड़ी हैं टहलमें ॥ एकनतें एक वनी सुंदर सुरूप घनी, उपमा न जाय गनी वामकी चहलमें । ऐसी विधिपाय कहूं भूलि और काज कीजे, एतो कह्यो मानलीजे वीनती सहलमें ॥ २७ ॥

सवैया.

लाई हौंलालन वाल अमोलक, देखहु तो तुम कैसी वनी हैं? ऐसी कहूं तिहुं लोकमें सुन्दर, और न नारि अनेक घनी हैं ॥ याहीतैं तोहि कहूं नित चेतन! याहूकी प्रीति जु तोसों सनी है । तेरी औ राधेकी रीझि अनंत, सु मोपें कहूं यह जात गनी है॥२८॥

कायासी जु नगरीमें चिदानंद राज करै, मायासी जु रानी पैं मगन वहु भयो है । मोहसो है फोजदार क्रोधसो है कोतवार, लोभसो वजीर जहां लूटिवेको रह्यो है ॥ उदैको जु काजी मानै मानको अदल जानै, कामसेवा कानवीस आइ वाको कह्यो है । ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूल गयो, सुधि जव आई तवै ज्ञान आय गह्यो है ॥ २९ ॥

कवित्त.

कौन तुम कहां आये कौनें वौराये तुमहिं, काके रस रसे कछु सुधहू धरतु हो?। कौन हैं ये कर्म जिन्हे एकमेक मानिरहे, अजहूं न लागे हाथ भाँवरि भरतु हो वे दिन चितारो जहां वीते हैं

अनादिकाल, कैसे कैसे संकट सहेहु विसरतु हो । तुम तो सयाने पैं सयान यह कौन कीन्हो, तीनलोकनाथ ह्वैके दीनसे फिरतु हो ॥ ३० ॥

देख कहा भूलि पर्‌यो देख कहा भूलि पर्‌यो, देख भूलि कहा कर्‌यो हर्‌यो सुख सव ही। ज्ञान है अनंत ताहि अक्षर अनन्त भाग, वल है अनंत ताहि देखो क्यों न अव ही ॥ कामवशपरे तातें नरकमें वशपरे, ऐसे दुख परे सो कहे न जांहिं कव ही । वात जो निगोदकी है तेहू तैंन गोदकी है, ऐसे अनुमोदकी है जानिहू जो तव ही ॥ ३१ ॥

सवैया

वे दिन क्यो न चितारत चेतन, मातकी कूखमें आय वसे हो।
ऊरध पांव नगे निशिवासर, रंच उसांसनिको तरसे हो ॥
आवसंयोग वचे कहुं जीवत, लोगनिकी तव दृष्टि लसे हो ।
आजु भये तुम यौवनके रस, भूल गये कितते निकसे हो॥३२॥

कवित्त.

सहे हैं नरकदुख फेर भयो तेही रुख, वेरवेर कहै मुख मैं ही सुख लहा है । जोवनकी जेव भरे जुवति लगावे गरे, करै काम खोटे खरे काम आगि दहा है ॥ दिन दश बीति जाय हाथपीट पछताय, यौवन न ठहराय कीजे अव कहा है। जरा आइ लागी कान भूलिगये अवसान, देखे जमके निसान पर्‌यो शोच महा है॥३३॥

जाही दिन जाही छिन अंतर सुवुद्धि लसी, ताही पल ताही समैं जोतिसी जगति है। होत है उद्योत तहां तिमिर विलाइजातु, आपापर भेद लखि ऊरधव गति है ॥ निर्मल अतीन्द्री ज्ञान

(१) 'कुसातनको'–ऐसा भी पाठ है.

देखि राय चिदानंद, सुखको निधान याकै माया न जगति है। जैसो शिवखेत तैसो देहमें विराजमान, ऐसो लखि सुमति स्वभावमें पगति है॥ ३४॥

मात्रिक कवित्त.

जबते अपनो जी आपु लख्यो, तवतें जु मिटी दुविधा मनकी।
यों शीतल चित्त भयो तवही सब, छांडदई ममता तनकी॥
चिंतामणि जब प्रगट्यो घरमें, तब कौन जु चाहि करै धनकी।
जो सिद्धमें आपुमें फेर न जानै सो, क्यों परवाह करै जनकी॥ ३५॥

सवैया.

केवल रूप महा अति सुंदर, आपु चिदानंद शुद्ध विराजै।
अंतरदृष्टि खुलै जब ही तव, आपुहीमें अपनो पद छाजै॥
सेवक साहिब कोऊ नही जग, काहेको खेद करै किहँ काजै।
अन्य सहाय न कोऊ तिहारै जु, अंत चल्यो अपनो पद साजै॥३६॥

दोहा.

जा छिन अपने सहज ही, चेतन करत किलोल॥
ता छिन आन न भास ही, आपुहि आपु अडोल॥ ३७॥

कवित्त.

पियो है अनादिको महा अज्ञान मोहमद, ताहीतैं न शुधि याहि और पंथ लियो है। ज्ञानविना व्याकुल है जहां तहां गिरयो परै, नीच ऊंच ठौरको विचार नाहिं कियो है॥ वकियो विराने वश तनहूकी सुधि नाहिं, बूडै सब कूपमाहिं सुन्नसान हियो है। ऐसे मोहमदमें अज्ञानी जीव भूलि रह्यो ज्ञानदृष्टि देखो 'भैया' कहा ताको जियो है॥ ३८॥

देखत हो कहां कहां केलि करै चिदानंद, आतम स्वभाव भूलि

(१) 'सहाय नही नर कोउ तिहारै' ऐसा पाठ भी है.

और रस राच्यो है। इन्द्रिनके सुखमें मगन रहै आठों जाम इन्द्रि-नके दुख देख जाने दुख सांच्यो है ॥ कहूं क्रोध कहूं मान कहूं माया कहूं लोभ; अहंभाव मानिमानि ठौरठौर माच्यो है ॥ देव तिरजंच नरनारकी गतिन फिरै, कौन कौन स्वांग धरै यह ब्रह्म नाच्यो है ॥ ३९ ॥

करखाछंद गुर्जरभाषाया:

उहिल्या जीवड़ा हूं तनैं शूं कहूं, वळी वळी आज तुं विषयविष सेवै।
विषयना फल अछै विषय थकी पांडुवा ज्ञाननी दृष्टि तूं कां न वेवै॥
हजी शुं सीख लागी नथी कां तनैं नरकना दुःख कहिवेको न रेवै।
आव्यो एकलो जायपण एक तू, एटलामाटे कां एटलूं खेवै ॥

कवित्त.

कोउ तो करै किलोल भामिनीसों रीझिरीझि, वाहीसों सनेह करै कामराग अंगमें । कोउतो लहै अनंद लक्ष कोटि जोरि जोरि, लक्ष लक्ष मानकरै लच्छिकी तरंगमें । कोउ महाशूरवीर कोटिक गुमान करै, मो समान दूसरो न देखो कोऊ जंगमें । कहै कहा 'भैया, कछु कहिवेकी वात नाहिं, सव जग देखियतु रागरस रंगमें ॥ ४१ ॥

जोलौं तुम और रूप ह्वै रहे हो चिदानंद, तोलो कहूं सुख नाहिं रावरे विचारिये। इन्द्रिनिके सुखको जो मान रहे सांचो सुख, सो तो सव दुःख ज्ञान दृष्टिसों निहारिये॥ एतो विनाशीक रूप छिनमें और स्वरूप, तुम अविनाशी भूप कैसें एकु धारिये। ऐसो नरजन्म पाय नेकु तो विवेक कीजै, आप रूप गहि लीजे कर्मरोग टारिये ॥४२॥

अरे मूढ चेतन! अचेतन तू काहे होत, जेई छिन जांहिं फिर तेई तोहि आयवी ? । ऐसो नरजन्म पाय श्रावकके कुल आय,

रह्यो है विषै लुभाय ओंधीमति छाइवी ॥ आगें हू अनादिकाल वीते विपरीत हाल, अजहूं सम्हारि लाल! वेर भली पाइवी । पीछें पछतायें कछु आइ है न हाथ तेरे, तातें अव चेत लेहु भली परजायवी ॥ ४३ ॥

जीवैं जग जिते जन तिन्हैं सदा रैनदिन, सोचतही छिन छिन काल छीजियतु है । धन होय धान होय, पुत्र परिवार होय, वडो विसतार होय जस लीजियतु है ॥ देहहू निरोग होय सुखको संयोग होइ मनवांछे भोग होय जौलौं जी जियितु है । चहै वांछा पूरी होइ पैन वांछे पूरी होय, आयु थिति पूरी होय तोलों कीजियतु है ॥ ४४ ॥

मात्रिक कवित्त.

जवलों रागद्वेष नहिं जीतय तवलों मुकति न पावै कोइ ।
जवलों क्रोध मान मनधारत, तवलों, सुगति कहांतें होइ ॥
जवलों माया लोभ वसे उर, तवलों, सुख सुपनें नहिं जोइ ।
एअरि जीत भयो जो निर्मल, शिवसंपति विलसत है सोइ ॥ ४५ ॥

कवित्त.

सात धातु मिलन है महादुर्गन्ध भरी, तासों तुम प्रीति करी लहत अनंद हौ । नरक निगोदके सहाई जे करन पंच, तिनहीकी सीख संचि चलत सुछंद हौ ॥ आठों जाम गहै काम रागरसरंगराचि, करत किलोल मानों माते ज्यों गयंद हौ । कछू तो विचार करो कहां कहां भूले फिरो, भलेजू भलेजू 'भैया' भले चिदानंद हौ ॥ ४६ ॥

सवैया.

ए मन मूढ! कहा तुम भूले हो, हंसविसार लगे परछाया ।
यामें स्वरूप नहीं कछु तेरो जु, व्याधिकी पोट वनाई है काया ॥

सम्यक रूप सदा गुण तेरोसु, और वनी सवही भ्रम माया ।
देखत रूप अनूप विराजत सिद्धसमान जिनंद वताया ॥ ४७॥
चेतन जीव! निहारहु अंतर, ए सव हैं परकी जड काया ॥
इन्द्रकमान ज्यों मेघघटामहिं, शोभत है पैं रहै नहिं छाया ॥
रैन समै सुपनो जिम देखै तु प्रात वहै सव झूंट वताया ।
त्यों नदिनाव सँयोगमिल्यो तुम, चेतहु चित्तमें चेतन राया ॥४८॥
देहके नेह लग्यो कहा चेतन, न्यारी ये क्यों अपनी करमानी ।
याहीसों रीझि अज्ञानमें मानिकैं, याहीमें आपु न ह्वैरह्यो थानी ॥
देखतु हैं परतच्छ विनाशी तऊ, नहिं चेतत अंध अज्ञानी ।
होहु सुखी अपनो वल फोरिकैं, मान कह्यो सर्वज्ञकी वानी ॥४९॥

समस्यापूर्त्ति—'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' सवैया ।

केवलरूप विराजत चेतन, ताहि विलोकि अरे मतवारे ।
काल अनादि वितीत भयो, अजहूं तोहि चेत न होत कहा रे? ॥
भूलिगयो गतिको फिरवो अव तो दिन च्यारि भये ठकुरारे ।
लागि कहा रह्यो अक्षंनिके संग, 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' ॥५०॥
वालक है तव वालकसी वुधि, जोवन काम हुतासन जारे ।
वृद्ध भयो तव अंग रहे थकि, आये हैं सेत गये सव कारे ॥
पाँय पसारि पर्‍यो धरतीमहिं, रोवै रटै दुख होत महारे ।
वीती यों वात गयो सव भूलि तू, चेतत क्यों नहिं चेतनहारे ॥५१॥
वालपनें नित वालनके सँग, खेल्यो है ताकी अनेक कथारे ।
जोवन आप रस्यो रमनीरस, सोउ तो वात विदीत यथारे ॥
वृद्ध भयो तन कंपत डोलत, लार परै मुख होत विथारे ।
देखि शरीरके लच्छन भैया तु, 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' ॥५२॥

(१) इन्द्रधनुष. (२) इन्द्रियोंके.

तू ही जु आय वस्यो जननी उर, तूही रम्यो नित वालकतारे ।
जोवनताजु भई पुनि तोहिको, ताहीके जोर अनेक तैं मारे ॥
वृद्ध भयो तुंही अंग रहै सव, वोलत वैन कहै तुतरारे ।
देखि शरीरके लक्षण भैया तु 'चेतत क्यों नहिं चेतन हारे' ॥५३॥

औरसों जाइ लग्यो हितमानिके, वाहीके संग सुज्ञान विडारे ।
काल अनादि वस्यो जिनके ढिग, जान्यो न लक्षण ये अरि सारे ॥
भूलिगयो निजरूप अनूपम, मोह महा मदके मतवारे ।
तेरो हू दाव वन्यो अवके तुम, चेतत क्यों नहिं चेतन हारे ॥५४॥

कवित्त.

पंचनसों भिन्न रहै कंचन ज्यों काई तजै, रंच न मलीन होय जाकी गति न्यारी है। कंजनके कुल ज्यों स्वभाव कीच छुवै नाहि, वसै जलमाहि पै न ऊर्द्धता विसारी है ॥ अंजनके अंश जाके वंशमै न कहूं दीखै, शुद्धता स्वभाव सिद्धरूप सुख-कारी है। ज्ञानको समूह ज्ञान ध्यानमें विराजि रह्यो, ज्ञानदृष्टि देखो 'भैया' ऐसो ब्रह्मचारी है ॥ ५५ ॥

चिदानंद भैया विराजत है घटमाहिं, ताके रूप लखिवेको उपाय कछू करिये। अष्ट कर्म जालकी प्रकृति एक चार आठ, तामें कछू तेरी नाहि आपनी न धरिये ॥ पूरवके वंध तेरे तेई आइ उदै होंहि, निजगुणशकतिसों तिन्है त्याग तरिये । सिद्धसम चेतन स्वभावमें विराजत है, वाको ध्यान धरु और काहुसों न डरिये ॥ ५६ ॥

एक शीख मेरी मान आप ही तू पहिचान, ज्ञान द्रगचर्ण आन वास वाके थरको । अनंत वलधारी है जु हलको न

भारी है, महाब्रह्मचारी है जु साथी नाहिं जरको ॥ आप महा तेजवंत गुणको न ओर अंत, जाकी महिमा अनंत दूजो नाहि वरको । चेतनाके रस भरे चेतन प्रदेश धरे, चेतनाके चिह्न करे सिद्ध पटतरको ॥ ५७ ॥

कर्मको करैया यह भरमको भरैया यह, धर्मको धरैया यहै शिवपुर राव है। सुख समझैया यह दुख भुगतैया यहै, भूलको भुलैया यहै चेतना स्वभाव है॥ चिरको फिरैया यहै भिन्नको रहैया यह, सबको लखैया यहै याको भलो चाव है। राग द्वेषको हरैया महामोखको करैया, यहै शुद्ध 'भैया' एक आतम स्वभाव है ॥ ५८ ॥

उर्दूभाषामें कवित्त.

मान यार! मेरा कहा दिलकी चशम खोल, साहिब नजदीक है तिसको पहचानिये । नाहक फिरहु नाहिं गाफिल जहान बीचि शुकन गोश जिनका भलीभांति जानिये ॥ पावक ज्यों वसता है अरनी[1] पखानमाहिं, तीसरोस चिदानंद इसहीमें मानिये । पंजसे गनीम तेरी उमरसाथ लगे हैं खिलाफ तिसें जानि तूं आप सच्चा आनिये ॥ ५९ ॥

अबे भरमके त्योरसों देख क्या भूलता, देखि तु आंपमें जिन आपने बताया है। अंतरकी दृष्टि खोलि चिदानंद पाइयेगा, बाहिरकी दृष्टिसों पौद्गलीक छाया है॥ गनीमनके भाव सब जुदे करि देखि तू, आगें जिन ढूंढा तिन इसीभांति पाया है । वे ऐब साहिब विराजता है दिलबीच, सच्चा जिसका दिल है तिसीके दिल आया है ॥ ६० ॥

---

१ लकड़ी.

नाहक विराने तांई अपना कर मानता है, जानता तू है कि ना- हीं अंत मुझे मरना है। केतेक जीवनेपर ऐसे फैल करता है, सुपनेसे सुखमें तेरा पूरा परना है ॥ पंजसे गनीम तेरी उमरके- साथ लगे, तिनोंको फरक किये काम तेरा सरना है। पाक बे- ऐबसाहिब दिलवीच बसता है, तिसको पहिचान वे तुझे जो त- रना है ॥ ६१ ॥

वे दिन क्यों फरामोश करता है चिदानंद, दोजकके वीच तूं पुकार पड़ा करता था। उछालके अकाश तुझे लेते थे त्रिशूलसो आतिससा आब तू तौ पीवतैं ही जरता था ॥ तत्ता लोहा करिकें देह तेरी तोरते थे, फिरस्तोंके आगे तू साइत भी न ठरता था। जिंदगानी सागरोंकी उमर तेरी हुई थी, जिसके वीच वें तू ऐसे दुःख भरता था ॥ ६२ ॥

कवित्त, इकतुकिया.

चेतहुरे चिदानंद इहां बने दोऊ फंद, कामिनी कनक छंद अन- मैनकासी है। जिहिंको तू देख भूल्यो, विषयसुख मान फूल्यो, मोहकी दशामें झूल्यो, अनमैनकासी है ॥ पाये तैं अनेक वेर देखै कहा फेरि फेरि, कालकरतव हेरि अन मैनिकासी है। इनको तू छाँडदेहु 'भैया' कह्यो मान लेहु, सिद्ध सदा तेरो गेह अनमैनाक- सी है ॥ ६३ ॥

कोटिकोटि कष्ट सहे, कष्टमें शरीर दहे, धूमपान कियो पै न पायो भेद तनको। वृक्षनके मूल रहे जटानमें झूलि रहे, मान मध्य भूलि रहे किये कष्ट तनको॥ तीरथ अनेक न्हये, तिरत न कहूं भये, कीरतिके काज दियो दानहू रतनको। ज्ञानविना वेर वेर क्रिया करी फेर फेर, कियो कोऊ कारज न आतम जतनको ॥ ६४ ॥

धरम न जानतु है मूढ मिथ्या मानतु है, शास्त्रशुद्ध छोरि औ-

र पढ्यो चाहे पारसी। मिथ्यामती देव जहां शीस नावे जाय तहां, एते पर कहै हमें येही पूरो पारसी॥ निशदिन विषै मानै सुकृतको नहिं जानै, ऐसी करतूत करै पहुंच्यो चाहे पारसी॥ नरकमाहिं परैगो सुतीसतीन भरैगो, करेगो पुकार एको न विपति पारसी॥६५॥

सवैया

देव अदेवमें फेर न मान, कहै सब एक गँवार कहूं को।
साधु कुसाधु समान गनै चित, रंच न जानत भेद कहूंको॥
धर्म कुधर्मको एक विचारत, ज्ञान विना नर बासी चहूंको।
ताहि विलोकि कहा करिये मन! भूलो फिरै शठ कालतिहूंको॥६६॥

दोहा.

नैननितैं देखै सकल, नै ना देखै नाहि।
ताहि देखु को देख तो, नैनझरोखे मांहि॥ ६७॥

कवित्त.

देखै ताहि देख जोपै देखिवेकी चाह धरै, देखे विन आप तोहि पाप वडो लागै है। मोह निंद शैनमें अनादिकाल सोय रह्यो, देखि तू विचार ताहि सोवै है कि जागै है॥ रागद्वेषसंगसों मिथ्यातरंग राचि रह्यो, अष्ट कर्म जालकी प्रतीति मानि पागै है। विषैकी कलोल हंस! देखि देखि भूलि गयो, रूपरस गंध ताहि कैसें अनुरागै है॥ ६८॥

देव एक देहरेमें सुंदर सुरूप वन्यो, ज्ञानको विलास जाको सिद्ध सम देखिये। सिद्धकीसी रीति लिये काहू सो न प्रीति किये, पूरवके वंध तेई आइ उदै पेखिये॥ वर्ण गन्ध रस फास जामे कछु नाहि भैया, सदाको अवन्ध याहि ऐसो करि लेखिये। अजरा अमर ऐसो चिदानंद जीव नाव, अहो मन मूढ ताहि मर्ण क्यों विशेखिये॥ ६९॥

काके दोऊ राग द्वेष? जाके ये करम आठ, काके ये करम आठ? जाके रागद्वेख हैं। ताको नाव क्यों न लेहु? भले जानो तुम लेहु, लिखिहु बतावो लिखिवेको कहा लेख है?॥ ताको कछू लच्छन हैं? देखि तूं विचक्षन है, कछू उन्मान कहो? मान कह्यो भेख है। ए न कहो सुधि सुधि तौ परैगी आगैं आगैं, जोपैं कहूं इनसों मिलाप कौ विशेख है॥ ७०॥

कुंडलिया

भैया, भरम न भूलिये पुद्गलके परसंग।
अपनो काज सवांरिये, आय ज्ञानके अंग॥
आय ज्ञानके अंग, आप दर्शन गहि लीजे।
कीजे थिरताभाव, शुद्ध अनुभौ रस पीजे॥
दीजे चउविधि[1] दान, अहो शिव खेत वसैया।
तुम त्रिभुवनके राय, भरम जिन भूलहु भैया॥ ७१॥
हंसा हँस हँस आप तुझ, पूर्व संवारे फंद।
तिहिं कुदावमें बंधि रहे, कैसें होहु सुछंद॥
कैसें होहु सुछंद, चंद जिम राहु गरासै।
तिमर होय वल जोर, किरणकी प्रभुता नासै॥
स्वपरभेद भासै न देह जड़ लखि तजि संसा।
तुम गुण पूरन परम सहज अवलोकहु हंसा॥ ७२॥
भैया पुत्रकलत्र पुनि, मात तात परिवार।
ए सव स्वारथके सगे, तू मनमांहि विचार॥
तू मनमाहि विचार, धार निजरूप निरंजन।
पर परणति सो भिन्न, सहज चेतनता रंजन॥

(१) दशविधि—ऐसा भी पाठ है।

कर्म भर्म मिलि रच्यो, देह जड़ मूर्तिं धरैया।
तासों कहत कुटंब मोह मद माते भैया॥ ७३॥
सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ।
आये धोखे आमके, यापैं पूरण इच्छ॥
यापैं पूरण इच्छ वृच्छको भेद न जान्यो।
रहे विषय लपटाय, मुग्ध मति भरम भुलान्यो॥
फलमहिं निकसे तूल स्वाद पुन कछू न हूवा।
यहै जगतकी रीति देखि, सेमर सम सूवा॥ ७४॥

मात्रिक—कवित्त.

आठनकी करतूत विचारहु, कौन कौन यह करते ख्याल।
कवहूं शिरपर छत्र धरावहिं, कवहू रूप करैं वेहाल॥
देवलोक कवहूं सुख भुगतहिं, कवहू नेकु नाजको काल।
ये करतूति करैं कर्मादिक, चेतन रूप तु आप संभाल॥ ७५॥
चेतन रूप विचारि विचक्षन, ए सब हैं परके परपंच।
आठों कर्म लगे निशिवासर, तिन्हें निवारि लेहु किन खंच॥
जिय समुझावत हों फिर तोकों, इनसे मग्न होऊ जिन रंच॥
ये अज्ञान तुम ज्ञान विराजत, तातैं करहु न इनको संच॥ ७६॥
चेतन जीव विचारहु तो तुम, निहचै ठौर रहनकी कौन।
देव लोक सुरइंद्र कहावत, तेहू करहिं अंत पुनि गौन॥
तीन लोकपति, नाथ जिनेश्वर, चक्रीधर पुनि नर हैं जौन।
यह संसार सदा सुपनेसम, निशचैं वास इहां नहिं हौन॥ ७७॥
चितके अंतर चेत विचक्षन, यह नरभव तेरो जो जाय।
पूरव पुण्य किये कहुं अतिही, तातें यह उत्तम कुल पाय॥
अव कछु सुकृत ऐसो कर तू, जातें मरण जरा नहिं थाय।
वार अनंती मरकें उपजे, अव चेतहु चित चेतन राय॥ ७८॥

कवित्त.

अरे नर मूरख तू भामनीसों कहा भूल्यो, विषकीसी वेल काहू दगाको बनाई है। सेवत ही याहि नेंकु पावत अनेक दुःख, सुखहूकी वात कहूं सुपनै न आई है ॥ रसके कियेसों रसरोगको रसंस होइ, प्रीतिके कियेसों प्रीति नरककी पाई है। यह शुभ्र सागरमें डूबिवेकी ठौर 'भैया', यामें कछु धोखा खाय रामकी-दुहाई है ॥ ७९ ॥

मात्रिक कवित्त.

चंद्रमुखी मन धारत है जिय, अंतसमें तोकों दुखदाई।
चारहु गतिमें यही फिरावत, तासों तुम फिर प्रीति लगाई ॥
वार अनंती नरकहिं डारिके, छेदन भेदन दुःख सहाई।
सुबुधि कहै सुनि चेतनप्रानी, सम्यक शुद्ध गहौ अधिकाई ॥८०॥

सवैया.

रे मन मूढ विचारि करो, तियके संग वात सवै विगरैंगी।
ए मन ज्ञान सुध्यान धरो, जिनके संग वात सवै सुधरैंगी ॥
ध्रू गुण आपु विलक्ष गहो पुनि, आपुहितै परतीति टरैगी।
सिद्ध भये ते यही करनी कर, ऐसें किये शिव नारि वरैगी ॥८१॥

सोरठा.

एहो चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी।
जे नरकहिं ले जाहिं, तिनहीसों राचे सदा ॥ ८२ ॥

मात्रिक कवित्त.

चेतन नींद वडी तुम लीनी, ऐसी नींद लेय नहिं कोय।
काल अनादि भये तोहि सेवत, विनजागे समकित क्यों होय ॥

निश्चै शुद्ध गयो अपनो गुण, परके भाव भिन्न करि खोय।
हंस अंश उज्वल है जब ही, तब ही जीव सिद्धसम सोय ॥८३॥
काल अनादि भये तोहि सोवत, अब तो जागहु चेतन जीव।
अमृत रस जिनवरकी वानी, एकचित्त निशचैकर पीव ॥
पूरव कर्म लगे तेरे संग, तिनकी मूर उखारहु नींव।
ये जड़ प्रगट गुप्त तुम चेतन, जैसे भिन्न दूध अरु घीव ॥ ८४॥

समान सवैया.

काल अनादि तैं फिरत फिरत जिय, अब यह नरभव उत्तम पायो।
समुझि समुझि पंडित नर प्रानी, तेरे कर चिंतामणि आयो ॥
घटकी आँखै खोल जौंहरी, रतन जीव जिनदेव बतायो।
तिलमें तैल वास फूलनिमें, यों घटमें घटनायक गायो ॥ ८५ ॥

सवैया.

हंसको वंश लख्यो जवतें, तबतैं जु मिट्यो भ्रम घोर अंधेरो।
जीव अजीव सबैं लख लीने, सु तत्त्व यहै जिनआगमकेरो ॥
तार्क्ष्यके आवत ही अहि भागे, सु छूटि गयो भवबंधन घेरो।
सम्यक शुद्ध गहो अपनो गुन, ज्ञानके भानु कियो है सवेरो॥८६॥

कवित्त.

उदै करै जोपैं भानु पच्छिमकी दिशा आय, उड़िके अकाश मध्य जाय कहूं धरती। अचल सुमेरु सोऊ चल्यो जायअवनी-पै, सीतता स्वभाव गहै आगि महा जरती ॥ फूलै जोपै कौल कहूं पर्वतकी शिलानपै, पाथरकी नाव चलै पानीमाहिं तरती। च-लिके ब्रह्मंड जोपै तालमधि जाहि कहूं, तऊ विधनाकी लेखि-लिखी नाहिं टरती ॥ ८७ ॥

सवैया.

काहेको शोच करै चित चेतन, तेरी जु वात सु आगें वनी है।
देखी है ज्ञानीतें ज्ञान अनंतमें, हानि ओ वृद्धिकी रीति घनी है॥
ताहि उलंघि सकै कहि कोउजु, नाहक भ्रामिक वुद्धि ठनी है।
याहि निवारिकें आपु निहारिकें, होहु सुखी जिम सिद्ध धनी है ८८
कोउजु शोच करो जिन रंचक, देह धरी तिंहु काल हरैंगो।
जो उपज्यो जगमें दिन चारके, देखत ही पुनि सोई मरैंगो॥
मोह भुलावत मानत सांच सो, जानत याहीसों काज सरैंगो।
पंडित सोई विचारत अंतर, ज्ञान सँभारिकें आपु तरैंगो॥ ८९॥
काहेको देहसों नेह करै तुव, अंतको राखी रहैगी न तेरी।
मेरी है मेरी कहा करै लच्छिसों, काहुकी ह्वैके कहूं रही नेरी ?॥
मान कहा रह्यो मोह कुटुंवसों, स्वारथके रस लागे सगेरी।
तातैं तू चेति विचक्षन चेतन, झूंटी है रीति सवै जगकेरी॥९०॥

कवित्त.

केवल प्रकाश होय अंधकार नाश होय, ज्ञानको विलास होय ओरलों निवाहवी। सिद्धमें सुवास होय, लोकालोक भास होय, आपुरिद्ध पास होय औरकी न चाहवी॥ इन्द्र आय दास होय अरिनको त्रास होय, दर्वको उजास होय इष्टनिधि गाहिवी। सत्व-सुखराश होय सत्यको निवास होय, सम्यक भयेतें होय ऐसी सत्य साहिवी॥ ९१॥

मात्रिक कवित्त.

जाके घट समकित उपजत है, सो तौं करत हंसकी रीत।
क्षीर गहत छांड़त जलको सँग, वाके कुलकी यहै प्रतीत॥

कोटि उपाय करो कोउ भेदसों, क्षीर गहै जल नेकु न पीत ।
तैसें सम्यकवंत गहै गुण, घट घट मध्य एक नयनीत ॥ ९२ ॥
सिद्ध समान चिदानंद जानिके, थापत है घटके उरवीच ।
वाके गुण सब वाहि लगावत, और गुणहि सब जानत कीच ॥
ज्ञान अनंत विचारत अंतर, राखत है जियके उर सींच ।
ऐसें समकित शुद्ध करत हैं, तिनतें होवत मोक्ष नगीच ॥ ९३ ॥

कवित्त.

निशदिन ध्यान करो निशचें सुज्ञान करो, कर्मको निदान करो आवै नाहि फेरिकें । मिथ्यामति नाश करो सम्यक उजास करो, धर्मको प्रकाश करो शुद्धदृष्टि हेरिकें ॥ ब्रह्मको विलास करो, आतमनिवास करो, देव सब दास करो महामोह जेरिकें । अनुभौ अभ्यास करो थिरतामें वास करो, मोक्षसुख रासकरो कहूं तोहि टेरिकें ॥ ९४ ॥

जिनकें सुदृष्टि जागी परगुणके भैं त्यागी, चेतनसो लवलागी भागी भ्रांति भारी है । पंचमहाव्रतधारी जिन आज्ञाके विहारी, नग्नमुद्राके अकारी धर्महितकारी हैं ॥ प्राशुक अहारी अठाईस मूल गुणधारी, परीसह सहैं भारी परउपकारी हैं। पर्मधर्म धनधारी सत्य शब्दके उचारी, ऐसे मुनिराज ताहि वंदना हमारी है ९५॥

शुभ ओ अशुभ कर्म दोऊ सम जानत है, चेतनकी धारामें अखंड गुण साजे है । जीवद्रव्य न्यारो लखै न्यारे लख आठों कर्म पूरवीक बंधतें मलीन केई ताजे हैं॥ स्वसंवेग ज्ञानके प्रवानतें अवाधिवेदि ध्यानकी विशुद्धतासों चढै केई वाजे हैं। अंतरकी दृष्टि-

(१) पीता है. (२) भय.

सों अरिष्ट सब जीत राखे, ऐसी बातैं करैं ऐसे महा मुनिराजे हैं ॥ ९६ ॥

श्रीवीर जिनस्वामीको केवल प्रकाश भयो, इंद्र सब आय तहां क्रिया निज कीनी है। सोचत सो इन्द्र तव वानी क्यों न खिरै आज यह तो अनादि थिति भई क्यों नवीनी है ॥ पूछत सीमंधरपैं जायके विदेहक्षेत्र, इन्द्रभूति योग छिनमें बताय दीनी है। आय एक काव्य पढी जाय इंद्रभूति पास, सुनत ही चौंक चल्यो आय दीक्षा लीनी है ॥ ९७ ॥

छंद प्लवङ्गम.

राग द्वेष अरु मोह, मिथ्यात्व निवारिये।
पर संगति सब त्याग, सत्य उर धारिये ॥
केवल रूप अनूप, हंस निज मानिये।
ताके अनुभव शुद्ध सदा उर आनिये ॥ ९८ ॥

सवैया.

जो षट स्वाद विवेकी विचारत, रागनके रस भेदनपो है।
पंच सुवर्णके लच्छन वेदत, बूझै सुवास कुवासहिं जो है ॥
आठ सपर्श लखै निज देहसों, ज्ञान अनंत कहैंगे कितो है।
ताहि विलोकि विचक्षन रे मन, द्वैपल देखतो देखत को है॥९९॥

कवित्त.

बुद्धि भये कहा भयो जोपैं शुद्ध चीन्हीं नाहिं, बुद्धिको तो फल यह तत्त्वको विचारिये। देह पाये कौन काज पूजे जो न जिनराज, देहकी बडाई ये जप तप चितारिये ॥ लच्छि आये कौन सिद्धि रहि है न थिर रिद्धि, लच्छिको तो लाहु जो सुपात्र मुख

डारिये। वचनकी चातुरी वनाय वोले कहा होहि, वचन तौ वह सत्य शवद उचारिये ॥ १०० ॥

सवैया.

जो परलीन रहै निशिवासर, सो अपनी निधि क्यों न गमावै।
जो जगमाहिं लखै न अध्यातम, सो जिय क्यों निहचै पद पावै॥
जो अपने गुन भेद न जानत, सो भवसागरमें फिर आवै। जो
विप खाय सो प्राण तजै, गुड खाय जो काहे न कांन विधावै॥१०१॥

दुर्मिल सवैया ८ सगण.

भगवंत भजो सु तजो परमाद, समाधिके संगमें रंग रहो।
अहो चेतन त्याग पराइ सु वुद्धि, गहो निज शुद्धि ज्यो सुक्ख लहो॥
विपया रसके हित वूडत हो, भवसागरमें कछु शुद्धि गहो।
तुम ज्ञायक हो षट् द्रव्यनके, तिनसों हित जानके आपु कहो॥१०१॥

कवित्त.

देखी देह खेतक्यारी ताकी ऐसी रीति न्यारी, वोये कछु आन उपजत कछु आन है। पंचामृत रस सेती पोखिये शरीर नित, उपजै रुधिर मास हाडनको ठान है॥ १०२॥ एतेपर रहै नाहिं कीजिये उपाय कोटि, छिनमें विनश जाय नाम न निशान है। एते देखि मूरख उछाह मनमाहिं धरै, ऐसी झूंठ वातनिको सांच कर मान है॥ १०३॥

कुंडलिया.

सुखमें मग्न सदा रहै, दुखमें करै विलाप।
ते अजान जाने नहीं, यहै पुन्य अरु पाप॥
यहै पुण्य अरु पाप, आप गुन इनतें न्यारो।
चिद्विलास चिद्रूप, सहज जाको उजियारो॥

गुण अनंत जामे प्रगट, कबहू होहिं न और रुख।
तिहिं पद परसे विनु रहै, मूढ मगन संसार सुख॥१०४॥

कवित्त.

जीव जे अभव्य राशि कहे हैं अनंत तेउ, ताहू तैं अनंत गुणे सिद्धके विशेखिये। ताहूतैं अनंत जीव जगमें जिनेश कहे, तिनहूतैं कर्म ये अनंत गुणे लेखिये॥ तिनहूतैं पुद्गल प्रमाणु हैं अनंत गुणे, ताहूतैं अनंत यों अकाशको जु पेखिये। ताहूतैं अनन्त ज्ञान जामें सब विद्यमान, तिहूं काल परमाण एकसमै देखिये॥ १०५॥

कवित्त.

जे तो जल लोकमध्य सागर असंख्य कोटि, ते तौ जल पीयो पै न प्यास याकी गयी है। जे ते नाज दीपमध्य भरे हैं अवार ढेर, तेतौ नाज खायो तोऊ भूख याकी नयी है॥ तातें ध्यान ताको कर जातें यह जाँय हर, अष्टादश दोष आदि येही जीत लयी है। वहै पंथ तूहीं साजि अष्टादशजांहिं भाजि होय बैठि महाराज तोहि सीख दयी है॥ १०६॥

कविकी लघुता, छंद कवित्त.

एहो बुद्धिवंत नर हँसो जिन मोह कोऊ, बाल ख्याल कीनो तुम लीजियो सुधारिके। मैं न पढ्यो पिंगल न देख्यो छंद कोश कोऊ, नाममाला नावको पढी नहीं विचारिके॥ संस्कृत प्राकृत व्याकरणहू न पढ्यो कहूं, तातैं मोको दोष नाहि शोधियो निहारिके। कहत भगोतीदास ब्रह्मको लह्यो विलास, तातैं ब्रह्म रचना करी है विसतारिके॥ १०७॥

दोहा.

इति श्री शत अष्टोत्तरी, कीन्हीं निजहित काज।
जे नर पढहिं विवेकसों, ते पावहिं शिवराज॥ १०८॥

इति शतअष्टोत्तरी कवित्तबंध समाप्ताः।

अथ द्रव्यसंग्रह मूलसहित कवित्तबन्ध लिख्यते।

मंगलाचरण. आर्याछंद.

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

छप्पयछंद.

सकल कर्मक्षय करन, तरन तारन शिव नायक।
ज्ञान दिवाकर प्रगट, सर्व जीवहिं सुखदायक॥
परम पूज्य गणधरहु, ताहि पूजित-जिनराजे।
देवनिके पति इन्द्र वृंद, वंदित छवि छाजे॥
इह विधि अनेक गुणनिधिसहित, वृषभनाथ मिथ्यात हर।
तसु चरण कमल वंदित भविक, भावसहित नित जोर कर॥१॥

दोहा.

तिहँ जिन जीव अजीवके, लखे सगुण परजाय।
कहे प्रगट सब ग्रंथमें, भेदभाव समुझाय॥ १ ॥

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भुत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

कवित्त.

जीव है सुज्ञानमयी चेतना स्वभाव धरै, जानिवो औ देखिवो अनादिनिधि पास है। अमूर्त्तिक सदा रहै और सो न रूप गहै, निश्चै प्रवान जाके आतम विलास है॥ व्योहारनय कर्त्ता है देहके प्रमान मान, भुक्ता सुख दुःखनिको जगमें निवास है। शुद्ध नै विलोक सिद्ध करम कलंक विना, ऊर्द्धको स्वभाव जाको लोक अग्रवास है॥ २ ॥

(१) 'भोत्ता' ऐसा भी पाठ है।

तिक्काले चदुपाणा, इंदिय बलमाउ आणपाणा य ।
ववहारा सो जीवो, णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

तिहुंकाल चार प्राण धरै जगवासी जीव, इन्द्रीबल आयु ओ उस्वास स्वास जानिये। एई चार प्राण धरै सातामान जीवो करै, तातैं जीव नांव कह्यो नैव्योहार मानिये ॥ निश्चैनय चेतना त्रिराज रही शुद्ध जाके, चेतना विरुद सदा याहीतैं प्रमानिये । अतीत अनागत सुवर्तमान'भैया'निज, ज्ञानप्रान शास्वतो स्वभाव यों बखानिये ॥ ३ ॥

उवओगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमथ केवलं णेयं ॥ ४ ॥

जीवके चेतना परिणाम शुद्ध राजत है, ताके भेद दोय जिन ग्रन्थनिमें गाइये । एक है सु चेतना कहावै शुद्ध दर्शन, दूजी ज्ञान चेतना लखेतैं ब्रह्म पाइये ॥ देखिवेके भेद चारि लीजिये हृदै विचारि, चक्षु ओ अचक्षु औधि केवल सुध्याइये । येही चार भेद कहे दर्शनके देखनेके, जाके परकाश लोकालोक हू लखाइये ॥ ४ ॥

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदिओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जय केवलमवि, पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥ ५ ॥
मइ सुइ परोक्ख णाणं, ओही मण होइ वियल पच्चक्खं ।
केवलणाणं च तहा, अणोवमं होइ सयलपच्चक्खम् ॥६॥

ज्ञानके जु भेद आठ ताके नाम भिन्न सुनो, कुमति कुश्रुति अवधि लों विशेखिये। सुमति सुश्रुति सु औधि मनपर्जय और, के-

(१) चेयणा ऐसा भी पाठ है। (२) परोह ऐसा भी पाठ है।

वल प्रकाशवान वसुभेद लेखिये ॥ मति श्रुति ज्ञान दोऊ हैं परोक्षवान औधि, मनपर्जय प्रत्यक्ष एक देश पेखिये । केवल प्रत्यक्ष भास लोकालोकको विकास, यहै ज्ञान शास्वतो अनंतकाल देखिये ॥ ५ ॥

अट्ठचदुणाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥ ६ ॥

मात्रिक कवित्त.

अष्ट प्रकार ज्ञान चतु दरसन, नय व्यवहार जीवके लच्छन ।
निहचैं शुद्ध ज्ञान ओ दरसन, सिद्ध समान सुछंद विचक्षन ॥
केवल ज्ञान दरस पुनि केवल, राजै शुद्ध तजै प्रतिपच्छन ।
यह निहचै व्योहार कथनकी, कथा अनंत कही शिव गच्छन ॥६॥

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ ७ ॥

कवित्त.

वर्ण पंच स्वेत पीत हरित अरुण श्याम, तिनहूके भेद नाना भांतिके विदीत है । रस तीखो खारो मधुरो कडुओ कषायलो, इनहूके मिले भेद गणती अतीत हैं॥ तातो सीरो चीकनो रूखो नरम कठोर, हरुवो भारी सुगंध दुर्गंधमयी रीत है । मूरति सुपुद्गलकी जीव है अमूरतीक नैव्यौहार मूरतीक बंधतैं कहीत है॥७॥

बंध्यो है अनादिहीको कर्मके प्रबंध सेती, तातैं मूरतीक कह्यो परके मिलापसों । बंधहीमें सदा रहै समैप्रतिसमै गहै; पुग्गलसों एकमेक ह्वै रह्यो है आपसों ॥ जैसे रूपो सोनो मिले एक नाव

(१) चहुं ऐसाभी पाठ है ।

पाय रह्यो, तैसैं जीवमूरतीक पुग्गल प्रतापसों। यहै बात सिद्ध भई जीव मूरतीकमई, बंधकी अपेक्षा लई नैव्योहार छापसों॥७॥

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो।
चेदणकम्मा णादा, सुद्धणया सुद्ध भावाणं॥८॥

पुदगल करमको करैया है चिदानंद, व्योहार प्रवान इहां फेर कछु नाहीं है। ज्ञानावर्णी आदि अष्ट कर्मको करता है, रागादिक भाव धरै आप उहि पांही है॥ शुद्ध नै विचारिये तो राग है कलंक याकै, यह तो अटंक सदा चेतना सुधाही है। अनंत ज्ञान परिणाम तिनको करैया जीव, सास्वतो सदीव चिरकाल आपमाही हैं॥८॥

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि।
आदा णिच्चयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स॥९॥

व्योहार नै देखिये तो पुग्गलके कर्मफल, नाना भांति सुखदुःख ताको भुगतैया है। उपजाये आपुतैं ही शुभ ओ अशुभ कर्म, ताके फल साता ओ असाताको सहैया है॥ निश्चैनय देखिये तो यह जीव ज्ञानमई, अपुने चेतन परिणामको करैया है। तातैं भोक्ता पुनि सुचेतन परिणामनिको, शुद्धनै विलोकिये तो सबको लखैया है॥९॥

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा॥१०॥

देहके प्रमान राजै चेतन विराजमान, लघु और दीरघ शरीरके उदैसों है। ताहीके समान परदेश याके पूरि रहे, सूक्ष्म औ बादर तन धरै तहां तैसो है॥ व्यवहारनय ऐसो कह्यो समुद्घात

विना, देहको प्रमान नाहि लोकाकाश जैसो है। शुद्ध निश्चयनयसों असंख्यात परदेशी, आतम स्वभाव धरै विद्यमान ऐसो है॥ १० ॥

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥११॥

पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय वायुकाय, वनसपतिकाय पांचो थावर कहीजिये। वे इंद्री ते इंद्री चौ इंद्री पंचेंद्रिय है चारों, जामें सदा चलिवेकी शकति लहीजिये ॥ तन जीभ नाक आंख कान येही पंचइंद्री, जाके जे ते होय ताहि तैसो सर्दहीजिये। संख द्रै पिपीलि तीन भौंर चार नर पंच, इन्हें आदि नाना भेद समुझि गहीजिये ॥ ११ ॥

समणा अमणा णेया, पंचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
वायरसुहमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य॥ १२॥

पंच इंद्री जीव जिते ताके भेद दोय कहे, एकनिके मन एक मनविना पाइये। और जगवासी जंतु तिनके न मन कहूं, एकेंद्री वेइंद्री तेंद्री चौइंद्री वताइये ॥ एकेंद्रीके भेद दोय सूक्षम वादर[1] होय, पर्यापत[2] अपर्यापत[3] सवै जीव गाइये। ताके बहु विस्तार कहे हैं जु ग्रंथनिमें, थोरेमें समुझि ज्ञान हिरदै अनाइये ॥ १२ ॥

मग्गण गुणठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया॥ १३॥

चउदह मारगणा चउदह गुणस्थान, होंहिं ये अशुद्ध नय

१ 'वादर' ऐसाभी पाठ है। २ पर्याप्त। ३ अपर्याप्त।

कहे जिनराजने। येही भाव जोलों तोलों संसारी कहावे जीव, इनको उलंघिकरि मिलै शिव साजने॥ शुद्धनै विलोकियेतौं शुद्ध है सकलजीव, द्रव्यकी उपेक्षासो अनंत छवि छाजने। सिद्धके समान ये विराजमान सबै हंस, चेतना सुभाव धरै करें निज काजनै॥ १३॥

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता॥ १४॥

अष्टकर्महीन अष्ट गुणयुत चरमसु, देह तातें कछु ऊनो सुखको निवास है। लोकको जु अग्र तहाँ स्थित है अनंत सिद्ध, उत्पादव्यय संयुक्त सदा जाको वास है॥ अनंतकाल पर्यन्त थिति है अडोल जाकी, लोकालोकप्रतिभासी ज्ञानको प्रकाश है। निश्चै सुखराज करै बहुरि न जन्म धरै, ऐसो सिद्ध राशिनिको आतम विलास है॥ १४॥

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहि सव्वदो मुक्को॥
उड्ढं गच्छदि सेसा, विदिसावज्जं गदिं जंति॥१॥

प्रकृति ओ थितिबंध अनुभागबंध परदेशबंध एई चार बंध भेद कहिये। इन्ही चहुं बंधतैं अबंध ह्वैके चिदानंद, अग्निशिखासम ऊर्द्धको सुभावी लहिये॥ और सब जगजीव तजै निज देह जब, परभोको गौन करै तबै सर्ले गहिये। ऐसें ही अनादिथिति नई कछू भई नाहिं, कही ग्रंथमांहि जिन तैसी सरदहिये॥ १॥

(इति जीवस्य नवाधिकाराः)

---

(१) 'अपेक्षासों' ऐसा भी पाठ है परन्तु ऐसा पाठ रखनेपर 'अनंत' शब्दका अर्थ 'नित्य' ऐसा लेना चाहिये.। (२) 'सिद्धराजनिको' ऐसा भी पाठ है।

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं ॥
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु ॥१५॥

अजीवदरव पंच ताके नांव भिन्न सुनो, पुद्गल ओ धर्मद्रव्यको सुभाव जानिये। अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य काल दर्व एई, पांचो द्रव्य जगमें अचेतन वखानिये॥ तामे पुग्गल हैं मूरतीक रूप रस गंध, पर्शमई गुणपरजाय लिये जानिये। और पंच जीव जुत कहे हैं अमूरतीक, निज निज भाव धरै भेदी है पिछानिये ॥ १५ ॥

सद्दोबंधो सुहमो, थूलो संठाण भेद तमछाया ॥
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥ १६ ॥

शवद वंध सूक्षम थूल ओ अकार रूप, ह्वैवो मिलिवो ओ विछुरिवो धूप छाय है। अंधारो उजारो ओ उद्योत चंदकांतिसम, आतप सु भानु जिम नानाभेद छाय है॥ पुद्गल अनन्त ताकी परजाय हू अनंत, लेखो जो लगाइये तोऽनंतानंत थाय है। एकही समैमें आय सव प्रतिभास रही, देखी ज्ञानवंत ऐसी पुद्गल प्रजाय है ॥ १६ ॥

गइपरणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ॥
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥ १७ ॥

जव जीव पुद्गल चलै उठि लोकमध्य, तवै धर्मास्तिकाय सहाय आय होत है। जैसें मच्छ पानीमाहिं आपुहीतैं गौन करे, नीरकी सहायसेती अलसता खोत है॥ पुनि यों नही जो पानी मीनको चलावे पंथ, आपुहीतै चलै तो सहाय कोऊ नोत है। तैसें जीव पुद्गलको और न चलाय सके, सहजै ही चलै तो सहायका उदोत है ॥ १७ ॥

ठाणजुयाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ॥
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥ १८ ॥

जीव अरु पुग्गलको थितिसहकारी होय, ऐसो है अधर्मद्रव्य लोकताई हद है। जैसें कोऊ पथिक सुपंथमध्य गौन करे, छायाके समीप आय बैठे नेकु तद है॥ पैं यों नहीं जु पंथीको राखतु बैठाय छाया, आपुने सहज बैठे वाको आश्रैपद है। तैसें जीव पुद्गलको अधर्मास्तिकाय सदा, होत है सहाय 'भैया' थितिसमैं जद है॥ १८॥

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं ॥
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥ १९ ॥

जीव आदि पंच पदार्थनिको सदाही यह, देत अवकाश तातैं आकाश नाम पायो है। ताके भेद दोय कहे एक है अलोकाकाश, दूजो लोकाकाश जिन ग्रंथनिमें गायो है॥ जैसें कहूं घर होय तामें सब बसें लोय, तातैं पंच द्रव्यहूको सदन बतायो है। याहीमें सबै रहै पै निजनिज सत्ता गहै, यातैं परें और सो अलोक ही कहायो है॥ १९॥

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये ॥
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥ २० ॥

जितने आकाशमाहिं रहैं ये दरबपंच, तितने अकाशको जु लोकाकाश कहिये। धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालद्रव्य पुद्गल,-द्रव्य जीव द्रव्य एई पांचों जहाँ लहिये॥ इनतै अधिक कछु और जो विराज रह्यो, नाम सो अलोकाकाश ऐसो सरदहिये। देख्यो ज्ञान-

(१) 'अलोगागास' ऐसा भी पाठ है।

वंतन अनंतज्ञान चक्षुकरि, गुणपरजाय सो सुभाव शुद्ध ग-
हिये ॥ २० ॥

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो ॥
परिणामादिलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥ २१ ॥

जोई सर्वद्रव्यको प्रवर्त्तावन समरथ, सोई कालद्रव्य वहुभेद-
भाव राजई । निज निज परजाय विषै परणवै यह, कालकी सहाय
पाय करैं निज काजई ॥ ताही कालद्रव्यके विराजरहे भेद दोय,
एक व्यवहार परिणाम आदि छाजई। दूजो परमार्थकाल निश्चयव-
र्त्तना चाल, कायतैं रहित लोकाकाशलौं सुगाजई ॥ २१ ॥

लोयायास पदेसे, इक्केक्के जेट्ठिया हु इक्केका ।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥२२॥

लोकाकाशके जु एक एक परदेश विषै, एक एक काल
अणु सुविराज रहे हैं । तातैं काल अणुके असंख्य द्रव्य कहिय
तु, रतनकी राशि जैसें एक पुंज लहे हैं ॥ काहुसौं न मिलै कोई
रत्नजोत दृष्टि जोई, तैसें काल अणु होय भिन्नभाव गहे हैं ।
आदि अंत मिलै नाहिं वर्त्तना सुभावमांहि, समै पल महूर्त्त प-
रजाय भेद कहे हैं ॥ २२ ॥

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥ २३ ॥

दोहा.

जीव अजीवहि द्रव्यके, भेद सुषट्विध जान ।
तामैं पंच सु काय धर, कालद्रव्य विन मान ॥ २३ ॥

(१) 'जमराजके' ऐसा भी पाठ है ।

संति जदो तेणेदे, अत्थीति भणंति जिणवरा जह्मा।
काया इव बहुदेसा, तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥२४॥

कवित्त.

ऐसे कह्यो जिनवर देख निज ज्ञान माहिं, इतने पदार्थनिको कायधर मानिये। जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य ओ अकाश द्रव्य एई नाम जानिये ॥ कायके समान सदा वहुते प्रदेश धरे, तातैं काय संज्ञा इन्हैं प्रत्यक्ष प्रवानिये । निज निज सत्तामें विराज रहे सबै द्रव्य, ऐसें भेद भाव ज्ञान दृष्टिसों पिछानिये ॥ २४ ॥

हुंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥२५॥

जीवद्रव्य धर्मद्रव्य अधरमद्रव्य इन, तीनोंको असंख्य परदेशी कहियतु है । अनंत प्रदेशी नभ पुद्गलके भेद तीन, संख्याऽसंख्याऽनंत परदेशको वहतु है ॥ कालके प्रदेश एक अन्य पांचके अनेक, तातैं पंच अस्ति काय ऐसो नाम हतु हैं। काल विन काय जिनराजजूनें यातैं कह्यो, एक परदेशी कैसें कायको धरतु है ॥ २५ ॥

एयपदेसोवि अणू, णाणाखंध प्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥२६॥

पुग्गल प्रमाणु जोपैं एक परदेश धरै, तोपैं वहु प्रमाणु मिलै बहु प्रदेश हैं।नानाकार खंधसों जु कितने प्रदेश होंहि, अनँत असंख्यसंख्य भेदको धरेश हैं॥ तातैं सर्वज्ञजूने पुग्गल प्रमाणु

(१) 'पयेसा' ऐसा भी पाठ है।

प्रति, कह्यो कायधर सदा जाके सब भेश है। देखिये जु नैननिसों पुग्गलके पुंज सबै, यहै लोक माहिं एक सासुतो नरेश है ॥२६॥

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥ २७॥

जितनों आकाश पुग्गलाणु एक रोकि रह्यों, तितने अकाश को प्रदेश एक कहिये। शुद्ध अविभागी जाके एकके न होय दोय, ऐसे परमाणुके अनेक भेद लहिये ॥ अनंत परमाणूको योग्य ठौंर देवेको जु, ऐसोही अकाशको प्रदेश एक गहिये। जामें और द्रव्य सब प्रगट विराज रहे, कोऊ काहू मिलै नाहिं ऐसो सरदहिये ॥ २७ ॥

इति श्रीपड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादनामा प्रथमोऽधिकारः ॥ १ ॥

आसववधंणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे ॥
जीवाजीवविसेसा, तेवि समासेण पभणामो ॥ २८ ॥

चौपाई १५ मात्रा.

आस्रव सँवर बंधको खंध, निर्जर मोक्ष पुण्यको बंध।
पापऽरु जीव अजीव सु भेव, इते पदार्थ कहों संखेव(१)॥ २८ ॥

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ॥
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥ २९ ॥

दुर्मिल छंद (सवैया) ३२ मात्रा.

जिँह आतमके परिणामनिसों, निजकर्महि आस्रव मान लये।
तिँह भावनको यह नाम लियो, भावास्रव चेतनके जु भये॥
दरवाश्रव पुद्गलको अयवो, करमादि अनेकन भांति ठये।
इम भावनिको करता भयो चेतन, दर्वित आस्रव ताहितैं ये ॥२९॥

---

(१) संक्षेपसे।

मिच्छत्ताविरदिपमाद, जोगकोहादओ सविण्णेया ॥
पणपणपणदहतियचदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

मात्रिक कवित्त.

पांच मिथ्यात पांच है अव्रत, अरु पंद्रह परमादहिं जान ।
मनवचकाय योग ये तीनो, चतु कषाय सोरहविधि मान ॥
इन्हैं आदि परिणाम जाति वहु, भावास्रव सब कहे बखान ।
तातैं भावकर्मको करता, चिन्मूरत 'भैया' पहिचान ॥ ३० ॥

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ॥
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ[1] जिणक्खादो ॥ ३१ ॥

कवित्त.

ज्ञानावर्णी आदि अष्ट करमनको आयवो, पुग्गलप्रमाणु मिलि नानाभांति थिते हैं। जीवके प्रदेशनिको आयके आछादतु है, कोऊ न प्रकाश लहै, असंख्यात जिते हैं ॥ ऐसो द्रव्य आस्रव अनेकभांति राजत है, ताहीके जु वसि जग वसें जीव किते हैं। कहे सर्वज्ञजूने भेद ये प्रत्यक्ष जाके, वेदै ज्ञानवंत जाके मिथ्यामत विते[2] हैं ॥ ३१ ॥

वज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भाववंधो सो ॥
कम्मादपदेसाणं, अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥ ३२ ॥

चेतन परिणामसो कर्म जिते वांधियत, ताको नाव भाववंध ऐसो भेद कहिये । कर्मके प्रदेशनिको आतमप्रदेशनिसों परस्परमिलिवो एकत्व जहां लहिये ॥ ताको नाव द्रव्यवंध कह्यो जिनग्रंथनमें, ऐसो उभै भेद वंध पद्धतिको गहिये । अनादिहीको जीव यह बंधसेती वँध्यो है, इनहीके मिटत अनंत सुख पैं-हिये[3] ॥ ३२ ॥

(१) 'अणेय भेदो' ऐसा भी पाठ है। (२) वीता है। (३) ' वहिये 'पाठभी है।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो ॥
जोगा पयडिपदेसा, ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

द्रव्यबंध भेद चारि प्रकृति ओ स्थितिबंध, अनुभागबंध परदेश बंध मानिये । प्रकृति प्रदेशबंध दोऊ मनवचकाय, के संयोगसेती होंहि ऐसे उर आनिये ॥ थिति बंध अनुभाग होंय ये कषायसेती, समुच्च समस्या एती समुझि प्रमानिये । ऐसे बंधविधि कही ग्रंथनके अनुसार सर्वंगविचार सरवज्ञ भये जानिये ॥ ३३ ॥

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ ॥
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणो अण्णो ॥ ३४ ॥

कर्मनिके आस्रव निरोधिबेके भाव भये, तेई परिणाम भावसंवर कहीजिये । द्रव्यास्रव रोकिबेको कारण सु जे जे होंय, ते ते सर्व भेदद्रव्य संवर लहीजिये ॥ याहीविधि भेद दोय कहे जिनदेव सोय, द्रव्यभाव उभै होय 'भैया' यों गहीजिये । संवरके आवत ही आस्रव न आवे कहूं, ऐसे भेद पाय परभाव त्याग दीजिये ॥ ३४ ॥

वदसमिदी गुत्तीओ, धम्माणुपेहापरीसहजओ य ॥
चारित्तं बहु भेया, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥ ३५ ॥

अहिंसादि पंच महाव्रत पंचसमितिसु, मनवचकाय तीन गुपति प्रमानिये । धरम प्रकार दश बारह सुभावनाजु, बाईस परीसह को जीतिबो सुजानिये ॥ बहुभेद चारितके कहत न आवै पार, अति ही अपार गुण लच्छन पिछानिये । एते सब भेद भाव संवरके जानियेजु, समुच्चैहि नाम कहे 'भैया' उर आनिये ॥३५॥

जहकालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ॥
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥

मात्रिक कवित्त.

जे परिणाम होंहि आतमके, पुग्गल करम खिरनके हेत ।
अपनों काल पाय परमाणू, तप निमित्ततैं तजत सुखेत ॥
तिहँ खिरिवेके भाव होंहि वहु, ते सब निर्जरभाव सुचेत ।
पुग्गल खिरै सुद्रव्य निर्जरा, उभयभेद जिनवर कहिदेत ॥३६॥

सव्वस्स कम्मणो जो, खय हेदू अप्पणो क्खु परिणामो ॥
णेवो सभावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ३७

छप्पय छंद.

सकल कर्म छय करन, भाव अंतरगत राजे ।
तिन भावनिसों कहत, भाव यह मोक्ष सु छाजे ॥
दर्वमोक्ष तहाँ लहत, कर्म जहां सर्व विनासैं ।
आतमके परदेश, भिन्न पुद्गलतैं भासैं ॥
इहविधि सुभेद द्वै मोक्षके, कहे सु जिनपथ धारिकैं ।
यह द्रव्य भावविधि सरदहत, सम्यकवंत विचारिकैं ॥३७॥

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा ॥
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥ ३८ ॥

कवित्त.

शुभभाव तहां जहां शुभ परिणाम होहिं, जीवनिकी रक्षा अरु व्रतनिकों करिवो । तातैं होय पुण्य ताको फल सातावेदनीय, शुभ आयु शुभगोत वहु सुख वरिवो ॥ अशुभ प्रणामनितैं जीव हिंसा आदि वहु, पापके समूह होंय सुकृतको हरिवो । वेदनी असाता होय छिनकी न साता होय, आयु नाम गोत सब अशुभको भरिवो ॥ ३८ ॥

इतिश्रीसप्ततत्वनवपदार्थ प्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारः ॥ २ ॥

(१) 'पुह' ऐसा भी पाठ है. ।

सम्मद्दंसण णाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्चयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥३९॥

छप्पय.

सम्यकदरशप्रमाण, ज्ञान पुनि सम्यक सोहै ।
अरु सम्यक चारित्र, त्रिविध कारण शिव जो है ॥
नय व्यवहार वखानि, कह्यो जिन आगम जैसे ।
निहचै नय अव सुनहु, कहहुं कछु लच्छन तैसे ॥
दर्शन सुज्ञान चारित्रमय, यह है परम स्वरूप मम ।
कारणसु मोक्षको आपु तैं, चिद्विलास चिद्रूप क्रम ॥ ३९ ॥

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि ॥
तह्मा तत्तिय मइओ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा॥४०॥

कवित्त.

जीव व्यतिरेक ये रतनत्रय आदि गुण, अन्य जड़द्रव्यनिमें नेकुहू न पाइये । तातैं दृगज्ञानचर्ण आतमको रूपवर्ण, त्रिगुणको मूलधर्ण चिदानंद ध्याइये ॥ निश्चैनय मोक्षको जु कारण है आप सदा, आपनो सुभाव मोक्ष आपुमें लखाइये । जैसें जैनवैनमें वखाने भेदभाव ऐन, नैनसो निहार 'भैया' भेद यों वताइये ॥ ४० ॥

जीवादीसद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणे तं तु ॥
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥४१॥

जीवादि पदार्थनिकी जौंन सरधानरूप, रुचि परतीति होय निजपरभास है । ताको नाम सम्यक कहा है शुद्ध दरशन, जाके सरधाने विपरीत वुद्धि नाश है ॥ आतम स्वरूपको सुध्यान

ऐसे कहियतु, जाके होत होत वहु गुणको निवास है। सम्यक दरस भये ज्ञानहू सम्यक होय, इन्हैं आदि और सब सम्यक विलास है ॥ ४१ ॥

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ॥
गहणं सम्मं णाणं सायारमणेयभेयं तुं ॥ ४२ ॥

छप्पय.

निजपरवस्तु स्वरूप, ताहि वेदै अरु धारै ।
गुन लच्छन पहिचानि, यथावत अंगीकारै ॥
संशय विभ्रम मोह, ताहि वर्जित निज कहिये ।
ऐसो सम्यक ज्ञान, भेद जाके वहु लहिये ॥
तसपद महिमा अगम अति, बुधिवलको वरनन करै ।
यह मतिज्ञानादिक वहुत, भेद जासु जिन उच्चरै ॥ ४२ ॥

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं ॥
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णये समये ४३

मात्रिककवित्त.

जासु स्वरूप सवै प्रतिभासत, दर्शन ताहि कहै सव कोय ।
भावऽरु भेद विचार विना जहँ, एकहि वेर विलोकन होय ॥
जानि जु द्रव्य यथावत वेदत, भेद अभेद करै नहिं जोय ॥
गुण देखै विकल्प विनु 'भैया', दरसन भेद कहावे सोय॥४३॥

दंसणपुव्वं णाणं, छदमत्थाणं ण दुण्णि उवयोगा ॥
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दोवि ॥ ४४ ॥

---

(१) 'च' ऐसा भी पाठ है ।

कुंडलिया.

सब संसारी जीवको, पहिले दरशन होय।
ताके पीछें ज्ञान है, उपजैं संग न दोय॥
उपजैं संगन दोय, कोइ गुण किसि न सहाई।
अपनी अपनी ठौर, सबै गुण लहै बडाई॥
पैंश्रीकेवल ज्ञानको, होय परमपद जब्ब।
तब कहुं समैं न अंतरो, हौंहिं इकट्ठे सब्ब॥ ४४॥

असुहादो विणवित्ती,सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं॥
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं॥४५॥

कवित्त.

पापपरिणाम त्याग हिंसातैं निकसि भाग, धरमके पंथ लाग दयादान कररे। श्रावकके व्रत पाल ग्रंथनके भेद भाल, लगै दोष ताहि टाल अघनिको हररे॥ पंच महाव्रतधरि पंच हू समिति करि, तीनहू गुपति वरि तेरह भेद चररे। कहै सर्वज्ञ देव चारित्र व्योहारभेव, लहि ऐसा शीघ्रमेव वेग क्यों न तररे॥ ४५॥

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं॥ ४६॥

अभ्यंतर बाह्य दोऊ क्रियाको निरोध तहां, परम सम्यक्त गुण चारित उदोत है। बैन अरु काय दोऊ बाहिरके योग कहे, मन अभ्यंतर योग तीनो रोध होत है॥ ताहीतैं निघट जल जात है संसाररूप, रागादिक मलिनको याही क्रम खोत है। कषाय आदि कर्मके समूहको विनाश करैं, ताको नाव सम्यक चारित्र-दधिपोत है॥ ४६॥

(१) इस कुंडलियेमें कुछ विलक्षणता है।

दुविहंपि मोक्ख हेउं, झाणे पाउणादि जं मुणी णियमा ।
तह्मा पयत्तचित्ता, जूयं ज्झाणं समब्भसह ॥४७॥

मात्रिक कवित्त.

द्वै परकार मोखको कारण, नितप्रति तस कीजे अभ्यास ।
रत्नत्रयतैं ध्यानप्राप्त पुन, सुख अनंत प्रगटै निजरास ॥
ध्यान होय तो लहै रतनत्रय, छिनमें करै कर्मको नास ।
तातैं चिंता त्याग भविकजन, ध्यान करो धर मन उल्लास॥४७॥

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु ॥
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए॥४८॥

छप्पय.

मोह कर्म जिन करहु, करहु जिन रागऽरु द्वेपहिं ।
इष्ट संयोगहि देख, करहु जिन राग विशेपहिं ॥
मिलहिं अनिष्टसँयोग, द्वेप जिन करहु ताहि पर ।
जो थिरता चित चहहु, लहहु यह सीख मंत्र वर ॥
ध्रुवध्यान करहु वहु विधिसहित, निर्विकल्पविधि धारिकें ।
जिमि लहहु परमपद पलकमें, त्रिविध करम अघ टारिकें॥४८॥

पणतीस सोल छ प्पण, चदु दुगमेगं च जवह झाएह ॥
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥ ४९ ॥

चौपई १९ मात्रा.

पंच परम पद कीजे ध्यान । तस अक्षरका सुनहु विधान ।
तीस पंच अक्षर गणलीजे । नमस्कार नितप्रति तिहँ कीजे ॥
'णमो अरहंताणं' सात । 'णमो सिद्धाणं' पंच विख्यात ।
'णमो आयरियाणं' पँच दोय।'णमो उवज्झायाणं' रिपि[3] होय

(१) मत । (२) 'विनान' ऐसाभी पाठ है। (३) सात ।

'णमोलोए सव्वसाहूणं' । नवमिलि पैंतिस अक्षर गुणं ।
शोलह अक्षरको विस्तार । सुनहु भविक परमागमसार ॥
'अरहंत सिद्ध आचारज'नाम।'उपाध्याय'नित'साधु'प्रणाम।
'अरहंत सिद्ध' छै अक्षर जान।'अ सि आ उ सा' पंच प्रधान।
चतु अक्षर 'अरहंत' चितारि। द्वै अक्षर श्री 'सिद्ध' निहारि ॥
इक अक्षर 'ओं' सब ही धरै । इनको सुमरन भविजन करै ।
ये सबही परमेष्टि लखेय । अन्य सकलगुरुमुख सुनलेय ॥

दोहा.

इह विधि पंच परमपदहि, भविजन नितप्रति ध्याय ॥
इनके गुणहि चितारतैं प्रगट इन्ही सम थाय ॥ ४९ ॥

णट्ठ चउघायकम्मो, दंसण सुहणाणवीरियमइओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

कवित्त.

ऐसें निज आतम अर्हंतको विचारियतु, चारकर्म नष्ट गये ताहीतैं अफंद है। ज्ञानदर्शवरणीय मोहिनी सु अंतराय, येही चारि कर्म गये चेतन सुछंद है ॥ दृष्टिज्ञान सुख वीर्य अनंत चतुष्टै युक्त, आतमा विराजमान मानों पूर्णचंद है । परमोदारीक देह बसै राग तजै जेह, दोपनितैं रह्यो सुद्ध ज्ञानको दिनंद है ॥ ५० ॥

णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणयो दट्ठा ॥
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो ज्झायेह लोयसिहरत्थो ॥५१॥

ऐसे यह आतमाको सिद्ध कह ध्याइयतु, आठोंकर्म देहादिक दोप जाके नसे हैं। लोक ओ अलोकको जु ज्ञानवन्त दृष्टिमाहिं, जाकी स्वच्छताईमें सुभाव सब लसे हैं॥अनंतगुण प्रगट अनंतकाल परजंत, थिति है अडोल जाकी पुरुपाकार वसे हैं।ऐसो है स्व-

रूप सिद्धखेतमें विराजमान, तैसो ही निहारि निज आपुरस रसे हैं ॥ ५१ ॥

दंसण णाणपहाणे, वीरिय चारित्त वरतवायारे ॥
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी ज्झेओ॥५२॥

पंच जु आचारजके जानत विचार भले, ताही आचारजजूको नाम गुणधारी है। आपहू प्रवर्त्तै इह मारग दयाल रूप, औरं प्रवर्तावनको परउपकारी है ॥ दरसनाचार ज्ञानाचारवीर्याचार चर्णाचार तपाचारमें विशेष वुद्धि भारी है। इन्हें आदि और गुण केतेई विराज रहे, ऐसे आचारज प्रति वंदना हमारी है ॥५२॥

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो ॥
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स ॥ ५३ ॥

मात्रिक कवित्त.

सम्यक दरश ज्ञान पुनि सम्यक,अरु सम्यक चारित कहिये।
ये रतनत्रय गुण करि राजत, द्वादश अँग भेदी लहिये ॥
सदा देत उपदेश धरमको, उपाध्याय इह गुण गहिये।
मुनि गणमाहिं प्रधान पुरुष है,ता प्रति वंदन सरदहिये ॥५३

दंसण णाणसमग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्च सुद्धं, साहू स मुणी णमो तस्स ॥ ५४ ॥

दोहा.

सम्यक दर्शन संजुगत, अरु सम्यक़ जहँ ज्ञान।
तिहँ करि पूरण जो भर्यो, सो चारित परमान।
चारित मारग मोक्षको, सर्वकाल सुध होय।
तिहँ साधत जो साधु मुनि, तिनप्रति वंदत लोय ॥ ५४ ॥

जंकिंचि विचिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ॥
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्चयं ज्झाणं ॥ ५५ ॥

छप्पय.

जव कहुं साधु मुनीन्द्र, एक निज रूप विचारें।
तव तहँ साधु मुनीन्द्र, अघनिके पुंज विदारें ॥
जव कहुं साधु मुनीन्द्र, शुद्ध थिरतामहिं आवै।
तव तहँ साधु मुनीन्द्र, त्रिविधिके कर्म वहावै ॥
इम ध्यान करत मुनिराज जव, रागादिक त्रिक टारिके।
तिन प्रति निश्चै कहत जिन, वँदहु सुरति सँभारिके ॥ ५५ ॥

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो॥
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥ ५६ ॥

कवित्त.

मनवचकाय तिहूं जोगनिसों राचि कहुं, करो मति चेष्टा तुम इन की कदाचिकें। वोलो जिन वैन कहूं इनसों मगन ह्वैके, चिंतो जिन आन कछु कहूं तोहि सांचिकें ॥ पर वस्तु छांड निज रूप माहिं लीन होय, थिरताको ध्यान करि आतमसों राचिकें। देख्यो जिन जिनवान यहै उतकृष्ट ध्यान,जामे थिर होय पर्म कर्म नाच नाचिकें ॥ ५६ ॥

तवसुदवदवं चेदा, ज्झाणरहधुरंधरो जह्मा ॥
तह्मा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥ ५७ ॥

मात्रिक कवित्त.

जव यह आतम करै तपस्या, दाहै सकल कर्मवन कुंज ॥
श्रुतसिद्धांत भेद वहु वेदत, जपै पंच पदके गुणपुंज ॥

(१) मत। (२) मत।

व्रतपच्चेखान करै वहु भेदै, इन संयुक्त महा सुख भुंज ।
तब तिहँ ध्यान धुरंधर कहिये, परमानंद प्राप्तिमें मुंज ॥५७॥
दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ॥
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं॥५८॥

कवित्त.

सकलगुण निधान पंडितप्रधान वहु, दूषणरहित गुणभूषण-सहित हैं । तिनप्रति विनवत नेमिचंद मुनिनाथ, सोधियो जु याको तुम अर्थ जे अहित हैं ॥ ग्रंथ द्रव्यसंग्रह सु कीनो मैं वहुतथोरो, मेरी कछु बुद्धि अल्पशास्त्र जो महित हैं । तातें जु यह ग्रंथ रचना-करी है कछु, गुण गहि लीज्यो एती, विनती कहित हैं ॥५९ ॥

इति श्रीद्रव्यसंग्रहग्रंथे मोक्षमार्गकथनं तृतीयोऽधिकारः ।

दोहा—

नेमचंद मुनिनाथने, इहविध रचना कीन ॥
गाथा थोरी अर्थ वहु, निपट सुगम करदीन ॥ १ ॥

छप्पय.

ज्ञानवंत गुण लहै, गहै आतमरस अम्रत ।
परसंगत सब त्याग, शांतरस वरें सु निज कृत ॥
वेदै निजपर भेद, खेद सब तजें कर्मतन ।
छेदै भवथिति वास, दास सब करहिं अरिनगन ॥
इहविधि अनेक गुण प्रगट करि, लहै सुशिवपुर पलकमें ।
चिद्विलास जयवंत लखि, लेहु 'भविक' निज झलकमें ॥ २ ॥

दोहा.

द्रव्यसंग्रह गुण उदधिसम, किहँविधि लहिये पार ।
यथाशक्ति कछु वरणिये, निजमतिके अनुसार ॥ ३ ॥

(१) प्रत्याख्यान=त्याग ।

चौपाई १५ मात्रा.

गाथा मूल नेमिचँद करी । महा अर्थनिधि पूरण भरी ॥
वहुश्रुत धारी, जे गुणवंत। ते सव अर्थ लखहिं चिरतंत ॥४ ॥
हमसे मूरख समझें नाहिं । गाथा पढ़ै न अर्थ लखाहिं ॥
काहू अर्थ लखे वुधि ऐन। वांचत उपज्यो अति चितचैन ॥५॥
जो यह ग्रंथ कवितमें होय। तौ जगमाहिं पढ़ै सव कोय ॥
इहिविधि ग्रंथ रच्यो सुविकास, मानसिंह व भगोतीदास ॥ ६ ॥
संवत सत्रहसे इकतीस, माघसुदी दशमी शुभदीस ॥
मंगल करण परमसुखधाम, द्रवसंग्रहप्रति करहुं प्रणाम ॥ ७ ॥

इति श्रीद्रव्यसंग्रहमूलसहित कवित्तबंध समाप्तः ।

अथ चेतनकर्मचरित्र लिख्यते.

दोहा.

श्रीजिन चरण प्रणाम कर, भाव भक्ति उर आन ॥
चेतन अरु कछु कर्म को, कहहुं चरित्र वखान ॥ १ ॥
सोवत महत मिथ्यात में, चहुं गति शय्या पाय ॥
वीत्यो काल अनादि तहँ, जग्यो न चेतन राय ॥ २ ॥
जवही भवथिति घट गई, काल लब्धि भइ आय ॥
वीती मिथ्या नीद तहँ, सुरुचि रही ठहराय ॥ ३ ॥
किये कर्ण प्रथमहि तहां, जाग्यो परम दयाल ॥
लह्यो शुद्ध सम्यक दरस, तोरि महा अघ जाल ॥ ४ ॥
देखहिं दृष्टि पसारिकें, निज पर सवको आदि ॥
यह मेरे सँग कौन हैं, जड़सें लगे अनादि ॥ ५ ॥
तव सुवुद्धि वोली चतुर, सुन हो ! कंत सुजान ॥
यह तेरे सँग अरि लगे, महासुभट वलवान ॥ ६ ॥

कहो सुबुद्धि किम जीतिये, ये दुश्मन सब घेर ॥
ऐसी कला बताव जिमि, कबहुं न आवें फेर ॥ ७ ॥
कह सुबुद्धि इक सीख सुन, जो तू मानें कंत ॥
कै तो ध्याय स्वरूप निज, कै भज श्रीभगवंत ॥ ८ ॥
सुनिके सीख सुबुद्धिकी, चेतन पकरी मौन ॥
उठी कुबुद्धि रिसायके, इह कुलक्षयनी कौन ? ॥ ९ ॥
मै बेटी हूं मोह की, ब्याही चेतनराय ॥
कहौ नारि यह कौन है, राखी कहां लुकाय ॥ १० ॥
तब चेतन हँस यों कहै, अब तोसों नहिं नेह ॥
मन लाग्यो या नारिसों, अति सुबुद्धि गुण गेह ॥ ११ ॥
तबहिं कुबुद्धि रिसायके, गई पिताके पास ॥
आज पीय हमें परिहरी, तातें भई उदास ॥ १२ ॥

चौपाई (मात्रा १५)

तबहिं मोह नृप बोलै बैन । सुन पुत्री शिक्षा इक ऐन ॥
तू मन में मत है दलगीर । बांध मँगावत हों तुमतीर ॥ १३ ॥
तब भेजो इक काम कुमार । जो सब दूतनमें सरदार ॥
कहो बचन मेरो तुम जाय । क्योंरे अंध अधरमी राय ॥ १४ ॥
ब्याही तिय छांड़हि क्यों कूर। कहां गयो तेरो बल शूर ॥
कै तो पांय परहु तुम आय । कै लरिबे को रहहु सजाय ॥ १५ ॥
ऐसे बचन दूत अवधार । आयहु चेतन पास विचार ॥
नृपके बैन ऐन सब कहे । सुनके चेतन रिस गह रहे ॥ १६ ॥
अब याको हम परसें नाहिं । निजबल राज करें जगमाहिं ॥
जाय कहो अपने नृप पास । छिनमें करूं तुम्हारो नास ॥ १७ ॥

तुम मन में मत करहु गुमान । हम वहु हैं यह एक सुजान ॥
कर आवहु असवारी वेग । मैं भी बांधी तुम पर तेग ॥ १८ ॥
ऐसे वचन सुनत विकराल । दूत लखै यह कोप्यो काल ॥
उन से तो जब ह्वै है रारि । तवलौं मोह न डारै मारि ॥ १९ ॥
तव मन में यह कियो विचार । अवके जो राखै करतार ॥
तो फिर नाम न इनको लेउं । चेतनको पुर सव तज देउं ॥ २० ॥
तव वोले चेतन राजान । जाहु दूत तुम अपने थान ॥
फिर जिन आवहु इहिपुर माहिं । देखेसों वचिहो पुनि नाहिं ॥ २१ ॥

सोरठा.

दूत लह्यो प्रस्ताव, मन में तो ऐसी हुती ॥
भलो वन्यो यह दाव, आयो राजा मोह पैं ॥ २२ ॥
कही सवै समुझाय, वातैं चेतन राय की ॥
नवहि न तुमको आय, लरिवे की हामी भरै ॥ २३ ॥
सुनके राजा मोह, कीन्हीं कटकी जीव पैं ॥
अहो सुभट सज होय, घेरो जाय गँवार को ॥ २४ ॥
सज सज सवही शूर, अपनी अपनी फौज ले ॥
आये मोह हजूर, अवै महलो लीजिये ॥ २५ ॥

चौपाई.

राग द्वेष दोउ वड़े वजीर । महा सुभट दल थंभन वीर ॥
फौज माहिं दोऊँ सरदार । इनके पीछें सव परवार ॥ २६ ॥
ज्ञानावरण वोलै यों वैन । मो पै पंच जाति की सैन ॥
जिन जग जीव किये सव जेर । राखे भवसागर में घेर ॥ २७ ॥

(१) आक्रमण । (२) हाजिरी । (३) कैद ।

ज्ञान उपरि मेरे सब लोग। ताहींतैं न जगै उपयोग ॥
जानें नहीं 'एक अरु दोय'। सो महिमा मेरी सब होय ॥ २८ ॥
तब दर्शनावरण यों कहै। जगके जीव अंध ह्वै रहै ॥
सो सब है मेरो परशाद। नौ रस बीर करैं उनमाद ॥ २९ ॥
तबै वेदनी बोलै धीर। मो पैं दोय जातिके वीर ॥
महा सुभट जोधा बलसूर। तीर्थंकर के रहैं हुजूर ॥ ३० ॥
और जीव वपुरे किहि मात। मेरी महिमा जग विख्यात ॥
मोको चाहैं चहुं गति माहिं। मैं छिन सुख द्यों छिन दुख पांहि॥ ३१॥
आयु कर्म बोलै बलवंत। सिद्ध विना सब मेरे जंत[1] ॥
मैं राखों तोलौं थिर रहै। नातरु पंथ मौत की गहै ॥ ३२ ॥
मो पैं चार जातिके सूर। तिनसौं युद्ध करै को कूर ॥
चहुंगति में मेरे सब दास। मैं त्यागों तब शिवपुरवास ॥ ३३ ॥
नामकर्म बोलै गहि भार। मो विन कौन करै संसार ॥
मैं करता पुदगल को रूप। तामें आय वसै चिद्रूप ॥ ३४ ॥
वीर तिरानवे मेरे संग। रूप रसीले अरु बहुरंग ॥
इनसौं सरभर[2] को जिय करै। तोहु न छाँडै मर अवतरै ॥ ३५ ॥
गोत्रकर्म लै द्वय असवार। ऊंचनीच जिनको परवार ॥
सूर वंशको यहै स्वभाव। छिनमें रंक करै छिन राव ॥ ३६ ॥
अंतराय अपनों दलसाज। पंच सुभट देखौ महाराज ॥
सबके आगें ये असवार। रणमें युद्ध करैं निरधार ॥ ३७ ॥
कर हथियार गहन नहिं देहिं। चेतनकी सुधि सब हर लेहिं॥
ऐसे सुभट एक सौ बीस। तिनके गुणजानें जगदीश ॥ ३८ ॥

(१) जीव। (२) बराबरी।

इनके सुभट सात सरदार । परदल गंजन जवर जुझार ॥
तवै मोह नृप अति आनंद । देखे सब सुभटनके वृन्द ॥ ३९ ॥

प्लवङ्गम छन्द.

राग द्वेष द्वय मित्र, लये तब वोलिकै ।
तुम ल्यावहु मम फौज, भवनत्रय खोलिकै ॥
वीस आठ असवार, बड़े सब सूरमा ।
अरिपै यों चल जाहिं, नदी ज्यों पूरमा ॥ ४० ॥
राग द्वेष तहँ चले, जहां सब सूर हैं ।
लाये तुरत वुलाय, प्रभू ये हजूर हैं ॥
तब बोले मुख वैन, जीवपर हम चढ़े ।
सुनके श्रवनन शब्द, सूरके मन वढ़े ॥ ४१ ॥
फौजें कीन्हीं चार, वडे विसतारसों ।
निज सेवक सरदार, किये भुजभारसों ॥
पहिली फौजें सात, सुभट आगें चले ।
दूजी फौजें चार, चारतें सब भले ॥ ४२ ॥
दे धोंसा सब चढे, जहां चेतन वसै ।
आये पुरके पास, न आगें को धसै ॥
चेतनको गढ़ जोर, देख सब थरहरे ।
सात सुभट तब निकस, सबन आगें अरे ॥ ४३ ॥

दोहा.

उदय दूत सुधि मोहकी, कही जीवपै जाय ॥
कहां रहे तुम वैठके?, फौजें लागी आय ॥ ४४ ॥

(१) नगाड़े वजाकर ।

सोरठा.

सुनके चेतन राय, चित चमक्यो कीजे कहा ॥
लीन्हों ज्ञान बुलाय, कहो मित्र कहा कीजिये ॥४५॥
तब बोलै यों ज्ञान, इनसों तो लरिये सही ॥
हरिये इनको मान, अपनी फौजें साजिये ॥ ४६ ॥

चौपाई (१५ मात्रा)

तब चेतन बोले मुख वीर । तुमसे मेरे वड़े वजीर ॥
तो मो कहँ चिंता कछु नाहिं। निर्भय राज करूं जगमाहिं ॥ ४७ ॥
इनपै फौज करहु तय्यार । लेहु संग सब सूर जुझार ॥
तबै ज्ञान सब सूर बुलाय । हुकम सुनायो चेतनराय ॥ ४८ ॥
ह्वै तैयार गहहु हथियार । कर्मनसों अव करनी मार ॥
सुनिकर सूर खुशी अतिभये । अंतमुहूरतमें सज गये ॥ ४९ ॥
लेहु हाजिरी ज्ञान बजीर । कैसे सुभट बने सब वीर ॥
तबै ज्ञान देखै सब सैन । कौन कौन सूरा तुम ऐन ॥ ५० ॥
प्रथम स्वभाव कहै मैं वीर । मोहि न लागें अरिके तीर ॥
और सुनहु मेरी अरदास । छिनमें करूं अरिंनको नास ॥ ५१ ॥
तब सुध्यान बोलै मुख बैन । हुकम तुम्हारे जीतों सैन ॥
मो आगें सब अरि नसि जाय। सूर[1] देख जिम तिमर पलाय ॥ ५२ ॥
पुनि बोलो चारित बलवंत । छिनमें करहुं अरिन को अंत ॥
अरु विवेक बोलै बलसूर । देखत मोह नसहिं अरिकूर ॥ ५३ ॥
तब संवेग कहै कर मान । अरिं कुल अबहिं करूं घमसान ॥
तब उत्तम बोले समभाव । मैं जीते बांके गढ़राव ॥ ५४ ॥

---

(१) सूर्यको ।

तौ अरि वपुरे हैं किंह मात । तम सम चूर करौं परभात ॥
बोलै वच संतोष रसाल । मो आगें वे कहा कँगाल ॥ ५५ ॥
धीरज कहै मोसन को सूर । पलमें करहुँ अरिन चकचूर ॥
सत्य कहै मोमैं बहु जोर । जीतौं वैरी कठिन करोर ॥ ५६ ॥
उपशम कहत अनेक प्रकार । मैं जीते वैरी सरदार ॥
दर्शन कहत एकही वेर । जीतौं सकल अरिनको घेर ॥ ५७ ॥
आये दान शील तप भाव । निश्चय विधि जानैं जिनराव॥
पार न पावहुँ नाम अपार । इहि विधि सकल सजे सरदार॥ ५८ ॥
तवहिं ज्ञान चेतनसों कही । फौज तुम्हारी सव वन रही ॥
चेतन देखै नयन उघार । यह तौ फौज भई तय्यार ॥ ५९ ॥
अवहीं मेरे सूर अनंत । ल्यावहु ज्ञान हमारे मंत्रं ॥
शक्ति अनन्त लसैं निज नैन । देखो प्रभू तुम्हारी सैन ॥ ६० ॥
अनँत चतुष्टय आदि अपार । सेना भई सवै तयार ॥
जुरे सुभट सव अति वलवंत । गिनती करत न आवै अन्त ॥ ६१ ॥

दोहा.

कहै ज्ञान चेतन सुनहु, रोष करहु जिन रंच ॥
एक वात मुहि ऊपजी, कहूं विना परपंच ॥ ६२ ॥
कहै जीव कहि ज्ञान तू, कैसी उपजी वात ॥
तुम तो महा सुवुद्धि हो, कहते क्यों सकुचात? ॥ ६३ ॥
तवहिं ज्ञान निःशंक है, बोले प्रभु सन वैन ॥
चाकर एकहि भेजिये, गहि लावे सव सैन ॥ ६४ ॥

सोरठा.

कहा विचारो मोह, जिहँ ऊपर तुम चढ़त हो ॥
भेजहु सेवक सोह, जीवित लावै पकरके ॥ ६५ ॥

---

(१) मंत्री।

कहै चेतन सुनज्ञान, वह घेर्यो पुर आयके ॥
यह कहो कौन सयान, रहिये घरमें बैठके ॥ ६६ ॥
सूरनकी नहिं रीति, अरि आये घरमें रहै ॥
कै हारें कै जीति, जैसी है तैसी बनै ॥ ६७ ॥
कहै ज्ञान सुनि सूर, तुम जो कहो सो सांच है ॥
कहा विचारो कूर, जिहँ ऊपर तुम चढ़त हौ ॥ ६८ ॥

पद्धरिछंद (१६ मात्रा)

तव ज़ीव कहै सुनिये सुज्ञान । तुम लायक नाहीं यह सयान ॥
वह मिथ्यापुरको है नरेश । जिहँ घेरे अपने सकल देश ॥ ६९ ॥
जाके सँग सूरा हैं अनेक । अज्ञान भाव सव गहैं टेक ॥
मंत्रीसुर रागद्वेष हेर । छिनमें सव सेना करहिं जेर ॥ ७० ॥
संशय सो गढ़ जाके अटूट । विभ्रम सी खाई जटाजूट ॥
विषया सी रानी जासु गेह । सुत जाके सूर कपायसेह ॥ ७१ ॥
सैनापति चारों है अनंत । जिहँ घेरो अव्रतपुर महंत ॥
व्रतनामी लीन्हों देश छीन । परमत्तहिं दोही आय कीन ॥ ७२ ॥
इहि विधि सब घेरे देश जेह । चढ़ आई फौजें लगी तेह ॥
तातें नृप आप अनंत जोर । वल जासुन पारावार ओर ॥ ७३ ॥
आयुध जाके भ्रम चक्र हाथ । वहु धारा जास उपाधि साथ ॥
महा नाग फाँस विद्या अनेक । वँध सत्तर कोड़ा कोड़ि टेक ॥ ७४ ॥
वाणादिक महा कठोर भाव । जिहिं लगै वचत नहिं रंक राव ॥
इहि विधि अनेक हथियार धार । कहुं नाम कहत नहिं लहै पार ७५ ॥
यह मोह महा बलवत भूप । तुम ज्ञाता जानत सव स्वरूप ॥
कैसें कर इन सों बचौ जाव ? । तुम स्यानें है चूकौ न दाव ॥ ७६ ॥

सोरठा.

तब बोले यों ज्ञान, जिय! तुमने सांची कही ॥
पै मेरे अनुमान, तुम क्यों जानो बात यह ॥ ७७ ॥

कहै जीव सुन मित्र, मैं बीतक अपनो कहूं ॥
तू धरि निश्चयचित्त, सुनहु बात विस्तारसों ॥ ७८ ॥

चौपई.

यही मोह नृप मोहि भुलाय। निजपुत्री दीन्ही परनाय ॥
ताकी याद मोह कछु नाहिं। काल अनादि याहि विधि जाहिं७९
मेरी सुधि बुधि सब हर लई। मोहि न सुरत रंच कहुं भई ॥
इहि कीन्हो जैसो नट कीस। विविध स्वांग नाच्यौ निशिदीस८०
चौरासी लख नाम धराय। कबहु स्वर्ग नरक लै जाय ॥
कबहू करै मनुष तिरजंच। लखेन जाहिं याके परपंच॥८१॥
जडपुर को मुह किया नेरश। मैं जानो सब मेरो देश ॥
तब मैं पाप किये इहि संग। मानि मानि अपने रस रंग ॥
तब मै बसौ मोहके गेह। तातें सब विधि जानों येह॥८२॥
कहो कहां लों बहु विस्तार। थोरेमैं लख लेहु विचार॥८३॥

सोरठा.

तब बोलै इम ज्ञान, यह परमारथ मैं लह्यौ ॥
अब तुम सुनहु सुजान, एक हमारी बीनती ॥ ८४ ॥

सेवक भेजो एक, जो अतिही बलवंत हो ॥
तब रहै तुम्हरी टेक, मेरे मन ऐसी बसी ॥ ८५ ॥

कहै जीव सुन ज्ञान, विना विचारे क्यों कहौ ॥
मोह महा बलवान, ताकी पटतर कौन है? ॥ ८६ ॥

चौपाई.

कहै ज्ञान सुन जीव नरेश। तुम सम और न कोउ राजेस ॥
सुख समाधि पुर देश विशाल। अभय नाम गढ़ अतिहि रसाल ८७
तामें सदा बसहु तुम नाथ। निशि दिन राज करौ हित साथ॥
सुमति आदि पटरानी सात। सुबुधि क्षमा करुणा विख्यात ८८॥
निर्जर दोय धारणा एक। सात आदि अरु सखी अनेक ॥
बांधव जहां धरमसे धीर। अध्यातम से सुत वरवीर ॥८९॥
मित्र शांति रस बसै सुपास। निजगुण महल सदा सुख वास॥
ऐसे राज करहु तुम ईश। सुख अनंत विलसहु जगदीश ९०
तुम पै सूर सैनको जोर। तिनको पार नहीं कहुं ओर ॥
तुम अपनें पुर थिर ह्वै रहौ। वचन हमारो सत सरदहौ ॥९१॥
आज्ञा करहु एक जन कोय। सज सेना वह आगैं होय ॥
कहै जीव तुम सुनहु सुज्ञान। तुम्हरे वचन्न हमें परवान ॥९२॥
हम आज्ञा यह तुमको करी। लेहु महूरत अति शुभ घरी ॥
चढहु कर्म पै सज हथियार। सूर बडे सब तुम्हरी लार ॥९३॥
हमतुममें कछु अन्तर नाहिं। तुम हममें हम हैं तुम माहिं ॥
जैसे सूर तेज दुति धरै। तेज सकल सूरज दुति करै ॥९४॥
इहि विधि हम तुम परमसनेह। कहत न लहिये गुणको छेह ॥
ज्ञान कहै प्रभु सुन इक बैन। शिक्षा मोहि दीजियो ऐन ॥९५॥
तुम तो सब विधि हौ गुन भरे। पै अरि सों कबहूं नहिं लरे ॥
तातें तुम रहियो हुशियार। युद्ध बड़े अरिसों निरधार ॥९६॥

वेशरी छंद. (१६ मात्रा)

ज्ञान कहै विनती सुन स्वामी। तुम तौ सबके अन्तर जामी ॥
कहा भयो न करी मै रारी। अब देखो मेरी तरवारी ॥ ९७ ॥

वे सव दुष्ट महा अपराधी । किहँ विधि सैन जाय सव साधी ॥
मेरे मन अचरज यह ज्ञाना । पै मैं जानों तुम बलवाना ॥ ९८ ॥

दोहा.

ज्ञान कहै चेतन सुनो, तुमसे मेरे नाथ ॥
कहा विचारो क्रूर यह, गहि डारों इक हाथ ॥ ९९ ॥
तव चेतन ऐसें कहै, जीत तुम्हारी होय ॥
मारि भगावों मोहको, रागद्वेष अरि दोय ॥ १०० ॥

करिखा छंद ।

ज्ञान गंभीर दलवीर संग ले चढ्यो, एक तें एक सव सरस सूरा । कोट अरु संखिन न पार कोऊ गने, ज्ञानके भेद दल सवल पूरा ॥१०१॥ सिपहेसालार सरदार भयो भेद नृप, अरि न दलचूर यह विरद लीनो । हाथ हथियार गुणधार विस्तार वहु, पहिर दृढभाव यह सिलह कीनो ॥ १०२ ॥ चढत सव वीर मन धीर असवार हैं, देख अरिदलनको मान भंजे । पेख जयवंत जिनचंद सवही कहैं, आज पर दलनिको सही गंजे ॥१०३॥ अतिहि आनंदभर वीर उमगंत सव, आज हम भिड़नको दाव पायो ॥ युद्ध ऐसो विकट देख अरि थर हरें, होय हम नाम दिन दिन सवायो ॥ १०४ ॥

मरहठा छंद.

वजहिं रण तूरे, दल वहु पूरे; चेतन गुण गावंत ॥
सूरा तन जग्गो, कोऊ न भग्गो, अरिदलपै धावंत॥
ऐसे सव सूरे, ज्ञान अँकूरे, आये सन्मुख जेह ॥
आपावल मंडे, अरिदल खंडे, पुरुषत्वनके गेह ॥ १०५ ॥

---

(१) फौजी अफसर ।

दोहा.

नाम विवेक सु दूतको, लीन्हों ज्ञान बुलाय ॥
जाय कहहु वा मोहको, भलो चहै तो जाय ॥ १०६ ॥
जो कबहूँ टेढ़ो बकै, तो तुम दीज्यो सौंसं ॥
धिक धिक तेरे जनमको, जो कछु राखै हौंस ॥ १०७ ॥
तेरो बल जेतो चलै, तेतो कर तू जोर ॥
वे चाकर सब जीवके, छिनमें करि हैं भोरं ॥ १०८ ॥
ज्ञान भलाई जानकें, मैं पठयो तोहि पास ॥
चेतनको पुर छांडदे, जो जीवनकी आस ॥ १०९ ॥

सोरठा.

चल्यो विवेक कुमार, आयो राजा मोह पै ॥
कह्यो वचन विस्तार, भलो चहै तो भाजिये ॥ ११० ॥
सुनके वचन हुताश, कोप्यो मोह महा बली ॥
छिनमें करिहों नाश, मो आगें तुम हो कहा? ॥ १११ ॥

दोहा.

एकहि ज्ञानावर्णिने, तुम सब कीने जेर ॥
इतनी लाज न आवही, मुखहिं दिखावहु फेर ॥ ११२ ॥
काल अनंतहिं कित रहे, सो तुम करहु विचार ॥
अब तुम में कूवत भई, लरिवेको तय्यार ॥ ११३ ॥
चौरासी लख स्वांगमें, को नाचत हो नाच ॥
वा दिन पौरुष कित गयो, मोहि कहो तुम सांच ॥ ११४ ॥
इतने दिनलों पालिकें, मैं तुम कीने पुष्ट ॥
तातें लरिवेको भये, गुण लोपी महा दुष्ट ॥ ११५ ॥

---

(१) कसम । (२) नष्ट ।

जाहु जाहु पापी सबै, चेतनके गुण जेह ॥
मोको मुख न दिखावहू, छिनमें करिहों खेह ॥ ११६ ॥
मोहवचन ऐसे स्रये, सुनिके चल्यो विवेक ॥
आयो राजा ज्ञान पै, कही वात सब एक ॥ ११७ ॥
वह क्योंही भाजै नहीं, गहि वैठ्यो यह टेक ॥
लरिहों फोजें जोरिके, वोलै दूत विवेक ॥ ११८ ॥
दूत वचन सुनिकें हँसो, ज्ञान वली उर माहिं ॥
देखो थित पूरी भई, क्योंहू मानें नाहिं ॥ ११९ ॥
लेहु सुभट! तुम वेगही, अव्रतपुर अभिराम ॥
रह्यो क्रूर वह घेरिकें, मेंटहु वाको नाम ॥ १२० ॥
चढ़ी सैन सब ज्ञानकी, सूर वीर वलवन्त ॥
आगे सेनानी भयो, महा विवेक महंत ॥ १२१ ॥

करिखा छंद.

आय सन्मुख भये मोहकी फोजसों, भिड़नके मतै सब सूर गाढे। देख तव मोह अति कोहतैं, मनमें कियो, सुभट हलकारि रहे आप ठाढे ॥१२२॥ सूर वलवंत मदमैंत्त महा मोहके, निकसि सब सैन आगे जु आये ॥ मारि घमसान महा जुद्ध वहु रुद्ध करि, एक तैं एक सातों सवाये ॥ १२३ ॥
वीर सुविवेकने धनुष ले ध्यानका, मारिकें सुभट सातों गिराये।
कुमक जो ज्ञानकी सैन सब संग धसी, मोहके सुभट मूर्छा समाये १२४
देख तव युद्ध यह मोह भाग्यो तहां, आय अव्रतहिं सब सूर जोरे,
वांधकर मोरचे वहुरि सन्मुखभयो, लरनकी हौंसतें करै निहोरे १२५

(१) चौथा गुण स्थान। (२) सेनापति। (३) क्रोध। (४) मदोन्मत्त। (५) मिथ्यात्व, सम्यक्‌मिथ्यात्व, सम्यक्‌प्रकृतिमिथ्यात्व और अनंतानुवंधी कोध मान माया लोभ ये ७ प्रकृतियें। (६) उपशमित कियीं। (७) चौथे गुणस्थानमे।

चौपाई १५ मात्रा.

इहविधि मोह जोरि सब सैन। देशव्रत पुर बैठो ऐन ॥
करै उपाय अनेक प्रकार। किहिविधि ल्यों अव्रतपुर सार॥१२६॥
सुभट सात तिनको दुखकरै। तिन विन आज निकसि को लरै ॥
जो होते वे सूर प्रधान। तो लेते अव्रतपुर थान॥ १२७ ॥
ऐसे वचन मोह नृप कहे। रागद्वेष तव अति उर दहे॥
हा हा! प्रभु ऐसें क्यों कहो। एक हमारी शिक्षा लहो ॥ १२८ ॥
सुभट तुम्हारे हैं वहु वीर। तिनमें जानहु साहस धीर ॥
तिनको आज्ञा प्रभुजी देहु। इहविधि अव्रतपुर तुम लेहु ॥१२९॥
तवै मोहनृप वीड़ा धरै। कौन सुभट आगे ह्वै लरै ॥
तव वोले अप्रत्याख्यान। मैं जीतूं अवके दलज्ञान ॥ १३० ॥
कहै मोहनृप किंहिविधि वीर। मोहि वतावहु साहस धीर ॥
वोले अप्रत्याख्यान प्रकास। सुनहु प्रभू मेरी अरदास ॥१३१॥
मैं अव्रतपुरमें छिप जाउं। चेतन ज्ञान वसै जिह ठाउं ॥
संग लेय अपने सैव लोग। नानाविधि परकासों भोग ॥१३२॥
उनेंके उपसम वेदकभाव। क्षयउपसम वसुभेद लखाव ॥
इनकैथिरतावहुकछुनाहिं। छिनसम्यकछिनमिथ्यामाहिं॥१३३॥
क्षायक एक महा जे जोर। पहिले प्रगटै ना उहि ओर ॥
तोलों देखहु मैं क्या करों। व्रतके भाव सवैथा हरों ॥ १३४॥
अव्रतमें उपशम हट जाय। जिहँकर पापपुण्य मन लाय ॥
जव वह मगन होय इहि संग। जीत लेहु तवही सरवंग ॥१३५॥

(१) पंचमगुणस्थानमें। (२) चिंता। (३) अप्रत्याख्यानावर्णी क्रोध मान माया लोभ। (४) चेतनके, । (५) श्रावकके व्रत।

इहिविधि जीतौं परदल जाय। जो मोहि आज्ञा दीजे राय॥
तवै मोहनृप चिंतै सही। यह तौ वात भली इन कही॥ १३६॥
सिद्धि करहु अप्रत्याख्यान। लेहु सूर सँग जे वलवान॥
इहिविधिआयो पुरके माहिं। ज्ञानीविन जानै कोउ नाहिं॥१३७॥
निजविद्या परकाशै सही। नानाविध क्रोधादिक लही॥
ताके भेद अनेक अपार। कौलौं कहिये वहु विस्तार॥१३८॥

दोहा.

इहिविधि सव ही सैन ले, आयो अप्रत्याख्यान॥
अव्रतपुरमें पैठिके, करै व्रतनिकी हान॥ १३९॥
ताके पीछें मोहनृप, आयो सव दल जोरि॥
महासुभट सँग सूर लै, चढ्यो सुमूंछ मरोरि॥ १४०॥
कुमन जसूंस वुलायकें, मोह कहै यह वात॥
तुम सुधि लावहु वेगही, कहां सुभट वे सात॥१४१॥
कुमन खवर पहिले दई, वे मूर्छित उन पास॥
कछु विद्या कीजे यहां, ज्यौं वे लहैं प्रकास॥ १४२॥
मोह करै विद्या विविध, रागद्वेष लै संग॥
उनमें कछु चेतन भये, कछु रहे मूर्छित अंग॥ १४३॥
सुमन दूत सव ज्ञानपैं, कही मोहकी वात॥
कहाँ रहे तुम वैठि वह, सुभट जिवावत सात॥ १४४॥
जो वे सात जिये कहूं, तौ तुम सुनहो वात॥
चेतनके सव सुभट को, करि है पलमें घात॥ १४५॥
मोह जु फौजें जोरिके, आयो कर अभिमान॥
तुमहू अपने नाथको, खवरि पठावहु ज्ञान॥ १४६॥

(१) पांचवें गुणस्थानमें. (२) गुप्तदूत. (३) उपशमरूप.

तबै ज्ञान निजनाथपै, भेज्यो सम्यक वेग ॥
 कहो बधाई जीतकी, अरु पुनि यह उद्वेग ॥ १४७ ॥
बहुरि मिले वे दुष्ट सव, आये पुरके माहिं ॥
 लरिवेकी मनसा करैं, भागनकी बुधि नाहिं ॥ १४८ ॥
इहि विधि सम्यकभाव सब, कही जीवपै जाय ॥
 सुनिकें प्रवलप्रचंड अति, चढ्यो सुचेतनराय ॥ १४९ ॥
महा सुभट वलवंत अति, चढ्यो कटक दल जोर ॥
 गुण अनंत सब संग है, कर्म दहनकी ओर ॥ १५० ॥
आय मिले सब ज्ञानसे, कीन्हों एक विचार ॥
 अबकें युध ऐसो करहु, बहुरि न वचै गँवार ॥ १५१ ॥
चढे सुभट सब युद्धको, सूरवीर वलवंत ॥
 आये अंतर भूमि महिं, चेतन दल सुअनंत ॥ १५२ ॥

सोरठा.

रोपि महारण थंभ, चेतन धर्म सुध्यानको ।
 देखत लगहि अचंभ, मनहिं मोहकी फौजको ॥ १५३ ॥

दोहा.

दोऊ दल सन्मुख भये, मच्यो महा संग्राम ॥
 इत चेतन योधा वली, उतै मोह नृप नाम ॥ १५४ ॥

करखा छंद.

मोहकी फौजसों नाल गोले चलें, आय चैतन्यके दलहि लागें ॥
आठ मल दोष[1] सम्यक्त्व के जे कहे, तेहि अव्रत्तमें मोह दागें ॥ १५५ ॥
जीवकी फौजसों प्रबल गोले चलें, मोहके दलनिको आय मारें ॥
अंतर विराग[2]के भाव बहु भावता, ताहि प्रतिभास ऐसो विचारें १५६

(१) शंकादि । (२) आंतरिक वैराग्य ।

बहुरि पुनि जोर कर अतिहि घन घोर कर, मोहनृपचंद्र बातें चलावें।
दोष पद आय तन अतिहि उपजाय घन, जीवकी फौज सन्मुख बगावें
हंसकी फौजतें बान घमसानकें, गाजतें बाजतें चले गाढे ॥
मोहकी फौजको मारि हलकारकरि, हेयोपादेयके भाव काढे॥१५८॥
अष्टमद गजनिकें हलकें हंकारि दें, मोहके सुभट सब धसत सूरे ॥
एकतें एक जोधा महा भिड़त हैं, अतिहि बलवंत मदमंत पूरे॥१५९
जीवकी फौजमें सत्य परतीतके, गजनिके पुंज बहु धसत माते ॥
मारिकें मोहकी फौजको पलकमें, करत घमसान मदमत्त आते १६०
मार गाढी मचे, सुभट कोउ ना बचे, घाव विन खाये, दुहुं दलनमाहीं॥
एक तें एक योधा दुहूं दलनमें, कहते कछू ऊपमाबनत नाहीं॥१६१॥
सात जे सुभट मूर्छित पड़ते भये, मोहने मंत्रकरि सब जिवाये॥
आय इहिं जुद्धमहि तिनहुको रुद्ध करि, जीवको जीत पीछें हटाये ॥
मिश्र सासदनहिं परसमिथ्यातमहि, उमगिके बहुरि अव्रतहिं आयो॥
मारि घमसान अवसान खोयें त्वरित, सातमें एक हूंल्यो न पायो१६२

सोरठा.

इहविधि चेतन राय, युद्ध करत हैं मोहसों ॥
और सुनहु अधिकाय, अबहिं परस्पर भिड़त हैं ॥ १६४ ॥

मरहठा छंद.

रणसिंग बज्जहिं, कोऊन भज्जहिं, करहिं महादोउ जुद्ध ॥
इत जीव हंकारहिं, निजपरवारहिं, करहु अरिनको रुद्ध ॥
उत मोह चलावे, सब दल धावे, चेतन पकरो आज ।
इहविध दोऊ दल, में कल नहि पल, करहिं अनेक इलाज॥१६५॥

(१) ललकारकर । (२) तीसरे गुणस्थानमें । (३) दूसरे सासादनगुणस्थानमें । (४) पहिलेमिथ्यात्वगुणस्थानको भी स्पर्शकरके । (५) चौथे गुणस्थानमें ।

चौपाई १५ मात्रा.

मोह सराग भावके वान। मारहिं खैंच जीवको तान ॥
जीव वीतरागहिं निजध्याय। मारहिं धनुपवाण इहि न्याय १६६
तवहिं मोहनृप खड्ग प्रहार। मारै पाप पुण्य दुइ धार ॥
हंस शुद्ध वेदै निज रूप। यही खरग मारें अरि भूप १६७
मोह चक्र ले आरत ध्यान। मारहि चेतनको पहिचान ॥
जीव सुध्यान धर्मकी ओट। आप वचाय करै परचोट ॥१६८॥
मोह रुद्र बेरछी गहि लेय। चेतन सन्मुख घाव जु देय ॥
हंस दयालुभावकी ढाल। निजहिं वचाय करहि परकाल१६९
मोह अविवेक गहै जमदाढि। घाव करै चेतन पर काढि ॥
चेतन ले यमधर सुविवेक। मारि हरै वैरिनकी टेक ॥ १७० ॥
चेतन क्षायक चक्र प्रधान। वैरिन मारि करहि घमसान ॥
अप्रत्याख्यान मूरछित भये। मोह मारि पीछें हट गये ॥१७१॥
जीत्यो चेतन भयो अनंद। वाजहिं शुभ वाजे सुखकंद ॥
आयमिले अव्रतके भोग। दर्शनप्रतिमा आदि संयोग १७२
व्रतप्रतिज्ञा दूजो भाव। तीजो मिल्यो सामायिक राव ॥
प्रोषधव्रत चौथो वलवंत। त्यागसचित व्रत पंच महंत ॥१७३
षष्टम ब्रह्मचर्य दिन राय। सप्तम निशदिन शील कहाय ॥
अष्टम पापारंभ निवार। नवमों दशपरिगह परिहार ॥१७४
किंचित ग्राही परम प्रधान। महासुवुधि गुणरत्न निधान ॥
दशमों पापरहित उपदेश। एकादशम भवनतजवेश ॥१७५॥
प्राशुक लेय अहार सुजैन। कहिये उदंड विहारी ऐन ॥
ये एकादश भूप अनूप। आय मिले श्रावकके रूप ॥१७६॥

(१) धर्मध्यान। (२) रौद्रध्यानकी वरछी।

चेतन सवसों करैं जुहार। परम धरम धन धारन हार ॥
निज वल हंस करहिं आनंद। परम दयाल महा सुखकंद १७७

दोहा.

इहि विधि चेतन जीतकें, आयो व्रतपुरमाहिं ॥
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, नेकु विराधै नाहिं ॥ १७८ ॥
जिहँ जिहँ थानक काजके, कीन्हें सव विधि आय ॥
अव भावै वैराग्यतहँ, सुनहु 'भविक' मन लाय ॥१७९॥

ढाल—पंचमहाव्रत मन धरो सुनि प्रानीरे, छांडि
गृहस्थावास आज सुनि प्रानीरे ॥ टेक ॥

तैं मिथ्यात्त्वदशा विषै सुन प्रानीरे, कीन्हें पाप अनेक आज, सुनि प्रानीरे ॥ भव अनंत जे तैं किये सुनि प्रानीरे, रागद्वेष पर संग, आज सुनि प्रानीरे ॥१८०॥ ज्ञान नेकु तोको नही सुनि॰ तव कीने वहु पाप, आज सुनि प्रानीरे॥ ते दुख तोको देय हैं सुनि॰ जो चूको अव दाव, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८१ ॥ तैं अव्रतमें जे किये सुनि॰ व्रत्त विना वहु पाप, आज सुनि प्रानीरे ॥ देश विरतमें पांच जे सुनि॰ थावरहिंसा लागि आज सुनि प्रानीरे॥१८२॥ किये कर्म तैं अतिघने सुनि॰ क्यों भुगते विनजाय, आजसुनप्रानीरे ॥ मोह महाहितु तैं कियो, सुनि॰ वह तोको दुख देय आज सुनि प्रानीरे॥ ॥१८३॥ जिहँ जिय मोह निवारियो सुनि॰ तिहँ पायो आनंद, आज सुनि प्रा॰ ॥ मनवच काया योगसों सुनि॰ तैं कीने वहु कर्म, आज सुनि प्रानीरे ॥१८४॥ वे भुगते विन क्यों मिटैं सुनि॰ जे वांधे तैं आप, आज सुनि प्रानीरे॥ जो तू संयम आदरै सुनि॰ करै तपस्या घोर, आजसुनि प्रानीरे १८५ तौ सवकर्म खपायकें सुनि॰

(१) पांचवें गुणस्थानमें। (२) मित्र।

पावे परम अनंद आज सुनि प्राणीरे ॥ पूरव बांधे कर्म जो सुनि० सब छिनमें खप जांहिं, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८६ ॥ इहिविधि भावन भावतै सुनि०आयो अति वैराग, आज सुनि प्रा० ॥ जिय चाहै संयम गहों सुनि० अवै कोन विधि होय, आज सुनि प्रानीरे ॥ १८७ ॥

दोहा.

जिय चाहै संयम गहों, मोह लेन नहिं देय ॥
बैठ्यो आगें रोकिकें, अव प्रमत्तपुर जेय ॥ १८८ ॥
सुभट जु प्रत्याख्यान को, करिकें आगें वान ॥
बैठ्यो घाटी रोकिकें, मोह महा अज्ञान ॥ १८९ ॥
केतक चाकर जोर जे, भेजे व्रतहिं छिपाय ॥
ते चेतनके दलनमें, निशदिन रहैं लुकाय ॥ १९० ॥
कबहूं परगट होंय कछु, कवहू वे छिप जाहिं ॥
इहविधि सेना मोहकी, रहै सुइहि दल माहिं ॥१९१॥

चौपाई.

मोह सकल दलसों पुरद्वार। आय अरयो संग ले परवार ॥
चेतन देश विरतपुर मांहि। आगें पांव धरे कहुं नाहिं॥१९२॥
मोह किये परपंच अनेक। गहिवेको गहि वैठ्यो टेक ॥
जो चेतन आवै पुरें मांहि। तौ राखों गहिकें निज पांहिं ॥१९३॥
बहुर न निकसन छिन इक देहुं। डारि मिथ्यात्व वैर निज लेहुं ॥
यह चेतन मोसों युध करै। जो आवै अवके कर तरैं॥१९४॥
तौ फिर याको ऐसे करों। सुधि बुधि शक्ति सवहि परिहरों
इहविधि मोह दगाकी बात। रचना करहि अनेक विख्यात॥१९५॥

(१) मुनिमत। (२) छट्टे गुणस्थानमें। (३) पांचवें गुणस्थानमें। (४) छट्टे गुणस्थानमें।

सुमन खवर सव जियको दई। एक वात सुन हो! प्रभु नई ॥
मोह रचै फंदा वहु जाल। तुम जिन भूलहु दीन दयाल॥१९६॥
अवके जो पकरैंगो तोहि। तौ फिर दोप न दीजो मोहि ॥
मैं सव खवर नाथ तुम दई। जैसी कछू हकीकत भई॥ १९७ ॥
तवै हंस इहपुरको पंथ। चल्यो उलंघि महा निर्ग्रंथ ॥
अप्रमत्तपुरकी लइ राह। जिहँ मारग पंथी वहु साह ॥ १९८ ॥
रोके आय जु प्रत्याख्यान। जुद्ध करे विन देहुं न जान ॥
चेतन कहै जाहु शठ दूर। छिनमें मारि करूं चकचूर ॥१९९॥
तवहिं जोर नाना विधिकरैं। चेतन सन्मुख ह्वैकैं लरैं ॥
चेतन ध्यानधनुप कर लेय। मूर्छित कर आगें पग देय ॥ २००॥
गिरंयो जु प्रत्याख्यान कुमार। चेतन पहुँच्यो सप्तम द्वार ॥
मोह कहै देखहु रे जोर। यह तो किये जातु है भोर ॥ २०१ ॥
पकरहु सुभट दौरि इह जाहिं। ल्यावहु पकरि वेग मोहि पांहि॥
चल्यो धर्मराग वलवीर। विकथा वचन दूसरो धीर ॥ २०२ ॥
निद्रा विपय कपाय सु पंच। पकरि हंस ले आये धंचँ ॥
चेतन देखै यह कहा भई। मोहि पकरि ले आये दई ॥ २०३ ॥
यह परमत्त देश है सही। मोकों सुमन अगाउ कही ॥
अव कछु ऐसो कीजे काज। जासों होय अप्रमत राज ॥ २०४॥
अठाईस मूलगुण धरैं। वारह भेद तपस्या करैं ॥
सहै परीसह वीसरु दोय। उभय दया पालै मुनि सोय ॥२०५॥
इहिविधि लहे अप्रमत आय । तवै मोह निज दास पठाय ॥

---

(१) छट्ठे गुणस्थानको छोडकर। (२) सातवें गुणस्थानकी राह पकड़ी। (३) प्रत्याख्यानावरणी क्रोधं मान माया लोभ ये चार कपायें। (४) उपसमरूप करकैं। (५) प्रत्याख्यानावर्णा उपशम होगया। (६) सातवें गुणस्थानमें। (७) गला।

पकरि भगावै करि बहु मान। तबै हंस चिंतै निज ज्ञान॥२०६॥
यह तौ मोह करै बहु जोर। मोको रहन न दे इहि ओर॥
अब याको मैं भिष्टित करों। अप्रमत्तमें तब पग धरों॥ २०७॥
तबहि हंस थिरता अभ्यास। कीन्हीं ध्यान अगनिपरकाश॥
जारीं शक्ति मोह की कई। महा जोरतैं निर्बल भई॥ २०८॥
हंस लयो निज बल परकास। कीन्हों अप्रमत्त पुर वास॥
सुभट तीन[1] मोहके दरे। अरु परमाद सर्व अप हरे॥ २०९॥
तज्यो अहार विहार विलास। प्रथम करण कीनो अभ्यास॥
सप्तम पुरके अंत अनूप। करै कर्ण चारित्र स्वरूप॥ २१०॥
आवै संग मोह दल लेय। पै कछु जोर चलै नहिं जेय॥
अब जिय अष्टम पुर पग धरै। मोह जु संग गुप्त[2] अनुसरै॥२११॥
करहि करण चेतन इह ठांव। दूजो कह्यो अपूरव नाव॥
जे कबहूँ न भये परिणाम। ते इहि प्रगटे अष्टम ठाम॥२१२॥
अब चेतन नवमें[3] पुर आय। जामें थिरता बहुत कहाय॥
पूरव भाव चलहि जे कहीं। ते इह थानक हालै नहीं॥२१३॥
इहिविधि करण तीसरो करै। तबै मोह मन चिंता धरै॥
यह तो जीते सब पुर जाय। मेरो जोर कछू न बसाय॥२१४॥

दोहा.

मोह सेन सब जोरिकैं, कीन्हों एक विचार॥
परगट भये बनै नहीं, यह मारै निरधार॥ २१५॥
तातैं सुभट लुकाय तुम, रहो पुरनके मांहि॥
जो कहुँ आवै दावमें, तो तुम तजियो नाहिं॥ २१६॥

(१) नरक तिर्यंच और देव आयुको। (२) उपसमित किये। (३) अनिवृत्त करन नामके नवमें गुण स्थानमें।

हम हू शकति छिपायकें, रहैं दूरलों जाय ॥
जो जीवत वचि हैं कहूं, तौ तुम मिलि हैं आय॥२१७॥
नगर ग्राम उपशांत पुर, तहां लों मेरो जोर ॥
जो ऐहै मो दावमें, तो मैं करिहों भोर ॥ २१८ ॥
तुम हू सव जन दौरिकें, आय मिलहुगे धाय ॥
तव या हंसहिं पकरिके, देहैं भली सजाय ॥ २१९ ॥
इह विचार सव सैनसों, कीन्हों मोह नरेश ॥
रहे गुप्त दवि दवि सवै, कर कर उपसम भेश ॥२२०॥

चौपाई.

चेतन चर चलाय चहुं ओर। पकरहिं मूढ मोहके चोर ॥
जन छत्तीस गहे ततकाल। मूर्छित करके चले दयाल ॥ २२१ ॥
सूक्ष्म सांपरायके देश। आय कियो चेतन परवेश ॥
तिहँ थानक इक लोभ कुमार।जीत कियो मूर्छित तिहँ वार॥२२२॥
आगे पांव निशंकित धरै। अव वैरी मोसों को लरै ॥
मैं जीते सव कर्म कठोर। इहि विधि धर्यो निशंकित जोर॥२२३॥
जव उपशांत मोहके देश। हद्द माहिं कीन्हो परवेश ॥
तवै मोह जोर निज किया। चेतन पकरि उलटि इत दिया॥२२४॥
आये सुभट मोहके दौर। मूर्छित छिपे रहे जिहँ ठौर ॥
पकरि हंस मिथ्यापुर माहिं। ल्याये क्रूर सवहि गहि वाँह ॥२२५॥
इहां न कछु निहचै यह वात। उत्कृष्टे कहिये विख्यात ॥
औरहु थानक है वहु जहां। चेतन आय वसत है तहां ॥ २२६ ॥
उपशम समकित जाको होय। मिथ्यापुर लों आवे सोय ॥
क्षायक सम्यकवंत कदाच। उपसम श्रेणि चढै जो राच ॥२२७॥

(१) सूक्ष्मसाम्पराय दशवां गुणस्थान।

तौ वह चौथे पुरलों आय। गिरकर रहै इहां ठहराय ॥
औरों थानक उपसम गहै। दोऊ सम्यकवंत जु रहै ॥२२८॥
अब मिथ्या पुरमें दुख देय। मोह वली चेतनको जेय ॥
नाना विध संकट अज्ञान। सहै परीषह यह गुणवान ॥२२९॥
पंच मिथ्यात्व भेद विस्तार। कहत न सुरगुरु पावे पार ॥
सादि मिथ्यात्व नाश जिय लहै। ताके उदै कौन दुख सहै२३०
सो दुख जानहिं चेतनराम। कै जाने केवल गुणधाम ॥
कहत न लहिये पारावार। दुख समुद्र अति अगम अपार२३१
इहि विधि सहै करमकी मार। अव चेतन निज करै सम्हार॥
द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव। पंचहु मिले वन्यो सब दाव २३२

दोहा.

ध्यान सुथिरता राखि के, मनसों कहै विचार ॥
संगति इनकी त्यागिके, अव तू थिर हो यार ॥ २३३ ॥

ढाल—चेत मन भाईरे ॥ एदेशी—

माया मिथ्या अग्र शौच, मन भाईरे, तीनों सल्य निवार, चेत मन भाईरे ॥ क्रोधमान माया तजो, मन० लोभ सवै परित्याग, चेत मन भाईरे ॥ २३४ ॥ झूंठी यह सव संपदा, मन० झूठो सव परिवार, चेत मन भाईरे ॥ झूंठी काया कारिमी, मन० झूठो इनसों नेह, चेत मन भाईरे॥२३५॥ यह छिनमें उपजै मिटै, मन० तू अविनाशी ब्रह्म, चेत मन भाईरे ॥ काल अनंतहि दुख दियो, मन० इसही मोह अज्ञान, चेत मन भाईरे॥२३६॥ जो तोको सुमरण कहूँ, मन० आवे रंचक मात्र, चेतमनभाई रे ॥ तो कबहूँ संसारमें, मन० तू न विषयसुख सेव, चेतमनभाई रे॥२३८॥

(१) कर्मसे जो उत्पन्न होय.

को कहै कथा निगोदकी, मन० ताके दुखको पार, चेतमनभाई रे॥
काल अनंत तो तैं लहे, मन० दुःख अनंती वार, चेतमनभाई रे॥३९॥
देव आयु पुनि तैं धरयो, मन० तामें दुःख अनेक, चेतमनभाई रे॥
लोभ महासुखहैजहां, मन० प्रगट विरह दुख होय, चेतमनभाईरे४०
दुःख महा वहु मानसी मन० देखे अन्य विभूति, चेतमनभाई रे॥
तिर्यक् गतिमें तू फिरयो मन० संकट लहे अनेक, चेतमनभाई रे ४१
अविवेकी कारज किये, मन० बांधे पाप अनेक, चेतमनभाई रे॥
नरदेही पाई कहूं, मन० सेये पंच मिथ्यात, चेतमनभाई रे॥४२॥
कहुं कारज को तो सरयो, मन० जनम गमायो व्यर्थ, चेतमनभा०
भ्रमत भ्रमत संसारमें मन० कवहुँ न पायो सुक्ख, चेतमनभा० ४३
अवके जो तोको भई, मन० कछु आतम परतीत, चेतमनभा०॥
धारि लेहुं निजसंपदा, मन० दर्शन ज्ञान चरित्र, चेतमनभाईरे४४
और सकल भ्रमजालहै, मन० तत्त्व इहै निज काज, चेतमनभा०॥
सुखअनंत यामें वसे, मन० निज आतम अवधार, चेतमनभा०॥४५
सिद्ध समान सुछंद है, मन० निश्चै दृष्टि निहारि, चेतमनभा०॥
इहिविधि आतम संपदा, मन० लहि करि आतमकाज चेतमनभा०

दोहा.

इहि विधि भाव सुभाव तें, पायो परमानंद॥
सम्यक दरश सुहावनो, लह्यो सु आतमचंद॥२४७॥
क्षायक भाव भये प्रगट, महा सुभट वलवंत॥
कीन्हों जिँह छिन एकमें, सुभट सातको अंत॥२४८॥
मोह तवै निर्वल भयो, अवके कछु विपरीत॥
मेरे सुभट भये शिथल, लागहिं उनकी जीत॥२४९॥

(१) दर्शन मोहकी प्रकृति और अनंतानुवंधी क्रोध मान माया लोभ। (२) क्षय।

चेतन ध्यान कमान ले, मारे क्षायक वान ॥
मोह मूढ छिपतो फिरै, ज्ञान करै घमसान ॥ २५० ॥
देश विरत पुरमें चढ्यो, चेतन दल परचंड ॥
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, पालै सदा अखंड ॥ २५१ ॥

सोरठा.

मोह भयो बलहीन, छिप्यो छिप्यो जित तित रहै ॥
चेतन महा प्रवीन, सावधान ह्वै चलत है ॥ २५२ ॥
अप्रमत्त[१]पुरमाहिं, चेतन आयो विधिसहित ॥
तहां न जोर वसाहिं, मोह मान भिष्टित भयो ॥ २५३ ॥
चेतन करि तहँ ध्यान, सुभट तीनें[२] औरहि हरे ॥
पुनि चारित्र प्रमान, करैन[३] किये सप्तम पुरहि ॥ २५४ ॥

दोहा.

तजी अहार विहारविधि, आसन दृढ ठहराय ॥
छिन छिन सुख थिरता बढै, यों बोलै जिनराय ॥ २५५ ॥
अबहिं अपूरवॅ[४] करनमें, आयो चेतनराय ॥
कियो करन[५] दूजो जहाँ, थिरता ह्वै अधिकाय ॥ २५६ ॥
[६]नवमें पुरमें आयकें, तृतिय करन करि लेय ॥
हरिके सुभट छतीसँ[७] तहँ, आगेंको पग देय ॥ २५७ ॥
आयो दशमें पुरविषै, चेतन महा सचेत ॥
सुभट एक[८] इतहू हर्यो, तबै ज्ञान सुधि देत ॥ २५८ ॥

---

(१) सातवें गुणस्थानमें। (२) नरक, तिर्यंच देव आयु। (३) अधःप्रवर्तकरण प्रारंभ किया। (४) आठवें गुणस्थानमें। (५) दूजा अपूर्वकरन प्रारंभ किया। (६) नवमें अनिव्रतकरननामक गुणस्थानमें तीसरा करन आरंभ किया। (७) दर्शनावरणीकी २ मोहिनीकी ४ नामकर्मकी ३० इसप्रकार छत्तीस प्रकृतियें। (८) सूक्ष्म लोभ।

सावधान ह्वै नाथजी, रहियो तुम इह ठौर ॥
इहां मोहको जोर है, तुम जिन जानहु और ॥ २५९ ॥
पहिले हानि जो तुम लही, सो थानक इह आहि ॥
तातैं मैं विनती करों, प्रभू भूल जिन जाहि ॥ २६० ॥
तव चेतन कहै ज्ञान सुनि, अव यह पंथ न लेहिं ॥
चलहिं उलंघि उतावले, आगे धोंसा देहिं ॥ २६१ ॥
कहे वहुत संक्षेपसों, इहविधि ये गुणथान ॥
पूरव वरनन विधि सवैं, समझि लेहु गुणवान ॥ २६२ ॥
जो फिरकैं वरनन करैं, ह्वै पुनरुक्ति प्रदोप ॥
तातैं थोरेमें कह्यो, महा गुणनिके कोप ॥ २६३ ॥

पद्धरिछंद.

जहँ चेतन करि सव करम छीन । उपशांत[1] मोहपुर उलँघि लीन ।
आयो द्वादशमहि[2] महमहंत । सव मोह कर्म छय करिय अंत॥
जहँ यथाख्यात[3] प्रगट्यो अनूप । सुखमय सव वेदै निजस्वरूप ।
जहँ अवधि ज्ञान पूरन प्रकास । केवल पुनि आयो निकट भास॥
सो छीनमोहँ[4] पुर प्रगट नाम । तिहि थानक विलसैं निजसुधाम.
अव अंतराय कहुँ करिय अंत । पोडश[5] सव प्रकृति खपाय तंत ६६
जहँ घातिया चारों कर्म नाश । सव लोकालोक प्रत्यक्ष भास ॥
प्रगट्यो प्रभु केवल अतिप्रकाश । जहँ गुण अनंत कीन्हों निवास६७
प्रगटी निज संपति सव प्रतच्छ । विनशी कुलकर्म अज्ञान अच्छ।
प्रगट्यो जहँ ज्ञान अनंत ऐन । प्रगट्यो पुनि दरश अनंत नैन६८

(१) ग्यारहवाँ गुणस्थान. (२) क्षीणमोह वारहवें गुणस्थानमें (३) यथाख्यातचारित्र. (४) वारहवाँ गुणस्थान. (५) ज्ञानावर्णकी ५ दर्शनवर्णकी ४ यशकीर्ति १ ऊंच गोत्र १ व अंतराय ५ इसप्रकार १६ प्रकृति.

प्रगट्यो तहँ वीर्य अनंत जोरि । प्रगट्यो सुख शक्ति अनंत फोरि ॥
तहँ दोष अठारह गये भाज । प्रभु लागे करन त्रिलोकराज ६९
सब इन्द्र आय सेवहिं त्रिकाल । प्रभु जय जय जय जीवनदयाल।
तहँ करत अष्टप्रतिहार्य देव। विधि भावसहित नितभविक सेव ॥
प्रभु देत महा उपदेश ऐन । जिहँ सुनत लहत भवि परम चैन
जहँ जनम जरा दुख नाश होय । प्रभु विद्यादेश बताय सोय॥७१
इहविधि सयोगपुर राज योग । प्रभु करत अनंत विलास भोग ॥
तोउ करम चार नहिं तजहिं संग। लगरहे पूर्व तिथिबंध अंग ॥७२
प्रभु शुक्लध्यानआरूढ होय । अँतरीक्ष विराजहिं गगन सोय ॥
तहँ आसन दृढ ठहराय एक । पद्मासन कायोत्सर्ग टेक ॥७३॥
प्रभु डग नहिं भरहिं कदाच भूम। तऊ कर्म करत है कौन धूम ॥
लिये लिये फिरत तिहुँलोकमांहिं। जिहँ थानक पूरव बंध आहिं ॥
कहुँ राखहिं थिर कहुँ लै चलंत। कहुँ बानि खिरै कहुँ मौनवंत ।
कहुँ समवशरण कहुँ कुटी होय। कहूँ चौदहराजु प्रमान लोय॥७५
इहविधि ये कर्म करंत जोर। नहिं जान देत शिववधू ओर ॥
एतेपै निर्बल कहे बखान । मनु जरी जेवरीकी समान॥७६
तोउ समय समयमें आय आय। चेतन परदेशन थित बधाय ॥
यह एक समयमें करत त्याग । थिर होन देत नहिं दुतिय लाग॥
तऊ सुभट पचासी लगि रहंत। निजनिजथानक निजबल करंत॥
चेतन परदेश न घात होय । तातैं जगपूज्य जिनेश होय ॥७८॥

दोहा.

चेतन राय सयोगपुर, इहविध विलसहि राज ॥
अब चहुँ कर्मन हरनको, ठानहि एक इलाज ॥२७९॥

(१) तेरहवें गुणस्थानमें.

श्री सयोगपुर देशमें, चेतन करि परवेश ॥
लाग्यो हरण सुकर्मको, तजिके जोगकलेश ॥ २८० ॥

तब सुवेदनी कर्मने, दीनों रस निज आय ॥
दुहुमें एक भई प्रगट, जानहिं श्रीजिनराय ॥ २८१ ॥

हंस पयानो जगततें, कीनो लघुथितिमांहि ॥
हरिके चारहिं कर्मको, सूधे शिवपुर जाहिं ॥ २८२ ॥

तहँ अनंत सुख शास्वते, विलसहिं चेतनराय ॥
निराकार निर्मल भयो, त्रिभुवन मुकुट कहाय ॥२८३॥

चौपई.

अविचल धाम बसे शिव भूप । अष्टगुणातम सिद्ध स्वरूप ॥
चरमदेह परमित परदेश । किंचित ऊनो थित विनभेश ॥
पुरुषाकार निरंजन नाम । काल अनंतहि ध्रुव विश्राम ॥
भव कदाच न कबहू होय । सुख अनंत विलसै नित सोय ॥
लोकालोक प्रगट सब वेद । षट द्रव्य गुण पर्याय सुभेद ॥
ज्ञेयाकार सकल प्रतिभास । सहजहिं स्वच्छ ज्ञानजिहँ पास ॥
षट्गुणी हानि वृद्धि परनमैं । चेतन शुद्ध स्वभावहि रमैं ॥
उत्पत व्यय ध्रुव लक्षण जास । इहविधि थिते सबै शिवरास८७॥
जगत जीत जिहि विरुद प्रमान । पायो शिवगढ रतननिधान ॥
गुण अनंत कहिये कत नाम । इहविध तिष्ठहि आतमराम८८॥
जिनप्रतिमा जगमें जहँ होय । सिद्ध निसानी देखहु सोय ॥
सिद्ध समान निहारहु आप । जातें मिटहि सकल संताप८९॥
निश्चय दृष्टि देख घटमांहि । सिद्ध रु तोमहिं अन्तर नाहिं॥
ये सब कर्म होय जड़ अंग । तू 'भैया' चेतन सर्वंग ॥९०॥

ज्ञान दरश चारित भंडार। तू शिवनायक तू शिवसार ॥
तू सब कर्मजीत शिव होय। तेरी महिमा वरनें कोय॥२९१॥

दोहा.

गुण अनंत या हंसके, किंहविधि कहैं वखान ॥
थोरेमें कछु वरनये, 'भविक' लेहु पहिचान ॥२९२॥
यह जिनवानी उदधिसम, कविमति अंजुलि मात्र ॥
तेती ही कछु संग्रही, जेतो हो निज पात्र ॥ २९३ ॥
जिनवानी जिहँ जिय लखी, आनी निजघटमाहिं ॥
तिहँ प्रानी शिवसुख लह्यो, यामें धोखो नाहिं ॥ २९४ ॥
चेतन अरु यह कर्मको, कह्यो चरित्र प्रकाश ॥
सुनत परम सुख पाइये, कहै भगवतीदास ॥ २९५ ॥
सत्रहसौ छत्तीसकी, जेष्ठ सप्तमी आदि ॥
श्रीगुरुवार सुहावनो, रचना कही अनादि ॥ २९६ ॥

इति चेतनकर्मचरित्र समाप्तः।

अथ अक्षरवत्तीसिका लिख्यते ॥

दोहा.

गुण अपार ओंकारके, पार न पावै कोय ॥
सो सब अक्षर आदि ध्रुव, नमैं ताहि सिधि होय ॥ १ ॥

चौपाई.

कका कहै करन[1] वश कीजे। कनक कामिनी दृष्टि न दीजे ॥
करिके ध्यान निरंजन[2] गहिये। केवलपदइहविधिसों लहिये॥२॥

(१) इन्द्रियोंको।
(२) कर्मरहित आत्मस्वरूपको।

खक्खा कहै खवर सुनि जीवा । खवरदार ह्वै रहो सदीवा ॥
खोटे फंद रचे अरिजाला । छिन इक जिनभूलहु वहख्याला ३
गग्गा कहै ज्ञान अरु ध्याना । गहिकैं थिर हूजे भगवाना ॥
गुण अनंत प्रगटहिं ततकाला । गरिके जाहिं मिथ्यातम जाला॥४॥
घग्घा कहै स्वघर पहिचानों । घने दिवस भये फिरत अजानों॥
घर अपने आवो गुणवंता । घने कर्मको ज्यों ह्वै अंता ॥ ५ ॥
नन्ना कहै नैंनसों लखिये । नयनिहचै व्यवहार परखिये ॥
निजके गुण निजमें गहि लीजे । निरविकल्प आतमरस पीजे ॥६॥
चच्चा कहै चरचि गुण गहिये । चिन्मूरति शिवसम उर लहिये ॥
चंचल मन थिर करधरि ध्याना । सीखसुगुरुसुन चेतन स्याना ७
छच्छा कहै छांडि जगजाला । छहों काय जीवनप्रतिपाला ॥
छांड़ अज्ञान भावको संगा । छकि अपने गुण लखि सर्वंगा ॥८॥

चौपाई १५ मात्रा.

जज्जा कहै मिथ्यामति जीत । जैंनधरमकी गहु परतीत ॥
जिहिसों जीव लगै निजकाज । जगत उलंघि होय शिवराज॥९॥
झज्झा कहै झूंठ पर वीर! । झूंटे चेतन साहस धीर ॥
झूठो है यह करम शरीर । झालि रहे मृगतृष्णानीर ॥१०॥
नन्ना कहै निरंजन नैन । निश्चै शुद्ध विराजत ऐन ॥
निज तजकें परमें नहिं जाय । निरावरण वेदहु जिनराय॥११॥
टट्टा कहै टेव निज गहो । टिककें थिरअनुभव पद लहो ॥
टिकन न दीजे अरिके भाव । टुकटुकसुखको यही उपाव१२॥

चौपाई १६ मात्रा.

ठट्ठा कहै आठ ठग पाये । ठगत ठगत अवकैं कर आये ॥
ठगको त्याग जलांजलि दीजे । ठाकुर ह्वैकें तव सुखलीजे॥१३॥

१ जीजे ऐसा भी पाठ है.

डड्डा कहै डंक विष जैसो। डसै भुजंग मोहविष तैसो॥
डार्‌यो विष गुरु मंत्र सुनायो। डर सब त्याग मान समुझायो१४
ढड्ढा कहै ढील नहिं कीजे। ढूंढ ढूंढ़ चेतन गुण लीजे॥
ढिग तेरे है ज्ञान अनंता। ढकै मिथ्यात्व ताहि करि अंता१५

दोहा.

नन्ना अक्षर जे लखो, तेई अक्षर नैन॥
जे अक्षर देखै नहीं, तेई नैन अनैन॥ १६॥

चौपाई १५ मात्रा.

तत्ता कहै तत्त्व निज काज। ताको गहे होय शिवराज॥
ताको अनुभौ कीजे हंस। तावेदतहै तिमिर विध्वंस॥१७॥
थत्था कहै इन्द्रिनको भूप। थंभन मन कीजे चिद्रूप॥
थाकहिं सकल कर्मके संग। थिरतासुख तहँ होय अभंग॥१८॥
दद्दा कहै परगुणको दान। दीनें थिरता लहो निधान॥
दया वहै सुदया जहँ होय। दया शिरोमणि कहिये सोय१९॥
धद्धा कहै धरमको ध्यान। धरि चेतन! चेतनगुण ज्ञान॥
धवल परमपद प्रापति होय। ध्रुवज्यों अटलटलै नहि सोय२०॥
नन्ना नव तत्त्वनसौं भिन्न। नितप्रति रहै ज्ञानकें चिन्न॥
निशदिन ताके गुण अवधारि। निर्मल होय करमअघटारि॥२१॥
पप्पा कहै परमपद इष्ट। परख गहो चेतन निज दिष्ट॥
प्रतिभासहि सव लोकालोक। पूरण होय सकल सुख थोक॥२२॥
फफ्फा कहै फिरहु कित हंस। फिर फिर मिलै न नरभव वंस॥
फंद सकल अरिके चकचूरि। फोरि शकति निज आनंद पूरि२३
बव्वा कहै ब्रह्म सुनि वीर। वर विचित्र तुम परम गँभीर॥

वोध वीज लहिये अभिराम । विधिसों कीजे आतमकाम॥२४॥
भब्भा कहै भरमके संग । भूलि रहे चेतन सर्वंग ॥
भाव अज्ञाननको कर दूर । भेदज्ञानतें परदल चूर॥ २५ ॥
मम्मा कहैं मोहकी चाल । मेटि सकल यह परजंजाल॥
मानहु सदा जिनेश्वरवैंन । मीठे मनहु सुधातें ऐन ॥ २६ ॥
जज्जा कहै जैनवृष गहो । ज्यों चेतन पंचमि गति लहो ॥
जानहु सकल आप परभेद । जिहँजानें हैं कर्म निखेद॥ २७॥
रर्रा कहैं राम सुनि वैंन । रमि अपने गुन तज परसैंन ॥
रिद्धि सिद्धि प्रगटहि ततकाल । रतन तीन लख होहु निहाल॥२८॥
लल्ला कहैं लखहु निजरूप । लोकअग्र सम ब्रह्मस्वरूप ॥
लीन होहु वह पद अवधारि । लोभकरन परतीत निवारि ॥२९॥

सोरठा.

वव्वा वोले वैंन, सुनो सुनोरे निपुण नर ॥
कहा करत भव सैंन, ऐसो नरभव पाय के ॥ ३० ॥

दोहा.

शश्शा शिक्षा देत हैं, सुन हो चेतन राम ॥
सकल परिग्रह त्यागिये, सारो आतम काम ॥ ३१ ॥
खक्खा खोटी देह यह, खिणक माहि खिर जाय ॥
खरी सुआतम संपदा, खिरै न थिर दरसाय ॥ ३२ ॥
सस्सा सजि अपने दलहि, शिवपथ करहु विहार ॥
होय सकल सुख सास्वते, सत्यमेव निरधार ॥ ३३ ॥
हह्हा कहैं हित सीख यह, हंस वन्यों हैं दाव ॥
हरिलै छिनमें कर्मको, होय वैठि शिवराव ॥ ३४ ॥

क्षक्षा क्षायकपंथ चढि, क्षय कीजे सब कर्म ॥
क्षण इकमें बसिये तहां, क्षेत्र सिद्धि सुख धर्म ॥ ३५ ॥
यह अक्षर बत्तीसिका, रची भगवती दास ॥
बाल ख्याल कीनो कछू, लहि आतमपरकाश ॥ ३६ ॥

इति अक्षर बत्तीसिका.

अथ श्रीजिनपूजाष्टकं लिख्यते ॥

दोहा.

जल चंदन अरु सुमन लै, अक्षत शुचि नैवेद ॥
दीप धूप फल अर्घ विधि, जिनपूजा वसुभेद ॥ १ ॥

जलपूजा—कवित्त.

नीर क्षीरसागरको निर्मल पवित्र अति, सुंदर सुवास भरयो-सुरपैं अनाइये। गंगकी तरंगनके स्वच्छ सुमनोज्ञ जल, कंचन कलश वेग भरकें मगाइये॥ और हू विशुद्ध अंबु आनिये उछाहसेती, जानिये विवेक जिन चरन चढाइये। भौदुख समुद्रजल अंजुलिको दीजे इहां, तीन लोक नाथकी हजूर ठहराइये॥ २॥

चंदन पूजा.

परम सुशीतल सुवास भरपूर भरयो, अतिही पवित्र सब दूषन दहतु है। महावनराजनके वृक्षन सुगंध करै, संगतिके गुण यह विरद वहतु है॥ बावन जुचंदन सुपावन करन जग, चढै जिनचर्ण गुण ताहीतें लहतु है। मोह दुखदाहके निवारिवेको महा हिम, चंदनतैं पूजौं जिन चित्त यों कहतु है॥ ३॥

अक्षतपूजा.

शशिकीसी किर्ण कैधों रूपाचलवर्ण कैधों, मेरुतट किर्ण

(१) क्षपकश्रेणी मांह.

कैधों फटिकप्रमाने हैं ॥ दूधकेसे फैन कैधों चित्तामणि रेणु कैधों, मुक्ताफल ऐन कैधों, हीरा हेरि आने हैं ॥ ऐसे अति उज्ज्वल है तंदुल पवित्र पुंज, पूजत जिनेश पाद पातक पराने हैं । अच्छै गुण प्रापति प्रकाश तेज पुंज होय, अच्छै जिन देखे अच्छ इच्छते अघाने हैं ॥ ४ ॥

पुष्पपूजा.

जगतके जीव जिन्हें जीतके गुमानी भयो, ऐसो कामदेव एक जोधा जो कहायो है । ताके शर जानियत फलनिके वृंद वहु, केतकी कमल कुंद केवरा सुहायो है ॥ मालती सुगंध चारु वेलिकी अनेक जाति, चंपक गुलाव जिनचरण चढायो है । तेरी ही शरण जिन जोर न वसाय याको, सुमनसों पूजे तोहि मोहि ऐसो भायो है ॥ ५ ॥

नैवेद्यपुजा.

परम पुनीत जान मेवनके पुंज आन, तिन्हें पुनि पहिचान जिनयोग्य जानिये । अन्न ओ विशुद्ध तोय ताको पकवान होय, कहिये नैवेद्य सोई शुद्ध देख आनिये ॥ पूजत जिनेन्द्रपाय पातक-पराने जाय, मोक्षलच्छि ठहराय सत्य यों बखानिये । क्षुधाको न दोष होय ज्ञानतनपोष होय, परम संतोष होय ऐसी विधि ठानिये ॥ ६ ॥

दीपकपूजा.

दीपक अनाये चहुं गतिमै न आवे कहूं, वर्तिका वनाये कर्म-वर्ति न वनत है । घृतकी सनिग्धतासों मोहकी सनिग्ध जाय, ज्योतिके जगाये जगाजोतिमें सनत है ॥ आरती उतारतें आरत

सब जाय टर, पांय ढिग धरे पाप पंकति हनत है। वीतराग देव जूकी सेव कीजे दीपकसों, दीपत प्रताप शिवगामी यों भनत है॥७॥

धूपपूजा.

परम पवित्र हेम आनिये अधिक प्रेम, जाति धूपदान जिमि शुद्ध निपजाइकैं। वह्नि जे विशुद्ध वनी तेज पुंज महाघनी, मानो धरी रत्न कनी ऐसी छवि पाइकैं॥ तामें कृष्णागरुकी जु-कनिकाहू खेव कीजे, वहै कर्मकाठनिंके पुंजगहि ताइकें। पूजिये जिनेन्द्र पांय धूपके विधान सेती, तीनलोकमाहिं जो सुवास वा-स छायकैं॥ ८॥

फलपूजा.

श्रीफल सुपारी सेव दाड़िम वदाम नेव, सीताफल संगतरा शुद्धसदा फल है। विही नासपाती ओ विजोरा आम अम्रतसे, नारँगी जँभीरी कर्ण फल जे कमल हैं॥ ऐसे फल शुद्ध आनि पूजिये जिनंद जान, तिहूँ लोकमधि महा सुकृतको थल है। फ-ल सेती पूजे शुद्ध मोक्षफल प्राप्ति होय, द्रव्य भाव सेये सुखसं-पति अचल है॥ ९॥

अर्घविधिपूजा.

जल सुविशुद्ध आन चंदन पवित्र जान, सुमन सुगंध ठान. अक्षत अनूप है। निरखि नैवेद्यके विशेष भेद जान सवै, दीपक सँवारि शुद्ध और गंध धूप है॥ फल ले विशेष भाय पूजिये जि-नंद पाय, वसु भेद ठहराय अरथ स्वरूप है। कमल कलंक पंक हरिके भयो अटंक, सेवक जिनंद 'भैया' होत शिव भूप है॥१०

दोहा.

शुचि करकें निज अंगको, पूजहु श्रीजिन पाय॥
दर्वित भावतविधि सहित, करहु भक्ति मन लाय॥ ११॥

जिन पूजाके भेद बहु, यहविधि अष्टप्रकार ॥
प्रतिपूजा जल धारसों, दीजे अर्घ सुधार ॥ १२ ॥

इति श्रीजिनपूजाष्टकं.

अथ फुटकर कविता मात्रिक कवित्त.

प्रथम अशोक फूलकी वर्षा, वानी खिरहि परम सुख कार ।
चामर छत्र सिंहासन शोभित, भामंडलद्युति दिपै अपार ॥
दुंदुंभि नाद बजत आकाशहिं, तीन भवनमें महिमा सार ।
समवशरण जिन देव सेवको, ये उतकृष्ट अष्टप्रतिहार ॥ १३ ॥

सवैया सुन्दरी.

काहेको देशदिशांतर धावत, काहे रिझावत इंद नरिंद ।
काहेको देवि औ देव मनावत, काहेको शीस नवावत चंद ॥
काहेको सूरजसों कर जोरत, काहे निहोरत मूढमुनिंद[1] ।
काहेको शोच करै दिनरैन तूं, सेवत क्यों नहि पार्श्वजिनंद॥१४॥

वीतरागकी स्तुति छप्पय.

देव एक जिनचंद नाव, त्रिभुवन जस जंपै ।
देव एक जिनचंद, दरश जिहँ पातक कंपै ॥
देव एक जिनचंद, सर्व जीवन सुखदायक ।
देव एक जिनचंद, प्रगट कहिये शिवनायक ॥
देव एक त्रिभुवन मुकुट, तास चरण नित वंदिये ॥
गुण अनंत प्रगटहि तुरत, रिद्धिवृद्धि चिरनंदिये ॥ १५ ॥

कवित्त.

आतमा अनूपम है दीसै राग द्वेष विना, देखो भविजीवो ! तुम आपमें निहारकें । कर्मको न अंश कोऊ भर्मको न वंश को-

---

(१) पाखंडीतपस्वी.

ऊ, जाकी शुद्धताईमें न और आप टारकें ॥ जैसो शिवखेत बसै तैसो ब्रह्म यहां लसै, यहां वहां फेर नाही देखिये विचारकें । जोई गुण सिद्धमाहिं सोई गुण ब्रह्ममांहि, सिद्धब्रह्म फेर नाहिं निश्चै निरधारकें ॥ १६ ॥

प्रश्नोत्तरदोहा.

कोन ज्ञान विन आवरन, कौंन देव विनराग ॥
कौंन साधु निर्ग्रन्थ है, कौंन व्रती जिहँ त्याग ॥ १७ ॥

एकाक्षरी दोहा.

नानी नानी नानमें, नानी नानी नान ॥
नन नानी नन नाननैं, नन नैनानन नान ॥ १८ ॥

द्व्यक्षरी दोहा.

मानन मानों मानमें, मान मान मैं मान ॥
मनु ना मानै मानमें, मान मानुमें मान ॥ १९ ॥

त्र्यक्षरी दोहा.

चेतन चेतो चेतना, तो चेते चित चैन ॥
तातें चेतन चेत तू, चेतनता नित नैन ॥ २० ॥

चतुरक्षरी दोहा.

अध्यातममें आतमा, मम अध्यातम धाम ॥
आतम अध्यातम मतै, धू मम आतम ताम ॥ २१ ॥

अथ वर्त्तमानचतुर्विंशति जिनस्तुति लिख्यते ।

श्रीआदिनाथजिनस्तुति छप्पय.

आदिनाथ अरहंत, नाभिराजा कुलमंडन ।
नगर अयोध्या जनम, सर्व मिथ्यामति खंडन ॥

केवल दर्शन शुद्ध, वृषभ लक्षन तन सोहैं ।
धनुष पांच सौ देह, इन्द्र शतके मन मोहैं ॥
मरुदेवि मात नंदन सुजिन, तिहूंलोक तारनतरन ।
मनभाव धारि इक चित्तसों, भव्यजीव वंदत चरन ॥१॥

श्रीअजितजिनस्तुति. मात्रिक कवित्त.

जितशत्रूसुत विजयानंदन, गजलच्छन तेरै अभिराम ।
अष्ट महा मद सव जिनजीते, नगरअजोध्या तज धन धाम॥
केवल ज्ञान किये नर केते, पंचमि गति पहुंचे शुभ ठाम ।
ऐसे अजित नाथ तीर्थंकर, तिनको नित कीजे परनाम ॥२॥

श्रीसंभवजिनस्तुति—मात्रिक कवित्त.

संभवनाथ सकल सुखदायक, सावस्ती नगरी अवतार ।
राय जथारथ सेना जननी, केवल दर्शन रूप अपार ॥
हय लच्छनतनस्वामी शोभत, अरि सव जीत तरे निरधार ।
भव्यजीव परणाम करत है, हे प्रभु भवदधिपार उतार ॥३॥

श्रीअभिनंदनजिनस्तुति.

अभिनंदन चंदनसों पूजों, समरस राजाकुल अवतार ।
नगर अजोध्या जन्म लियो जिन, कपि लच्छन जगमें विस्तार
सिद्धारथ माता कुलमंडन, पापविहंडन परम उदार ।
तातैं जगत जीव नित वंदत, भवसागर प्रभु पार उतार॥४॥

श्रीसुमतिजिनस्तुति.

सुमति नाथ सुमरे सुखसंपत, दुख दरिद्र दूर सवजाय ।
नगरसुकोशल जन्मलियो जिन, पिता मेघ अरु मंगला माय॥
चल अनंत भगवंत विराजै, लच्छन कोक नित सेवै पाय ।
मनवचभाव नित्य भवि वंदै, श्रीजिनचर्णन शीस नवाय॥५॥

श्रीपद्मप्रभजिनस्तुति.

पद्मप्रभ धरराजानंदन, मात सुसीमा जगतजगीस ।
कोसंवी नगरी जिन जन्मे, इन्द्रादिक प्रणमहि निशदीस ॥
लच्छन कमल विराजै प्रभुके, शोभत तहँ अतिशय चौतीस।
चरणकमल प्रभुके नित वंदै, भव्यत्रिकाल नाय निज शीस ॥६॥

श्रीसुपार्श्वजिनस्तुति.

श्री सुपास जिन आश जु पूरै, सेवहु नित भविजन चरनं ।
पयठराजा सीवै सुलच्छन, पोहमिकुश प्रभु अवतरनं ॥
केवल वयन देशना देते, भविजनमन अम्रत झरनं ।
नगर वनारसि नित जन वंदै, भव्य जीव सव तुम शरनं ॥७॥

श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तुति.

चन्द्रप्रभ चंदेरी उपजे, मंगला मात पिता महसेन ।
शशिलच्छन सेवै चरनादिक, समकित शुद्धदेत तिहँ ऐन ॥
लोकालोक प्रगट घट अंतर, वानि खिरै अम्रत मुख जैन ।
ताके चरण भव्य नितवंदित, अविचलरिद्ध देत प्रभु चैन ॥८॥

श्रीसुविधिजिनस्तुति.

सेवहु सुविधि नाथ तीर्थंकर, जसु सुमरे सुखसंपति होय ।
काकंदी नगरी जिन उपजे, मगर लंछ प्रभुके तन जोय ॥
रामा मात जगत सव जाने, अरिकुल व्याप सकै नहिं कोय ।
अवनीपति सुग्रीव कहावत, ताके सुत वंदत तिहुं लोय ॥ ९॥

श्रीशीतलजिनस्तुति—कवित्त.

कंचन वरन तन रंचन डिगत मन, तिहुंलोक नाथ जिन इन्द्रमुख भासई। नंदाजूकी कूख धन दृढरथ राजा तन, अष्टकुल

(१) सेही ।.(२) "जितसेन" ऐसा भी पाठ है.।

मदहन, ज्ञानको प्रकाशई ॥ लच्छन श्रीवृच्छपाव शीतल श्रीनाथ नाव, भद्दल जिनंद गांव रवि ज्यों उजासई । देशना सुदेह सार होंहि तहाँ जैजैकार, भव्यलोक पावे पार मिथ्याको विनाशई ॥ १० ॥

श्रीश्रेयांसजिनस्तुतिमात्रिक कवित्त.

श्रीपुर नगर जगत सब जानै, विष्नराय विसनाके नंद ।
समवशरनमधि जिनवर शोभत, मोहत है नृपके कुलवृंद ॥
लच्छन खग सेवै चरणादिक, तीर्थंकर श्रेयांस जिनंद ।
तिनके चरणन चित्तलायकें, वंदत हैं नित इंदनरिंद ॥ ११ ॥

श्रीवासुपूज्यजिनस्तुति.

श्रीवासुपूज्य चंपा नगरी पति, महिषी लंछ मही सब जानै ।
वासुपूज राजाकुल मंडन, जायासुत सब जगत वखानै ॥
सुरपति आय सीस नित नावे, प्रभुसेवा निजमनमें आनै ।
सम्यकदृष्टि नितप्रति सेवहिं, जिनके वचन अखंडित मानै ॥१२

श्रीविमलजिनस्तुति—छप्पय.

विमलनाथ इकदेव, सिद्धसम आप विराजै ।
त्रिभुवनमाहिं जिनंद, जासु धुनि अंवरगाजै ॥
कंपिलपुर जिन जन्म, शुक्र लंछन महि मानै ।
सुरपति सेवहिं पांय, जगत्रयमाझ वखानै ॥
कृतवर्म भूप स्यामाजननि, केवलज्ञान दिवाकरन ।
तस चरन कमल वंदत 'भविक' जयजिनवर तारनतरन ॥१३॥

श्रीअनन्तजिनस्तुति—मात्रिक कवित्त.

अनंत नाथ सीचाना लंछन, सुजसा मात कहै सब कोय ।

पिता जास श्रीसैन नरेश्वर, नगर अजोध्या जन्मैं सोय ॥
गुण अनंत वलरूप विराजै, सिद्धभये अरिके कुल खोय ।
भावसहित भविप्रानी वंदत, हे प्रभु शिवपद हमको होय ॥१४॥

श्रीधर्मजिनस्तुति.

लच्छन वज्र रतनपुर उपजे, धर्मनाथ तीर्थंकर धीर ।
भानुमहीपतिके कुलमंडन, सुवृता मात वडे वलवीर ॥
समवशरनमें देशना देते, प्रभुधुनि जिम सागर गंभीर ।
चरन सदा भवि प्रानी वंदत, जैजै जिनवर चरमशरीर ॥ १५ ॥

श्रीशान्तिजिनस्तुति—सिंहावलोकन छप्पय.

जिनवर ताराचंद, चंदतारा नित वंदै ।
वंदै सुरनर कोटि कोटि, सुरवृंद अनंदै ॥
आनँद मगन जु आप, आप हस्तिनपुर आये ।
आये शांति जिनदेव, देव सवही सुख पाये ॥
पाये सुमात ऐरारतन, तन कंचन विश्वसेन गिन ।
गिन सु कोष गुनको वन्यो, वन्यो सुतारन तरन जिन॥१६॥

श्रीकुंथुजिनस्तुति. मात्रिक कवित्त.

पदमासन भगवंत विराजहिं, केवल वयन देशना देहिं ।
गजपुर नगर सूरसिंह भूपति, ताके नंद अभयपद देहिं ॥
कुंथुनाथ तीर्थंकर जगमें, सव प्रानिनको आनंद देहिं ।
जस श्रीवत्सक लंछन सो है, भव्य त्रिकालहि वंदन देहि ॥१७॥

श्रीअरःजिनस्तुति.

नंद्यावर्त्त सुलच्छन सोहै, सुरपति सेव करै नित आय ।
संघ चतुर्विध देशना सुनते, वैरभाव नहिं रहै सुभाय ॥

अर्जुनमात मही सब जानैं, पिता जासु है दक्षिण राय ।
श्रीअरनाथ नगर गजपुरवर, वंदे भव्य जिनेश्वर पाय ॥ १८ ॥

श्रीमल्लिजिनस्तुति.

मल्लिनाथ मिथुलानगरीपति, अद्भुत रूप जिनेन्द्र विराजैं ।
कुंभराय परभावति जननी, लच्छन कलश चरण सो छाजैं ॥
सुरपति आय शीश नित नावैं, कंचन कमल धरैं प्रभु काजैं ।
समोशरण गह गहैं जिनेसुर, वानी सुन मिथ्यातम भाजैं ॥ १९ ॥

श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तुति-सिंहावलोकन छप्पय.

मुनिसुव्रत जिन नाव, नाव त्रिभुवन जस जंपै ।
जंपै सुरनर जाप, जाप जपि पाप जु कंपै ॥
कंपै अरिकुल रीति, रीति जिन नीति प्रकासैं ।
परकाशैं घट सुमति, सुमति राजग्रह वासैं ॥
वासैं जिनवर सिद्ध चित, चितवत कूरम चरण तन ।
तन पद्मावति पूजजिन, जिनसेवक वंदैं सुमुनि ॥ २० ॥

श्रीनमिजिनस्तुति-मात्रिक कवित्त.

नम्यनाथ नीलोत्पललच्छन, मिथुलानाथ नगर परसिद्ध ।
विजय राय परभावति जननी, सुमिरें पावैं अविचलरिद्ध ।
केवल ज्ञान जिनेश्वर वंदत, होत सदा समकितकी वृद्धि ।
भावसहित जो जिनको पूजैं, तिन घर होय सदा नवनिद्धि ॥२१॥

श्रीनेमिजिनस्तुति कवित्त.

नेमिनाथ नाथ नेमि काहूसों न राखैं प्रेम, मनवच सदा एम रहैं दशा जोगकी । समुद्रके सुत धीर सिंधुज्यों गंभीर वीर, संख रहैं चर्ण तीर लिप्सा नाहीं भोगकी ॥ सौरिपुर शिवामाय जग जिननाथ राय नीलरत्न जासु काय, लखैं बात लोगकी । अनं-

त बलधारी है सो सदा ब्रह्मचारी है, ऐसे जिन वंदत रहै न दशा रोगकी ॥ २२ ॥

श्रीपार्श्वनाथजिनस्तुति छप्पय.

अम्रत ज़िनमुख झरै, द्वार सुरदुंदुभि वाजै ।
सेवहिं सुरनर इंद्र, नाग फन शीश विराजै ॥
नगर बनारसि नाम, तात अससेन कहिज्जे ।
वामा मात विख्यात, जगत जिन पूजा किज्जे ॥
सुअनंत ज्ञान बल रूपधर, आप जगत तर सिद्धहुव ।
वंदै सुभव्य नर लोकके, जय जय पास जिनंद तुव ॥२३॥

श्रीवीरजिनस्तुति.

जिनवर श्रीमहावीर, इन्द्र सेवा नित सारहिं ।
सुरनर किन्नर देव तेहु, मिथ्या मत टारहिं ॥
क्षत्रिय कुल जिन जन्म, राय सिद्धारथ नंदन ।
त्रिशला उर अवतार, सिंह पद पाप निकंदन ॥
विधिचार संघ सुन देशना, केवल वचन विशाल अति ।
जिनप्रभु वंदत सम भावधर, जय जय दीनदयाल मति ॥ २४ ॥

दोहा.

जिन चौवीसी जगतमें, कलपवृक्षसम मान ॥
जे नर पढ़ैं विवेकसों, ते पावहिं शिवथान ॥ २५ ॥

इति चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः ।

अथ विदेहक्षेत्रस्थ वर्तमानजिनविंशतिका.

श्रीसीमंधरजिनस्तुति—छप्पय.

सीमंधर जिनदेव, नगर पुंडरिगिर सोहै ।
वंदहि सुरनर इन्द्र, देखि त्रिभुवन मन मोहै ॥

वृष लच्छन प्रभु चरन सरन, सवहीको राखहिं ।
तरहु तरहु संसार सत्य, सत यहैं जु भाखहिं ॥
श्रेयांस रायकुल उद्धरन, वर्त्तमान जगदीश जिन ॥
समभावसहित भविजननमहिं, चरण चारु संदेह विन ॥ १ ॥

श्रीयुगमंधरजिनस्तुति–कवित्त.

केवल कलप वृच्छ पूरत हैं मन इच्छ, प्रतच्छ जिनंद जुगमंधर जुहारिये । दुंदुभि सुद्वार वाजैं, सुनत मिथ्यात्व भाजैं, विराजै जगमें जिनकीरति निहारिये ॥ तिहुं लोक ध्यान धरैं नामलिये पापहरैं, करैं सुर किन्नर तिहारी मनुहारिये । भूपति सुद्दढराय विजया सु तेरी माय, पाय गज लच्छन जिनेशके निहारिये ॥ २ ॥

श्रीवाहुजिनस्तुति सवैया–द्रुमिला.

प्रभु वाहु सुग्रीव नरेश पिता, विजया जननी जगमें जिनकी ।
मृगचिह्न विराजत जासुधुजा, नगरी हैं सुसीमा भली जिनकी ॥
शुभकेवल ज्ञान प्रकाश जिनेश्वर, जानतु हैं सवही जिनकी ।
गनधार कहैं भवि जीव सुनो, तिहुं लोकमें कीरति हैं जिनकी ॥ ३ ॥

श्रीसुवाहु जिनस्तुति सवैया.

श्रीस्वामि सुवाहु भवोदधि तारन, पार उतारन निस्तारं ।
नगर अजोध्या जन्म लियो, जगमें जिन कीरति विस्तारं ॥
निशढिल पिता सुनंदा जननी, मरकटलच्छन तिस तारं ।
सुरनरकिन्नर देव विद्याधर, करहि वंदना शशि तारं ॥ ४ ॥

श्रीसुजातिजिनस्तुति कवित्त.

अलिका जु नाम पावैं इन्द्रकी पुरी कहावे, पुंडरगिरि सरभर नावे जो विख्यात है। सहसकिरनधार तेजतैं दिपैं अपार, धुजापै विरा-

जै अंधकारहू रिझात है॥ देवसेन राजासुत जाकी छवि अदभुत, देवसेना मातु जाके हरष न मात है। श्रीसुजाति स्वामीको प्रणाम, नित्य भव्य करैं जाके नामलिये कुल पातक विलात हैं॥ ५॥

श्रीस्वयंप्रभुजिनस्तुति सवैया. (मात्रिक)

श्रीस्वयंप्रभु शशिलंछन पति, तीनहु लोकके नाथ कहावें।
मित्रभूतभूपतिके नंदन, विजया नगर जिनेश्वर आवें॥
धन्य सुमंगला जिनकी जननी, इन्द्रादिक गुण पार न पावें।
भव्यजीव परणाम करतु है, जिनके चरन सदा चित लावें॥ ६॥

श्रीऋषभाननजिनस्तुति छप्पय.

ऋषभानन अरहंत, कीर्तिराजाके नंदन।
सुरनरकरहिं प्रणाम, जगतमें जिनको वंदन॥
वीरसेनसुतलशय, सिंहलच्छन जिन सोहैं।
नगर सुसीमा जन्म देखि, भविजनमननमोहैं॥
अमलान ज्ञान केवलप्रगट, लोकालोक प्रकाशधर।
तस चरनकमल वंदनकरत, पापपहार परांहिं पर॥ ७॥

श्रीअनंतवीर्यजिनस्तुति कवित्त.

श्रीअनंतवीर्यसेव कीजिये अनेक भेव, विद्यमान येही देव मस्तक नवाइये। तात जासु मेघराय मंगला सुकही माय, नगरी अजोध्याके अनेक गुण गाइये॥ ध्वजापै विराजै गज पेखै पाप जाय भज, त्रिकोटनकी महिमा देखे न अघाइये। तिहूं लोकमध्य ईस अतिशै चौतीस लसै, ऐसे जगदीश 'भैया' भलीभांति-ध्याइये॥ ८॥

श्रीसूरप्रभजिनस्तुति–सिंहावलोकन छप्पय.

सूरप्रभ अरहंत, हंत करमादिक कीन्हें।
कीन्हें निज सम जीव, जीव बहु तार सु दीन्हें॥

दीन्हें रविपद वास, वास विजयामहि जाको।
जाको तात सुनाग, नाग भय माने ताको॥
ताको अनंतवलज्ञानधर, धर भद्रा अवतार जी।
जिहँभावधारि भवि सेवही, वहि नरिंद लहिं मुकतिश्री॥९॥

श्रीविशालजिनस्तुति सवैया.

नाथ विशाल तात विजयापति, विजयावति जननी जिनकी।
धन्य सु देश जहां जिन उपजे, पुंडरगिरि नगरी तिनकी॥
लच्छन इंदु वसहि प्रभु पायें, गिनै तहां कोन सुरगनकी।
मुनिराज कहैं भविजीव तरैं, सो है महिमा महिमें इनकी॥ १०॥

श्रीवज्रधरजिनस्तुति कवित्त.

अहो प्रभु पदमरथ राजाके नंदनसु, तेरोई सुजस तिहूंपुर गाइयतु है। केई तव ध्यान धरै, केई तव जापकरै, केई चर्णशर्णतरै, जीवपाइयतु है। नगर सुसीमा सिधि ध्वजायें विराजै शंख, मातुसरस्वतिके आनंद वधायतु है। वज्रधरनाथ साथ शिवपुरी करो कहि, तुम दास निशदीस शीस नाइयतु है॥ ११॥

श्रीचन्द्राननजिनस्तुति छप्पय.

चन्द्राननजिनदेव, सेव सुर करहिं जासु नित।
पदमासन भगवंत, डिगत नहिं एक समयचित॥
पुंडरिनगरी जनम, मातु पद्मावति जाये।
वृपलच्छन प्रभुचरण, भविक आनंद जु पाये॥
जस धर्मचक्र आगें चलत, ईतिभीति नासंत सब।
सुत वाल्मीक विचरंत जहँ, तहँतहँ होत सुभिक्ष तव॥१२॥

श्रीचन्द्रवाहुजिनस्तुति मात्रिककवित्त.

लक्षण पद्मरेणुका जननी; नगर विनीता जिनको गांव।

तीन लोकमें कीरति जिनकी, चन्द्रबाहु जिन तिनको नांव ॥
देवानंद भूमिपतिके सुत, निशिवासर वंदहिं सुर पांव ।
भरत क्षेत्रतें करहि बंदना, ते भविजन पावहिं शिवठांव ॥ १३॥

श्रीभुजंगमजिनस्तुति सवैया.

महिमा मात महाबलराजा, लच्छन चंद धुजा पर नीको ।
विजय नग्र भुजंगम जिनवर, नाव भलो जगमें जिनहीको ॥
गणधर कहै सुनो भविलोको, जाप जपो सबही जिनजीको ।
जास प्रसाद लहै शिवमारग, वेग मिलैं निजस्वाद अमीको॥१४॥

श्रीईश्वरजिनस्तुति मात्रिक कवित्त.

ईश्वरदेव भली यह महिमा, करहि मूल मिथ्यातमनाश ।
जस ज्वाला जननी जगकहिये, मंगलसैन पिता पुनि पास ॥
नगरी जास सुसीमा भनिये, दिनपति चर्ण रहै नित तास ।
तिनको भावसहित नित वंदै, एक चित्त निहचै तुम दास ॥१५॥

श्रीनेमप्रभुजिनस्तुति कवित्त.

लच्छन वृषभ पाँय पिता जास वीरराय, सेना पुनि जिनमाय सुंदर सुहावनी । नगरी अजोध्या भली नवनिधि आवै चली, इन्द्रपुरी पाँय तली लोकमें कहावनी ॥ नेमि प्रभु नाथ वानी अम्रत समान मानी, तिहूं लोक मध्यजानी दुःखको बहावनी। भविजीव पांयलागै सेवा तुम नित मागै, अबै सिद्धि देहु आगै सुखको लहावनी ॥१६॥

श्रीवीरसेनजिनस्तुति सवैया.

महा बलवंत बडे भगवंत, सवै जिय जंत सुतारनको ।
पिता भुवपाल भलो तिनभाल, लह्यो निजलाल उधारनको ॥
पुंडरी सुवासहि रावन पास, कहै तुम दास उबारनको
वीरसेन राय भली भानुमाय, तारोप्रभु आय विचारनको॥१७॥

श्रीमहाभद्रजिनस्तुति. सवैया.

महाभद्र स्वामी तुम नाम लिये, सीझै सब काम विचारनके।
पिता देवराज उमादे माय, भली विजया निसतारनके ॥
शशि सेवै आय लगै, तुम पाय भले जिनराय उधारनके ।
किरपा करि नाथ गहो हम हाथ, मिलै जिनसाथ तिहारनके॥१८

श्रीदेवजसजिनस्तुति. छप्पय.

जिन श्रीदेवजस स्वामी, पिताश्रवभूत भनिज्जै ।
लच्छन स्वस्तिक पांव, नांव तिहुं लोक गुणिज्जै ॥
पावहि भविजन पार, मात गंगा सुखधारहिं ।
नगर सुसीमा जन्म आय, मिथ्यामति टारहिं ॥
प्रभु देहिं धरम उपदेश नित, सदा वैन अम्रत झरहिं ।
तिन चरणकमल वंदन करत, पापपुंज पंकति हरहिं ॥१९॥

श्रीअजितवीर्यजिनस्तुति. छप्पय.

वर्तमानजिनदेव पद्म, लच्छन तिन छाजै ।
अजितवीर्य अरहंत, जगतमें आप विराजै ॥
पद्मासन भगवंत, ध्यान इक निश्चय धारहि ।
आवहि सुरनरवृंद, तिन्हैं भवसागर तारहि ॥
नगर अजोध्याजन्मजिन, मात कननिका उरधरन ।
तस चरन कमल वंदत 'भविक' जै जै जिन आनँद करन॥२०॥

दोहा.

वर्त्तमान वीसी करी, जिनवर वंदन काज ॥
जे नर पढैं विवेकसों, ते पावहिं शिवराज ॥ २१ ॥

समुच्चयवर्त्तमानवीसतीर्थंकरकवित्त—

सीमंधर जुगमंद्र बाहु ओ सुबाहु संजात स्वयंप्रभु नाव तिहुं पन ध्याइये। ऋषभानन अनंतवीर्य विशालसूरप्रभ, वज्रधरनाथके चरण चितलाइये॥ चंद्रानन चन्द्रबाहु श्रीभुजंगमईश्वर, नेमिप्रभुवीरसेन विद्यमान पाइये। महाभद्र देवजस अजितवीरज भैया, वर्त्तमानवीसको त्रिकाल सीस नाइये॥ २२॥

इति वर्त्तमानजिनविंशतिका.

अथ परमात्माकी जयमाला लिख्यते।

दोहा.

परम देव परनाम कर, परमसुगुरु आराधि।
परम सुधर्म चितार चित, कहूं माल गुणसाधि॥ १॥

चौपाई.

एकहि ब्रह्म असंखप्रदेश। गुण अनंत चेतनता भेश॥
शक्ति अनंत लसै जिह माहिं। जासम और दूसरो नाहिं॥२॥
दर्शन ज्ञान रूप व्यवहार। निश्चय सिद्ध समान निहार॥
नहि करता नहिं करि है कोय। सदा सर्वदा अविचल सोय॥३॥
लोकालोक ज्ञान जो धरै। कबहुँ न मरण जनम अवतरै॥
सुख अनंत मय जाससुभाव। निरमोही वहु कीने राव॥४॥
क्रोध मान माया नहिं पास। सहजै जहाँ लोभको नास॥
गुण थानक मारगना नाहिं। केवल आपु आपुही माहिं॥५॥
परका परस रंच नहिं जहां। शुद्ध सरूप कहावै तहां॥
अविनाशी अविचलअविकार। सो परमातम है निरधार॥६॥

दोहा

यह निश्चय परमातमा, ताको शुद्ध विचार ॥
जामें पर परसै नहीं, 'भैया' ताहि निहार ॥ ७ ॥

इति परमात्माकी जयमाला ।

अथ तीर्थंकरजयमाला ।

दोहा.

श्रीजिनदेव प्रणाम कर, परम पुरुष आराध ॥
कहों सुगुण जयमालिका, पंच करणरिपु साध ॥१ ॥

पद्धरिछंद.

जयजय सु अनंत चतुष्टनाथ । जयजय प्रभु मोक्ष प्रसिद्ध साथ ॥
जय जय तुम केवल ज्ञानभास । जय जय केवल दर्शन प्रकाश ॥२॥
जय जय तुम वल जु अनंत जोर। जय जय सुख जास न पार ओर॥
जय जय त्रिभुवन पति तुम जिनंद । जय जय भवि कुमदनि पूर्णचंद ॥ ३ ॥ जय जय तम नाशन प्रगट भान । जय जय जित इंद्रिन तू प्रधान ॥ जय जय चारित्र सु यथाख्यात। जय जय अघनिशि नाशन प्रभात ॥ ४ ॥ जय जय तम मोह-निवार वीर । जय जय अरिजीतन परम धीर ॥ जय जय मनमथमर्दन मृगेश । जय जय जम जीतनको रसेश ॥ ५ ॥ जय जय चतुरानन हो प्रतक्ष । जय जय जग जीवन सकल रक्ष ॥
जय जय तुम क्रोध कपाय जीत। जय जय तुम मान हऱ्यो अजीत ६॥
जय जय तुम मायाहरन सूर । जय जय तुम लोभनिवार मूर ॥
जय जय शत इंद्रन वंदनीक । जय जय अरि सकल निकंद

नीक ॥ ७ ॥ जय जय जिनवर देवाधिदेव । जय जय तिहुंपन भवि करत सेव ॥ जय जय तुम ध्यावहिं भविक जीव । जय जय सुख पावहिं ते सदीव ॥ ८ ॥

घत्ता.

ते निजरसरत्ता तज परसत्ता, तुम सम निज ध्यावहि घटमें ॥
ते शिवगति पावैं बहुर न आवैं, वसै सिंधुसुखके तटमें ॥ ९ ॥

इति तीर्थंकर जयमाला.

अथ श्रीमुनिराज जयमाला ।

दोहा.

परमदेव परनाम कर, सतगुरु करहुं प्रणाम ॥
कहूं सुगुण मुनिराजके, महा लब्धिके धाम ॥ १ ॥

ढाल—मुनीश्वर वंदो मनधर भाव, ए देशी ।

पंच महाव्रत आदरैंजी; समति धरैं पुनि पंच ॥
पंचहु इन्द्रिय जीतकेंजी, रहैं विना परपंच, मुनीश्वर० ॥ २ ॥
षट आवश्यक नित करैंजी, जीव दया प्रतिपाल ॥
सोवैं पश्चिम रयनमेंजी, शुद्ध भूमि लघुकाल, मुनीश्वर० ॥ ३ ॥
स्नान विलेपन ना करैंजी, नग्न रहैं निरधार ॥
कचलोंचैं हित भावसोंजी, एकहि बेर अहार, मुनीश्वर० ॥ ४ ॥
थिर ह्वै लघु भोजन करैंजी, तजैं दंतवन काज ॥
ये पालैं निरदोषसोंजी, सो कहिये ऋषिराज, मुनीश्वर० ॥ ५ ॥
दोष लगे प्रायश्चित करैंजी, धरैं सु आतम ध्यान ॥
सोधैं नित परिणामको जी; सो संयम परवान, मुनीश्वर० ॥ ६ ॥

दोष छियालीस टालकैं जी, लेवहिं शुद्ध आहार ॥
श्रावकको कुल जानकैंजी, जल अचवें तिहँवार, मुनीश्वर०॥७॥
महा तपस्या व्रत करैंजी, सहै परीसह घोर ॥
बीस दोय बहु भेदसोंजी, काय कसैं अतिजोर, मुनीश्वर०॥८॥
निर्मल कर निज आतमाजी, चढैं श्रेणि शुध ध्यान ।
'भैया' ते निहचै सहीजी, पावहिं पद निर्वान, मुनीश्वर० ॥९॥

दोहा.

यह श्रीमुनिगुणमालिका, जो पहिरे उरमाहिं ॥
तिनको शिवसंपति मिलै, जनममरनभय नाहिं ॥ १० ॥

इति मुनिश्वर जयमाला.

अथ अहिक्षिति पार्श्वनाथजिनस्तुति.

दोहा.

अश्वसेन अंगज विमल, बामाके कुलचंद ॥
तिहँ केवल कल्याण भवि, पूजिये पार्श्वजिनंद ॥ १ ॥

छंद.

पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्रीअहि छत्तये ।
जिहँ थान प्रभुजू ध्यान धरिये, आतमरस महँ रत्तये ॥
उपसर्ग कमठ अज्ञान कीन्हों, क्रोधसों अगिनत्तये ।
बहु बाघ सिंह पिशाच व्यंतर, गजादिक मदमत्तये ॥ २ ॥
कोऊ रुंडमाला पहरि कंठहि, अगनि जाल मुकंत्तये ।
महाकाल रूप त्रिकाल सूरति, भय दिखावत गत्तये ॥
महि बरष बरषा क्रूर थाक्यो, भव समुद्रहिं पत्तये ।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये ॥ ३ ॥

धरणीन्द्र औ पद्मावती तहँ, आय जिन सेवंतये ।
सुअनंत बल जुत आप राजत, मेरु ज्यों अचलत्तये ।
करि कर्म चार विनाश ताछिन, लह्यो केवल तत्तये ।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये ॥४॥
शत इंद्र मिल कल्याण पूजा, आय विविध रचत्तये ।
तिहँ काजतैं यह भूमि महिमा, जगतमें प्रगटत्तये ॥
भवि जात्रि आवें जिनहि ध्यावें, निजातम सर्दहत्तये ।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्रीअहिछित्तये ॥५॥

दोहा.

सावधान मन राखिकें, जे जिनगुण गावंत ॥
संपति सुख तिनको सदा, गनत न आवै अंत ॥ ६ ॥
सत्रहसौ इकतीसकी, सुदि दशमी गुरुवार ॥
कार्तिकमास सुहावनो, पूजे पार्श्वकुमार ॥ ७ ॥

इति श्रीअहिक्षितिपार्श्वनाथजिनस्तुति.

अथ शिक्षा छंद.

दोहा.

देह सनेह कहा करै, देह मरन को हेत ॥
उत्तम नरभवपायकें, मूढ अचेतन चेत ॥ १ ॥

मरहठा छंद.

हे मूढ अचेतन, कछुइक चेतो, आखिर जगमें मरना है ।
नरदेही पाई, पूर्व कमाई, तिससों भी फिर टरना है० ॥ टेक ॥ २ ॥
क्यों धर्म बिसारो, पापचितारो, इन बातन क्या तरना है ॥
जो भूप कहाये, हुकुम चलाये, तौ भी क्या ले करना है, हे मूढ ॥३॥

धन यौवन आये, रह अरुझाये, सो संध्याका चरना है ॥
विषयारस रातो, रहे सुमातो, अंतअगनिमें जरना है, हेमूढ० ॥ ४ ॥
कैदिनको जीवो, विषरस पीवो, बहुरि नरकमें परना है ॥
जैसी कछु करनी, तैसी भरनी, बुरे फैलसों डरना है ॥ हेमूढ० ॥ ५ ॥
छिन छिन तन छीजै, आयु न धीजै, अंजुलि जल ज्यों झरना है ॥
जमकी असवारी, रहैतयारी, तिनसों निशदिन लरना है, हेमूढ० ॥ ६ ॥
कै भौ फिर आयो, अंत न पायो, जन्म जरा दुख भरना है ॥
क्या देख भुलानें, भरम विरानें, यह स्वपनेका छरना है, हे मूढ० ॥ ७ ॥
दुरगतिको परिवो, दुखको भरिवो, काल अनंतहु सरना है ॥
परसों हित मानें, मूढ न जाने, यह तन नाहिं उवरना है, हेमूढ० ॥ ८ ॥
मिथ्यामत लीन्हें, आप न चीन्हें, कर्म कलंकन हरना है ॥
जिनदेव चितारो, आपु निहारो, जिनसों जीव उधरनाहै, हेमूढ० ॥ ९ ॥

दोहा.

जनम मरनतें नाथ क्यों, जीव चतुर्गति माहिं ॥
पंचमि गति पाई नही, जो महिमा निजमाहिं ॥ १० ॥
निज स्वभावके प्रगटतें, प्रगट भये सब दर्व ॥
जनम मरन दुख त्यागकें, जानन लागौ सर्व ॥ ११ ॥
'भैया' महिमा ज्ञानकी, कहै कहां लों कोय ॥
कै जानै जिन केवली, कै समदृष्टी होय ॥ १२ ॥

इतिशिक्षावली ।

अथ परमार्थपदपंक्ति.

१ । राग भैरों.

या देहीको शुचि कहा कीजे, जासों धोइये सोईपै छीजै, या

देहीको० ॥टेक॥ जो जो धोइये सो सो भरी, देखहु दृष्टि विचारके खरी, या देहीको० ॥ २ ॥ दशों द्वार निशिवासर वहनी, कोटि जतन किये थिर नहिं रहनी, या देहीको० ॥ ३ ॥ तत्त्व यहै आतम रसपीजे, परगुण त्याग जलंजलि दीजे, या देहीको० ॥४॥

२ राग देव गंधार ।

अब मैं छाड्यो पर जंजाल, अब मैं ० टेक ।

लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी, तज्यो ताहि तत्काल अबमैं० ॥१॥
आतम रस चाख्यो मैं अदभुत, पायो परमदयाल, अबमैं० ॥२॥
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, सोमरूप सुविशाल, अबमैं० ॥३॥

३ । राग विलावल ।

या घटमें परमातमा चिन्मूरति भइया ॥
ताहि विलोकि सुदृष्टिसों पंडित परखैया, या घटमें० ॥१॥
ज्ञान स्वरूप सुधामयी, भवसिंधु तरैया ॥
तिहूं लोकमें प्रगट है, जाकी ठकुरैया, या घटमें० ॥ २ ॥
आप तरै तारै परहिं, जैसें जल नइया ॥
केवल शुद्ध स्वभाव है, समुझै समुझैया, या घटमें ॥ ३ ॥
देव वहै गुरु हैं वहै, शिव वहै वसइया ॥
त्रिभुवन मुकुट वहै सदा, चेतौ चितवइया, या घटमें० ॥४॥

४ । पुनः राग विलावल.

नरदेही बहु पुण्यसों, चेतन तैं पाई ॥
ताहि गमावत वावरे, यह कौन वड़ाई' नरदेही० ॥ १ ॥
जप तप संयम नेम व्रत, करि लेहुरे भाई ॥
फिर तोको दुर्लभ महा, यह गति ठकुराई, नरदेही० ॥२॥

५ । राग रामकली.

अरे तैं जु यह जन्म गमायोरे, अरे तैं० टेक।

पूरव पुण्य किये कहुं अतिही, तातैं नरभव पायोरे ॥
देव धरम गुरु ग्रंथ न परखै, भटकिभटकि भरमायोरे अरे० ॥१॥
फिर तोको मिलिवो यह दुर्लभ, दश दृष्टान्ते वतायोरे ॥
जो चेतं तो चेतरे 'भैया' तोको कहि समुझायोरे, अरे० ॥ २ ॥

६ । पुनः राग रामकली.

जीयको मोह महादुखदाई, जीयको० टेक ॥

काल आनादि जीति जिहँ राख्यो, शक्ति अनंत छिपाई ॥
क्रम क्रम करकें नरभव पायो, तऊन तजत लराई. जीयको० ॥१॥
मात तात सुत वन्धव वनिता, अरु परवार वडाई.
तिनसों प्रीति करैं निशिवासर, जानत सव ठकुराई जीयको० ॥२॥
चहुं गति जनममरनके वहुदुख, अरु वहु कष्ट सहाई ॥
संकट सहत तऊ नहि चेतत, भ्रममदिरा अति पाई, जीयको० ॥३॥
इह विन तजे परम पद नाहीं, यों जिनदेव वताई ॥
तातें मोह त्याग ले भइया, ज्यों प्रगटे ठकुराई, जीयको० ॥ ४॥

७ । राग काफी.

जाको मन लागो निजरूपहिं, ताहि और क्यों भावै ।
ज्यों अटूट धन लहे रंक कहुं, और न काहु दिखावै ॥ १ ॥
गुण अनंत प्रगटैं जिहं थानक, तापटतर को आवै ॥
इहिविधि हंस सकल सुखसागर, आपुहि आप लखावै ॥ २ ॥

---

(१) मनुष्यभवकी दुर्लभतादिखानेकेलिये जिनमतमें दश दृष्टान्तरूपकथायें हैं उनके द्वारा ।

८ । राग सारंग.

जगतगुरु कवनिज आतम ध्याऊं जगत० टेक ॥

नग्नदिगंवरमुद्राधरिकैं कव निज आतम ध्याऊं ॥

ऐसी लब्धि होइ कव मोको, हौं वा छिनको पाऊं, जगत ०॥१॥

कव घर त्याग होऊं वनवासी, परम पुरुष लौं लाऊं ॥

रहौं अडोल जोड पदमासन, करम कलंक खपाऊं, जगत० ॥२॥

केवल ज्ञान प्रगट कर अपनों, लोकालोक लखाऊं ॥

जन्म जरा दुख देय जलांजलि, हौं कव सिद्ध कहाऊँ, जगत० ॥३॥

सुख अनंत विलसौं तिहँ थानक, काल अनंत गमाऊँ ॥

"मानसिंह"[1] महिमा निज प्रगटै, वहुर न भवमें आऊं, जगत ० ॥४॥

९ । राग धमाल गौडी.

गौड़ीप्रभु पारस पूजिये हो, मनधर परम सनेह, गौडी० टेक ।

सकल करम भय भंजनो हो, पूरै वंछित आश ।

तास नाम नित लीजिये हो, दिन दिन लीला विलास, गौडी०॥२॥

केवलपद महिमा लखो हो, धरहु सुथिरता ध्यान ॥

ज्ञानमाहिं उर आनिये हो, इहिविधि श्रीभगवान, गौडी० ॥ ३॥

और सकल विकलप तजो हो, राखहु प्रभुसों प्रीति ॥

आप सरवर ए करें हो, यहै जिनंदकी रीति, गौडी, ॥ ४ ॥

जाके वदन विलोकते हो, नाशै दूर मिथ्यात ॥

ताहि नमहुं नित भावसों हो, पास जगत विख्यात, गौडी० ॥५॥

१० । पुनः

कहा परदेशीको पतियारो, कहा-टेक० ।

मनमाने तव चलै पंथको, सांज गिनै न सकारो ।

सवै कुटंब छाँड इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो, कहा०॥ १ ॥

(१) मानसिंह भैया भगवतीदासजीका परम मित्र था ।

दूर दिसावर चलत आपही, कोऊ न राखन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो, कहा०॥ २॥
धनसों राचि धरमसों भूलत, झूलत मोहमझारो।
इहि विधि काल अनंत गमायो, पायो नहि भवपारो, कहा०॥३॥
सांचे सुखसों विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहुरे भइया, आपही आप संभारो, कहा०॥ ४॥

११। पुनः

ते गहिले भाई ते गहिले, जगराते अवके पहिले।
आपा पर जिहँ भेद न जान्यो, ते बूड़े भवभ्रमवहले, ते गहले॥१॥
धन धन करत फिरत निशिवासर, तिनको जनम गयो अहले।
भ्रममें मगन लगन पुदगलसों, ते नर भवसागर टहले, ते गहले॥२॥
क्रोध मान माया मद माते, विषयनके रस माहिं रले।
'भैया' चेत चतुर कछु अवकें, नहि तो नरक निगोद हिले, ते ग०३।

१२। राग केदारो.

छांड़िदे अभिमान जियरे छांड़िदे० ॥ टेक-
काको तू अरु कौन तेरे, सवही हैं महिमान॥
देव राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान, जियरे० ॥ १॥
जगत देखत तोरि चलनो, तूभी देखत आन॥
घरी पलकी खबर नाहीं, कहां होय विहान, जियरे० ॥ २॥
त्याग क्रोधरु लोभ माया, मोह मदिरापान॥
राग दोषहिं टार अन्तर, दूर कर अज्ञान, जियरे० ॥ ३॥
भयो सुरपुर देव कवहूं, कवहुं नरक निदान।
इम कर्मवश वहु नाच नाचे, भैया आप पिछान, जियरे०॥४॥

---

१ वावले, २ राचे,

१३। राग सोरठ.

अरे सुन जिनशासनकी बतियाँ, जातें होय परम सुखि छतियां, अरे०टेक। निजपर भेद करहु दिन रतियां, ज्यों प्रगटहिं शिवशकतिअनँतियां, अरे० ॥ १ ॥ सुख अनंत सब होय निकतियां, मिटहि सकल भव भ्रमकी घतियां, अरे० ॥ २ ॥ परम ज्योति प्रगटै परभतियां, 'भैया' निजपद गहु निज मतियां, अरे० ॥ ३ ॥

१४। राग कान्हरो.

देखो मेरी सखीये आज चेतन घर आवै ॥
काल अनादि फिरयो परवशही, अब निज सुधहिं चितावै, दे०॥१॥
जनमजनमके पाप किये जे, ते छिन माहि वहावै ॥
श्रीजिनआज्ञा शिरपर धरतो, परमानंद गुण गावै, देखो० ॥२॥
देत जलांजुलि जगत फिरनको, ऐसी जुगति बनावै ॥
विलसै सुख निज परम अखंडित, भैया सब मनभावै, देखो॥ ३ ॥

१५। राग केदारो.

कैसें देऊं करमन दोष कैसें० ॥ टेक ॥
मगन ह्वै ह्वै आप कीने, गहे रागरु दोष ॥
विषयोंके रस आप भूल्यो, पापसों तन पोस, कैसे० ॥ १ ॥
देवधर्म गुरु करी निंदा, मिथ्या मदके जोस ॥
फल उदै भई नरकपदवी, भजोगे कै कोस, कैसें० ॥ २ ॥
किये आपसु बनै भुगते, अब कहा अफसोस।
दुखित तो बहु काल बीते, लही न सुख जल ओस, कैसें० ॥ ३ ॥

क्रोध मानरु लोभ माया, भरयो तन घट ठोस ॥
चेत चेतन पाय नरभव, मुकति पंथ सुघोप, कैसें० ॥ ४ ॥

१६ । राग केदारो.

कहो परसों प्रीति कीन्हीं, कहा गुण तुम जान ।
चतुर चेतन चितविचारो, कहहुं पुनि पहिचान ॥ १ ॥
वे अचेतन तुम सुचेतन, देखि दृष्टि विनान ।
परहिं त्याग स्वरूप गहिये, यहै वात प्रमान ॥ २ ॥

१७ । राग, अडानो

रे मन ऐसा है जिनधर्म, रे मन० टेक ॥
जाके दरस सरस सुख उपजत, मिटत सकल भव भर्म ॥
शुद्धस्वरुप सहज गुणसागर, जानत सबको मर्म, रे मन० ॥ १ ॥
ज्ञान दरस चारित कर राजत, परसत नाहीं कर्म ॥
निश्चय ध्यान धरो वा प्रभुको; ज्यों प्रगटै पद पर्म, रे मन० ॥ २ ॥

१८ । दोहा (विहाग.)

श्रीजिन चरणांवुज प्रते, वंदत भवि धर भाव ।
केवल पद अवलंवि निज, करत भगत व्यवसाव ॥ १ ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल मैं, श्री जिनविंव अनूप ॥
तिहँ प्रति वंदत भविक नित, भावसहित शिवरूप ॥ २ ॥

१९ । राग अडानो.

भविक तुम वंदहु मनधर भाव, जिन प्रतिमा जिनवरसी कहिये, भ० ॥
जाके दरस परमपद प्रापति, अरु अनंत शिवसुख लहिये, भविक ॥ १
निज स्वभाव निरमल है निरखत, करम सकल अरि घट दहिये ॥
सिद्ध समान प्रगट इह थानक, निरख निरख छवि उर गहिये, भ० २ ॥

अष्ट कर्म दल भंज प्रगट भई, चिन्मूरति मनु वन रहिये।
इहि स्वभाव अपनो पद निरखहु, जो अजरामर पद चहिये, भविक०
त्रिभुवन माहिं अकृत्रिम कृत्रिम, चंदन नितप्रति निरवहिये।
महा पुण्यसंयोग मिलत है, भइया जिन प्रतिमा सरदहिये, भविक०

२०। पुनः

हो चेतन तो मति कौन हरी, चेतन०टेक॥
कै लै गयो मिथ्यामति मूरख, कै कहुं कुमति धरी॥
कै कहुं लोभ लग्यो तोहि नीको, कै विष प्रीति करी, हो चे०॥१
कै कहुं राग मिल्यो हितकारी, रीति न समुझि परी॥
अब हूं चेत परमपद अपनो, सीख सु धार खरी, होचे०॥२

२१। पुनः

हो चेतन वे दुःख विसरि गये॥ टेक॥
परे नरकमें संकट सहते, अब महाराज भये।
सूरी सेज सबै तन वेदत, रोग एकत्र ठये॥ हो चे०॥ १॥
करत पुकार परम पद पावत, कर मन आनंदये।
कहूं शीत कहूं उष्ण महाभुवि, सागर आयु लये, हो चे०॥२॥

२२। राग मारू.

जो जो देख्यो वीतरागने सो सो होसी वीरारे।
विन देख्यो होसी नहिं क्योंही, काहे होत अधीरा रे॥१॥
समयो एक बढ़ै नहिं घटसी, जो सुख दुखकी पीरा रे।
तू क्यों सोच करै मन कूड़ो, होय वज्र ज्यों हीरा रे॥२॥
लगै न तीर कमान वान कहुं, मार सकै नहिं मीरा रे।
तूं सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे॥३

निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभुको, जो टारै भव भीरा रे।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारै भव नीरा रे॥४॥

२३। राग धनाश्री।

जिनवाणी को को नहिं तारे, जिन०॥ टेक॥
मिथ्यादृष्टी जगत निवासी, लहि समकित निज काज सुधारे।
गौतम आदिक श्रुतिके पाठी, सुनत शब्द अघ सकल निवारे, जिन०
परदेशी राजा छिन वादी, भेद सुतत्त्व भरम सब टारे।
पंचमहाव्रत धर तू 'भैया' मुक्तिपंथ मुनिराज सिधारे, जिन॥२॥

२४।पुनः।

जिनवाणी सुनि सुरत संभारे जिन०॥ टेक॥
सम्यग्दृष्टी भवननिवासी, गह वृत केवल तत्त्व निहारे, जिन०१॥
भये धरणेन्द्र पद्मावति पलमें, जुगलनाग प्रभु पास उबारे॥
बाहूबलि बहुमान धरत हैं, सुनत वचन शिव सुख अवधारे, जिन२॥
गणधर सबै प्रथम धुनि सुनिके, दुविध परिग्रह संग निवारे॥
गजसुकुमाल वरस वसुहीके, दिक्षाग्रहत करम सब टारे, जिन०३॥
मेघकुँवर श्रेणिकको नंदन, वीरवचन निजभवहिं चितारे॥
और हु जीव तरे जे भैया, ते जिनवचन सबै उपगारे, जिन०॥४॥

२५।पुनः।

चेतन परे मोह वश आय, चेतन॥ टेक॥
मानत नाहिं कहूं समुझायो, विषयन रहे लुभाय॥
नरक निगोद भ्रमन बहु कीन्हो, सो दुख कह्यो न जाय, चेतन०,१॥
नरभव पाय धरम नहिं पायो, आगेको न उपाय॥
जैसें डारि उदधि चिंतामणि, मूरख फिर पछताय, चेतन०॥२॥

सतगुरु वचन धारिले अबके, जातें मोह विलाय ॥
तब प्रगटै आतम रस भैया, सो निश्चय ठहराय, चेतन० ॥ ३॥

॥ इति परमार्थ पदपंक्ति ॥

अथ गुरु शिष्य प्रश्नोत्तर,

दोहा.

कहुं दिव्यध्वनि शिष्य सुनि, आयो गुरुके पास ॥
पूज्य सुनहु इक वीनती, अचरजकी अरदास ॥ १ ॥
आज अचंभौ मैं सुनो, एक नगरके बीच ॥
राजा रिपुमें छिप रह्यो, राग करें सब नीच ॥ २॥
नीचसु राज्य करै जहां, तहां भूप बलहीन ॥
अपनो जोर चलै नहीं, उनहीके आधीन ॥ ३ ॥
वे याको मानें नहीं, यह वासों रसलीन ॥
सत्तर कोड़ाकोड़िलों, बंदीखानें दीन ॥ ४ ॥
बंदीवान समान नृप, कर राख्यो उहि ठौर ॥
वाको जोर चलै नहीं, उनहींके सिरमौर ॥ ५ ॥
वे जो आज्ञा देत हैं, सोइ करै यह काम ॥
आप न जानें भूप मैं, ऐसो है चित भ्राम ॥ ६ ॥
उनकी चेरीसों रचे, तजि निज नारि निधान ॥
कहो स्वामि सो कौन वह, जिनको ऐसो ज्ञान ॥ ७ ॥
कौन देश राजा कवन, को रिपु को कुल नारि ॥
को दासी कहु कृपाकर, याको भेद विचारि ॥ ८ ॥

गुरुवाच.

गुरु बोलै समकित बिना, कोऊ पावै नाहिं ॥
सवैं ऋद्धि इक ठौर है, काया नगरीमाहिं ॥ ९ ॥

काया नगरी जीव नृप, अष्ट कर्म अति जोर ॥
भाव अज्ञानदासी रचे, पगे विषयकी ओर ॥ १० ॥
विषयवुद्धि जहां है नहीं, तहां सुमतिकी चाह ॥
जो सुमती सो कुल त्रिया, इहि याको निरवाह ॥११॥
आप पराये वश परे, आपा डारयो खोय ॥
आपा आपु न जानहीं, कहो आपु क्यों होय ॥१२॥
आप न जानें आपको, कौन वतावनहार ॥
तबहिं शिष्य समकित लह्यो, जान्यों सवहि विचार ॥
इहि गुरु शिष्य चतुर्दशी, सुनहु सवै मनलाय ॥
कहै दास भगवंतको, समताके घर आय ॥ १४ ॥

इति गुरुशिष्यचतुर्दशी.

अथ मिथ्यात्वविध्वंसनचतुर्दशी.

छप्पय.

वन्दहुं ऋषभ जिनेन्द्र, अजित संभव अभिनन्दन ।
सुमति सु पद्म सुपार्श्व, बहुरि चन्द्रप्रभ वंदन ॥
सुविधि शीतल श्रेयांश, वासुपूजहिं सुखदायक ।
विमल अनंत रु धर्म, शान्ति कुंथ जु शिवनायक ॥
अर मल मुनसुव्रत नमत, पाप पुंज पंकति हरिय ।
नमि नेम पार्श्व जिन वीर कहँ, भवित्रिकाल वंदन करिय ॥१॥

कवित्त मनहर.

मिथ्या गढ़ भेद भयो अन्धकारनाश गयो, सम्यक प्रकाश-लयो, ज्ञानकला भासी है । अणुव्रत भाव धरें महावृत अंगी करें, श्रेणीधारा चढ़े केई प्रकृत विनासी है ॥ मोहको पसारो डारि

घातियासु कर्म टारि, लोकालोकको निहारि भयो सुखरासी है। सर्वही विनाश कर्म, भयो महादेव पर्म, वंदै भव्य ताहि नित लोक अग्रवासी है ॥ २ ॥

नेकु राग द्वेष जीत भये वीतराग तुम, तीनलोक पूज्यपद येहि त्याग पायो है। यह तो अनूठी वात तुम ही वताय देहु, जानी हम अवहीं सुचित्त ललचायो है ॥ तनिकहू कष्ट नाहिं पाइये अनन्त सुख, अपने सहजमाहिं आप ठहरायो है। यामें कहा लागत है, परसंग त्यागतही, जारि दीजे भ्रम शुद्ध आपुही कहायो है ॥ ३ ॥

वीतराग देव सो तो वसत विदेहक्षेत्र, सिद्ध जो कहावै शिवलोकमध्य लहिये। आचारज उवझाय दुहीमें न कोऊ यहां, साधु जो बताये सो तो दक्षिणमें कहिये ॥ श्रावक पुनीत सोऊ विद्यमान यहां नाहिं, सम्यकके संत कोऊ जीव सरदहिये ॥ शास्त्रकी शरधा तामें बुद्धि अति तुच्छ रही, पंचम समैमें कहो कैसे पंथ गहिये ॥ ३ ॥

तूही वीतराग देव राग द्वेष टारि देख, तूही तो कहावै सिद्ध अष्ट कर्म नासतैं। तूही तो आचारज है आचरै जु पंचाचार, तूही उवझाय जिनवाणीके प्रकाशतैं ॥ परको ममत्त्व त्याग तूहीहै सो ऋषि राय, श्रावक पुनीत व्रत एकादश भासते। सम्यक स्वभाव तेरो शास्त्र पुनि तेरी वाणी, तूही भैया ज्ञानी निज रूपके निवासतें ४ ॥

मात्रिक सवैया.

आलस कहै उद्यम जिन ठानों, सोवहु सदन पिछोरी तान।
काहे रैन दिना शठ धावत, लिख्यो ललाट मिलै सोइ आन ॥
आवत जात मरे जिय केतक, एसेही भेद हिये पहिचान।
तातें इकन्तगहो उरअन्तर, सीख यहै धरिये सुख मान ॥ ५ ॥

उद्यम कहै अरे शठ आलस, तू सरवर क्यों करै हमारि ॥
हम मिथ्यात तजें गहें सम्यक, जो निजरूप महा हितकारि ॥
श्रावक धर्म्म इकादश भेदसों, श्री मुनिपंथ महाव्रत धारि ।
चढ़ गुण थान त्रिलोक ज्ञेय सब, त्यागहिं कर्म वरैं शिवनारि ॥६॥

कवित्त-मनहरन.

मिथ्याभाव नाश होय तबै ज्ञान भास होय, मिथ्याके मिलापसों अशुद्धता अनादिकी । मिथ्याके सँयोग सेती मोक्षको वियोग रहै, मिथ्याके वियोग वात जानें मरजादिकी ॥ मिथ्याकी मगनतासों संकट अनेक सहैं, मिथ्याके मिटाये भव भाँवरि लै वादिकी । ऐसी मिथ्या रीतिकी प्रतीतिको निवारैं संत, करैं निज प्रगट शक्ति तोर कर्मादिकी ॥ ७ ॥

मोहके निवारैं राग द्वेषहू निवारैं जाहिं, राग द्वेष टारैं मोह नेक हू न पाइये । कर्मकी उपाधिके निवारिवेको पेंच यहै, जड़के उखारैं वृक्ष कैसे ठहराइये ॥ डार पात फल फूल सबै कुम्हलाय जाय, कर्मनके वृक्षनको ऐसे के नसाइये । तबै होय चिदानन्द प्रगट प्रकाश रूप, विलसै अनन्त सुख सिद्धमें कहाइये ॥ ८ ॥

जबै चिदानंद निज रूपको संभार देखे, कौन हम कौन कर्म कहांको मिलाप है । रागद्वेष भ्रमने अनादिके भ्रमाये हमें, तातें हम भूल परें लाग्यो पुण्य पाप है ॥ रागद्वेष भ्रम ये सुभाव तो हमारे नाहिं, हम तो अनंत ज्ञान, भानसो प्रताप है । जैसो शिव खेत बसै तैसो ब्रह्म यहां लसै, तिहूं काल शुद्ध रूप 'भैया' निज आप है ॥ ९ ॥

जीव तो अकेलो है त्रिकाल तीनोंलोकमध्य, ज्ञान पुंज प्राण

जाके चेतना सुभाव है। असंख्यात परदेश पूरित प्रमान बन्यो, अपनें सहज माहिं आप ठहराव है॥ राग द्वेष मोह तो सुभाव में न याके कहूं, यह तो विभाव पर संगति मिलाव है। आतम सुभावसों विभावसों अतीत सदा, चिदानन्द चेतवेको ऐसे में उपाव है॥ १०॥

राग द्वेष भ्रम भाव लग्यो है अनादिहीको, जाके परसाद परभावनि बहतु है। बंधत अनेक कर्म्म इनको निमित्त पाय, तिनहीके फल सब यह पै सहतु है॥ चहुंगति चौरासीमें जनम जराके दुःख, मरन मिथ्यात भाव यहै तो लहतु है। याही क्रम काल तो अनन्त बीत गयो तहां, अजहुंलों चिदानंद चेतो न चहतु है॥ ११॥

मिथ्या भाव जालों तोलों भ्रमसों न नातो टूटै, मिथ्याभाव जौलों तौलों कर्म सों न छूटिये। मिथ्याभाव जोलों तोलों सम्यक न ज्ञान होय, मिथ्या भाव जौलों तोलों अरि नाहिं कूटिये॥ मिथ्या भाव जौलों तौलों मोक्षको अभाव रहै, मिथ्या भाव जौलों तौलों परसंग जूटिये। मिथ्याको विनाश होत प्रगटै प्रकाश जोत, सूधौ मोक्ष पंथ सूधै नेकु न अहूटिये॥ १२॥

छप्पय.

ऊरध मध अध लोक, तासुमें एक तिहूं पन।
किसिहि न कोउ सहाय, याहि पुनि नाहिं दुतिय जन॥
जो पूरव कृत कर्म भाव, निज आप बंध किय।
सो दुख सुख द्वयरूप, आय इहि थान उदय दिय॥
तिहि मध्य न कोऊ रख सकति, यथा कर्म विलसंत तिम।
सब जगत जीव जगमें फिरत ज्ञानवंत भाषंत इम॥ १३॥

दोहा.

भैया सुख सागर परखि, निरखि ज्योति निजचन्द ।
मिथ्या नाशन चतुर्दशि, पढ़त वढ़त आनन्द ॥ १४ ॥

इति मिथ्यातविध्वंसनचतुर्दशी ।

अथ जिनगुणमाला लिख्यते.

दोहा.

तीर्थंकर त्रिभुवन तिलक, तारक तरन जिनंद ॥
तास चरन वंदन करौं, मनधर परमानंद ॥ १ ॥
गुण छीयालिस संयुगत, दोप अठारह नाश ॥
ये लक्षण जा देवमें, नित प्रति वंदों तास ॥ २ ॥

चौपई.

दश गुण जासु जनमतैं होय । प्रस्वेदादिक दोप न कोय ॥
निर्मलता मलरहित शरीर । उज्वल रुधिर वरण जिम खीर ॥३॥
वज्र वृपभ नाराच प्रमान । सम सु चतुर संस्थान वखान ॥
शोभन रूप महा दुतिवन्त । परम सुगन्ध शरीर वसंत ॥ ४ ॥
सहस अठोत्तर लच्छन जास । वल अनंत वपु दीखै तास ॥
हितमित वचन सुधासे झरैं । तास चरन भवि वंदन करैं ॥ ५ ॥
दश गुण केवल होत प्रकाश । परम सुभिक्ष चहूं दिश भास ॥
द्वयसौ जोजन मान प्रमान । चलत गगनमें श्रीभगवान ॥ ६ ॥
वपुतैं प्राणि घात नहिं होय । आहारादिक क्रिया न कोय ॥
विन उपसर्ग परम सुखकार । चहुं दिश आनन दीखहिं चार ॥७॥
सव विद्या स्वामी जग वीर । छाया वर्जित जासु शरीर ॥
नख अरु केश वढैं नहिं कहीं । नेत्र पलक पल लागै नहीं ॥ ८ ॥

चौदह गुण देवन कृत होय। सर्व मागधी भाषा सोय॥
मैत्री भाव जीव सब धरैं। सर्वकाल तरु फूल न फरैं॥ ९॥
दर्पणवत निर्मल है मही। समवशरण जिन आगम कही॥
शुद्ध गंध दक्षिण चल पौन। सर्व जीव आनँद अनुभौन॥ १०॥
धूलिरु कंटक वर्जित भूमि। गंधोदक वरषत है झूमि॥
पद्म ऊपरि नित चलत जिनेश। सर्व नाज उपजहि चहुं देश॥११
निर्मल होय अकाश विशेष। निर्मल दशा धरतु है भेष॥
धर्म चक्र जिन आगें चलै। मंगल अष्ट पाप तम दलै॥१२॥
प्राति हार्य्य वसु आनँदकंद। वृक्ष अशोक हरै दुख द्वंद॥
पुहुप वृष्टि शिव सुखदातार। दिव्य ध्वनि जिन जैं जैं कार॥१३
चौसठ चवर ढरहिं चहुंओर। सेवहिं इंद्र मेघ जिम मोर॥
सिंहासन शोभन दुतिवंत। भामंडल छवि अधिक दिपंत॥
वेदी माहिं अधिक दुति धरै। दुंदुभि जरा मरण दुख हरै॥
तीन छत्र त्रिभुवन जयकार। समवशरणको यह अधिकार॥१५

दोहा.

ज्ञान अनँत मय आतमा, दर्शन जासु अनंत॥
सुख अरु वीर्य अनंत बल, सो वंदौं भगवंत॥ १६॥
इन छ्यालीसन गुणसहित, वर्त्तमान जिनदेव॥
दोष अठारह नाशतैं, करहिं भविक नितसेव॥ १७॥

चौपाई.

क्षुधा त्रिषा न भयाकुलजास। जनम न मरन जरादिक नाश॥
इन्द्रीविषय विषाद न होय। विस्मय आठ मदहि नहिं कोय॥१८॥
रागरु दोष मोह नहि रंच। चिंता श्रम निद्रा नहि पंच॥
रोग विना पर स्वेद न दीस। इन दूषन विन है जगदीश॥ १९॥

दोहा.

गुण अनंत भगवन्तके, निहचै रूप बखान ॥
ये कहिये व्यवहारके, भविक, लेहु उर आन ॥ २० ॥
'भैया' निजपद निरखतैं, दुविधा रहै न कोय ॥
श्रीजिनगुणकी मालिका, पढैं परम सुख होय ॥ २१ ॥

इति श्रीजिनगुणमालिका.

अथसिज्झाय लिख्यते.

करखा छंद.

जहँ कर्मके वंश,सौं अंश नहिं लसै, सिद्ध सम आतमा ब्रह्म ज्ञानी ॥
मोह मिथ्यात्वमद,पान दूरहिं नशै, राग अरुद्वेषहू जास थानी॥१॥
नहि क्रोध नहिंमान थानभासैं कहूं,माय नहिं लोभ जहँ दूरदीखै चहूं।
प्रकृति परद्रव्यकी सर्व मानी,भली सिद्ध समआतमा ब्रह्म ज्ञानी॥२॥
जामैं ज्ञान अरु दर्श चारित्त गुणराजही, शकति अनंत सबै भुवछाजही ॥ परम पद पेख निजराजधानी, सिद्ध समआत्मा ब्रह्म ज्ञानी ॥ ३ ॥ अतीत अनागत वर्त्तमानहिं जिते, दरब गुण परजय सर्व भासहिं तिते ॥ शुद्ध नय सिद्ध जिम जानिप्रानी, सिद्ध सम आत्मा ब्रह्म ज्ञानी ॥ ४ ॥

अथ पंचपरमेष्ठिनमस्कार।

दोहा.

प्रातसमय श्रीपंच पद, वंदन कीजे नित्त ॥
भाव भगति उर आनिकै, निश्चय कर निजचित्त ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा.

प्रातहिं उठि जिनवर प्रणमीजे। भावसहित श्रीसिद्ध नमीजे ॥
आचारज पद वंदन कीजे। श्री उवझाय चरण चितदीजे॥२॥

साधु तणा गुण मन आणीजै । पटद्रव्य भेद भला जानीजैं ॥
श्रीजिनवचन अमृतरस पीजै । सब जीवनकी रक्षा कीजैं ॥ ३॥
लग्यो अनादि मिथ्यात्व वमीजे । त्रिभुवन माही जिम न पसीजैं ॥
पाचौं इन्द्री प्रवल दमीजै । निज आतम रस माहि रमीजैं॥४॥
परगुण त्याग दान नित कीजै । शुद्ध स्वभाव शील पालीजैं ॥
अष्ट करम तज तप यह कीजैं । शुद्धस्वभाव मोक्ष पामीजैं ॥५॥

दोहा.

इहविधि श्रीजिन चरण नित, जो वंदत धर भाव ॥
ते पावहिं सुख शास्वते, 'भैया' सुगम उपाव ॥ ६ ॥

इति पंचपरमेष्ठि नमस्कार.

अथ गुणमंजरी लिख्यते.

दोहा.

परम पंच परमेष्ठिको, वंदौं सीस नवाय ॥
जस प्रसाद गुण मंजरी, कहूं कथन गुणगाय ॥ १ ॥
ज्ञान रूप तरु ऊगियो, सम्यकधरतीमाहिं ॥
दर्शन दृढ शाखासहित, चारित दल लहकाहिं ॥ २ ॥
लगी ताहि गुण मंजरी, जस स्वभाव चहुं ओर ॥
प्रगटी महिमा ज्ञानमें, फल है अनुक्रम जोर ॥ ३ ॥
जैसें वृक्ष रसालके, पहिले मंजरी होय ॥
तैसें ज्ञान तमालके, गुणमंजरिका जोय ॥ ४ ॥
दया सुवत्सल सुजनता, आतम निंदा रीति ॥
समता भक्ति विरागविधि, धर्म रागसों प्रीति ॥ ५ ॥
मनप्रभावना भाव अति, त्याग न ग्रहन विवेक ॥
धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी अनेक ॥ ६ ॥

तिनके लच्छन गुण कहूं, जिन आगम परमान ॥
इह क्रम शिव फल लागि हैं, देख्यो श्री भगवान ॥ ७ ॥

चौपाई.

दया कही द्वय भेद प्रकाश। निजपरलच्छन कहूं विकाश ॥
प्रथम कहूं निज दया वखान। जिहमें सब आतम रस जान ॥८॥
शुद्ध स्वरूप विचारहिं चित्त। सिद्ध समान निहारहिं नित्त ॥
थिरता धर आतमपदमाहिं। विषयसुखनकी वांछा नाहिं॥९॥
रहैं सदा निजरसमें लीन। सो चेतन निजदया प्रवीन ॥
अब दूजो परदया विचार। जो जानै सगरो संसार ॥ १० ॥
छहों कायकी रक्षा होय। दयाशिरोमणि कहिये सोय ॥
पृथिवी अप तेऊ अरु वाय। वनस्पती त्रिस भेद कहाय ॥११
मन वच काय विराधै नाहि। सो परदया जिनागममाहिं ॥
अव्रतमें भावनितैं टलै। यथाशक्ति कछु दर्वित पलै॥१२
ज्यों कषायकी मंदित ज्योत। त्यों त्यों दया अधिक तिहँ होत॥
त्रसकी रक्षा निश्चय करै। देशविरत थावर कछु टरै॥१३॥
सर्वदया छट्टे गुणथान। आगें ध्यान कह्यो भगवान ॥
और कहूं परदया वखान। ताके लक्षण लेहु पिछान॥ १४
कष्टित देख अन्य जियकोय। जाके हिरदै करुणा होय ॥
शक्ति समान करै उपकार। सो परदया कही संसार ॥१५॥

दोहा.

कही दया द्वय भेदसों, थोरेमें समुझाय ॥
याके भेद अपार हैं, जानै श्रीजिनराय ॥ १६ ॥
अब वत्सलता गुण कहूं, जो रुचिवंत सदीव ॥
लग्यो रहै जिनधर्ममें, सो सम दृष्टी जीव ॥ १७ ॥

चौपाई.

जैसें बच्छा चूंघै गाय। तैसें जिनवृष याहि सुहाय॥
लग्यो रहै निशदिन तिहँ माहिं। और काजपर मनसा नाहिं१८
सुनै जिनागमके विरतंत। त्यौंत्यों सुख तिहँ होत महंत॥
जो देख्यो केवल भगवान। सो निहचै याकै परमान॥१९॥
द्वादश अंग प्ररूपहि जोय। सो याके घट अविचल होय॥
रहै सदा जिनमतको ध्यान। सो वत्सलता गुण परमान २०
अब तीजी सज्जनता कहूं। जाके भेद यथारथ लहूं॥
देखै जो जिनधर्मी जीव। ताकी संगति करै सदीव॥२१॥
सब प्राणीपर सज्जन भाव। मित्र समान करै चित चाव॥
जहां सुनै जिनधर्मी कोय। तहँ रोमांचित हुलसित होय॥
देखत ही मन लहै अनंद। सो सज्जनता है गुणवृंद॥
अब अपनी निंदा अधिकार। कहूं जिनागमके अनुसार॥२३॥
जब जिय करै विषयसुख भोग। निंदित ताहि रहै उपयोग॥
अघकी रीति करै जिय जहां। भ्रष्टित रहै रैन दिन तहां॥२४
देह कुटुंबादिकसे नेह। जब है तब निंदै निज देह॥
व्रत पचखान करै नहिं रंच। तब कहै रे मूरख तिरजंच॥२५॥
जब कहू जियको हिंसा होय। तव धिकार करै निज सोय॥
जब परिणाम बहिर्मुख जाय। तब निज निंदा करै सुभाय२६
इहविधि निज निंदहि जे जीव। ते जिन धर्मी कहे सदीव॥
धर्म विषै उद्यम नहिं होय। तब निज निंदहिं धर्मी सोय॥

दोहा.

आतमनिंदा पाठ इम। करत भविक निशदीस॥
अब समता लक्षण कहूं। जो भाषित जगदीश॥ २८॥

चौपाई.

समताभाव धरहि उरमाहिं। वैर भाव काहूसों नाहिं ॥
निज समान जाने सव हंस। क्रोधादिक तव करै विध्वंस ॥२९॥
उत्तम क्षमा धरहि उर आन। सुखदुख दुहुमें एकहि वांन ॥
जो कोउ क्रोध करै इह आय। तवहू याके समता भाय ॥३०॥
उपजैं क्रोध कषाय कदाच। तव तहँ रहै आपसों राच ॥
सो समतादिक लच्छन जान। थोरेमें कछु कह्यो वखान ॥३१॥
अव कहुं भगति भाव जो होय। सेवहि पंच पदहिं नित सोय ॥
देव गुरू जिन आगम सार। इनकी भक्ति रहै निरधार ॥३२॥
जिनप्रतिमा जिन सरखी जान। पूजैं भाव भगति उर आन ॥
साधर्मी जिय देखैं कोय। ताकी भगति करै पुनि सोय ३३
जामहिं गुण देखैं अधिकाय। ताकी भगति करहि मन लाय ॥
भक्ति भावतैं नाहिं अघाय। समदृष्टीको यहै स्वभाय ॥३४॥
अव कहुं गुण वैराग वखान। उदासीन सवसों तिहँ जान ॥
जोपैं रहै गृहस्थावास। तोहू मन तिह रहै उदास ॥३५॥
जानैं कवहूं चारित लेउँ। परिग्रह सवै त्यागकर देउँ ॥
क्षणभंगुर देखहि संसार। तातैं राग तजै निरधार ॥ ३६ ॥
निजशरीर विपलेपण करै। अशुचि देख ममता परिहरै ॥
यह जड़मय चेतन सरवंग। कैसैं राग करूं इहि संग ॥३७॥
मन लाग्यो आतम रस माहिं। तातैं वैरवासना नाहिं ॥
इम वैराग्य धरहिं जे संत। ते समदृष्टि कहै सिद्धंत ॥३८॥
अव कहुं धर्मरागकी वात। समदृष्टी जिय सवै सुहात ॥
पंच परम परमेष्ठी जान। तिनमें राग धरहिं उर आन ॥३९॥

(१) आदत. (२) सहधर्मी (३-४) सम्यग्दृष्टि.

जिन आगम जो कह्यो सिधंत । तिनपै राग धरत हैं संत ॥
ज्यों देखहि जिनधर्म उद्योत । त्यों तिहिं राग महा उर होत ४०
जहां सुनै जिनधर्मी कोय । तिहिं मिलिवेकी इच्छा होय ॥
धर्म राग धर्मीपै जोय । सम्यक लच्छन कहिये सोय ४१

दोहा.

कही आठ गुणमंजरी, सम्यक लक्षण जान ॥
पंच भेद पुनि और है, तेहू कहूं वखान ॥ ४२ ॥
मन प्रभावना भाव धर, हेय उपादेय वंत ॥
धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी वृतंत ॥ ४३ ॥

चौपाई.

चित प्रभावना भावहिं धरै । किहि विधि जैनधर्म विस्तरै ॥
संघ चलावहि खरचै दाम । प्रगट करै जिन शासननाम ४४
जिनमंदिरकी रचना करै । तामें विंव अनोपम धरै ॥
करै प्रतिष्ठा विविध प्रकार । सो जिनधर्मी चित्त उदार ॥४५॥
साधू साध्वी श्रावक वर्ग । इनके दूर करहिं उपसर्ग ॥
पोषै संघ चतुर्विधि जान । सो जिनधर्मी कहे वखान ॥४६॥
इह विधि करै उद्योत अनेक । जाके हिरदै परम विवेक ॥
जिनशासनकी महिमा होय । नितप्रति काज करत है सोय ४७
जव कोउ जीव महाव्रत धरै । ताके तहां महोत्सव करै ॥
खरचहि द्रव्य देय वहु दान । सो प्रभावना अंग वखान ॥४८॥
अव कहुं हेय उपादेय भेद । जाके लखे मिटै सव खेद ॥
प्रथमहिं हेय कहतहूँ सोय । जामे त्याग कर्मको होय ॥४९॥
पुद्गल त्याग योग्य सव तोहि । इनकी संगति मगन न होहि ॥
ऐसें जो वरतै परिणाम । हेय कहत है ताको नाम ॥५०॥

अब कहुं उपादेयकी वात । जामैं ग्रहण अर्थ विख्यात ॥
निज स्वरूप जो आतमराम । चिदानंद है ताको नाम ॥५१॥
ज्ञान दरश चारित भंडार । परमधरम धन धारन हार ॥
निराकार निरभय निरस्प । सो अविनाशी ब्रह्म स्वरूप ५२
ताकी महिमा जानहिं संत । जाकी सकति अपार अनंत ॥
ताहि उपादेय जानहिं जोय । सम्यकदृष्टी कहिये सोय ॥५३॥
निज स्वरूप जो ग्रहण करेय । परसत्ता सब त्यागे देय ॥
ऐसे भाव धरहि जो कोय । हेय उपादेय कहिये सोय ॥५४॥
अब धीरज गुण कहूं बखान । जिनके ते सम दृष्टी जान ॥
धर्मविषै जो धीरज धरै । कष्टदेख सरधा नहि टरै ॥५५॥
सहै उपसर्ग अनेक प्रकार । सबहू धीरज है निरधार ॥
मिथ्यामत जो देखै कोय । चमत्कार तामें बहु होय ॥५६॥
तबहू ताहि लखहि अज्ञान । सो धीरजधर सम्यकवान ॥
अब कहुं हरष गुणहिं समुझाय । समदृष्टी यह सहज सुभाय॥५७॥
निज स्वरूप निरखहिं जो कोय । ताके हर्ष महा उर होय ॥
सुख अनंतको पायो ईस । तिहँ निरखै हरषै निसदीस॥५८॥
छहों द्रव्यके गुण परजाय । जाने जिन आगम सुपसाय[1] ॥
निज निरखै सु विनाशी नाहिं । यातैं हर्ष महा उर माहिं ॥५९॥
तीर्थंकर देवनके देव । ताकी प्रभुताके सब भेव ॥
अनँत चतुष्टय आदि विचार । हर्षै ते निज माहिं निहार॥६०॥
जन्म जरादिक दुख बहु जान । तिहतैं भिन्न अपनपो मान ॥
सिद्धसमान विचारहि चित्त । तातैं हर्ष महा उर नित्त ॥६१॥
अब गुण कहूं प्रवीन बखान । जिनके ते समदृष्टी मान ॥
स्वपरविवेकी परम सुजान । प्रगट्यो बोध महा परधान ॥६२॥

१ सुप्रशाद.

जानन लाग्यो सब विरतंत । जैसो कछु देख्यो भगवंत ॥
जिन आगमके वचन प्रमान । तामहिं बुद्धि अहै परधान ॥६३॥
धर्म महागुण जाके होय । तातैं निपुण न दूजो कोय ॥
जाके हृदय भयो परकाश । ताकी कुमति गई सब नाश ॥६४॥
चौदह विद्यामें जो आदि । ब्रह्मज्ञान सो कह्यो मरजाद ॥
तातैं जो परवीन प्रधान । सो समदृष्टीविन नहिं आन ६५
मिथ्याती जिय भ्रममें रहै । सो प्रवीनता कैसें गहै ॥
तातैं कथा यहै परमान । है प्रवीन जिय सम्यकवान ॥६६॥
इहि विधि मंजरी लगी अनेक । ज्ञानवंत धर देख विवेक ॥
जैसें द्रुम शोभै सहकार । तैसें ज्ञान गुणनके भार ॥६७॥
यातैं प्रथम मंजरिका कही । इहि द्रुम शिवफल लागहि सही ॥
जाके घट समकित परकाश । ताके ये गुन होंहि निवास ॥६८॥
सम्यगदर्श लहै जो जीव । सो शिवरूपी कह्यो सदीव ॥
तातैं सम्यक ज्ञान प्रमान । जातें शिवफल होय निदान ६९

दोहा.

कही ज्ञानगुण मंजरी, जिनमतके अनुसार ॥
जो समुझहिं ओ सरदहैं, ते पावहिं भवपार ॥ ७० ॥
यामें निज आतम कथा, आतमगुण विस्तार ॥
तातैं याहि निहारिये, लहिये आतम सार ॥ ७१ ॥
जो गुण सिद्ध महंतके, ते गुण निजमाहिं जान ॥
भैया निश्चय निरखतें, फेर रंच जिनमान ॥ ७२ ॥
सत्रहसो चालीसके, उत्तम माघ हिमंत ॥
आदि पक्ष दशमी सुदिन, मंगल कह्यो सिद्धंत ॥ ७३ ॥

इति गुणमंजरिका.

अथ लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथन लिख्यते ।

चौपाई.

प्रणमूं परमदेवके पाय । मन वच भावसहित शिर नाय ॥
लोक क्षेत्रकी गिनती कहूं । राजू भेद जहाँतैं लहूं ॥ १ ॥
घनाकार सब कह्यो वखान । त्रयशत अरु तेतालिस मान ॥
ताके भेद कहूं समुझाय । श्री जिन आगमके जु पसाय[1]॥२॥
सिद्ध शिलातक गिनती करी । ऊपरिकी हद इह संग धरी ॥
अहमिंदर नवग्रीव विमान । तिहँ ऊपरके सवही जान ॥ ३ ॥
राजू ग्यारह घन आकार । देख्यो जिनवर ज्ञानमझार ॥
ताके तरहिं सुरग वसु जान । द्विक चतुकी संख्या उर आन॥४
ऊपरितें तरको इग देहु । गनती भेद समझ कर लेहु ॥
साढे अठ रज्जू द्विक एक । घनाकार सब लहहु विशेक॥५॥
दूजो द्विक साढे दश होय । तीजो साढे वारह सोय ॥
चौथो साढे चउदह कह्यो । द्विक चतु भेद जिनागम लह्यो ६
द्व द्विक और कहूं विस्तार । ते राजू तेतीस निहार ॥
साढे शोरह इक इक जान । इम तेतीस दुहूं द्विक मान ॥ ७ ॥
सनत्कुमार महेन्द्र सुदीस । इन दुहुके साढे सैंतीस ॥
अव सुधर्म ईशान विमान । तिर्यक् लोक याहि महिजान ॥८॥
मेरु चूलिकातें गन लही । राजू साढे उनइस कही ॥
सव गिनती ऊपरकी दीस । राजू इक सो सैंतालीस ॥ ९ ॥
अव नीचें कहुं क्रमसें गुनो । जाके भेद जथारथ सुणो ॥
मेरू तलवासें गण लेह । सात नरकको वरणन जेह॥ १० ॥

---

(१) प्रसादसे.

पहिली रतनप्रभा ते जान। दशराजू तिह कही वखान ॥
दूजी शोलह राजू कही। तीजी नरक वीसद्वं लही ॥११॥
चौथी नरक अठाइस राजु। तिह निकस्यो जिय सारे काजु ॥
पंचमि नरक राजु चौतीश। छट्टी चालिस कही जगदीश ॥१२
नरक सातवींकी मरजाद। कही छियालिस कथन अनाद ॥
लोक अन्त सवतैं जो तरैं। सो सव नर्क सातवीं धरैं ॥ १३॥
सात नरककी गिनती जान। शतइक और छयानवें मान ॥
सव राजू देखे जगदीस। भये तीनसैं तैंतालीस ॥ १४ ॥
घनाकार सव भुवनहिं जान। ऊंचौ राजू चवदह मान ॥
सागर स्वयंभुरमणहिं जोय। तिहँवानहि राजूइक होय ॥१५॥
पुरुषाकार कह्यो सव लोक। ताके परैं सु और अलोक ॥
इहि मधि त्रसनाड़ी इक जान। ताके भेद कहूं उर आन ॥१६॥
चवदह राजू कही उतंग। राजू इक पोली सरवंग ॥
तामहिं त्रसथावरको थान। याके परैं सु थावर मान ॥१७॥
इहविधि कही जिनागम भाख। ग्रंथ त्रिलोकसारकी साख ॥
धर्म ध्यानको जानहु भेद। चर्ण चतुर्थ लखहु विन खेद॥१८
इतनो है यो लोकाकाश। छहों दरवको यामैं वास ॥
चेतन ज्ञान दरश गुण धरै। और पंथ जड़ता अनुसरै ॥१९॥
रहै सदा इहि लोकमझार। तू 'भैया' निजरूप निहार ॥
सत्रहसौ चालीसै सही। पौष सुदी पूनम रवि कही ॥ २० ॥

इति लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथनं ॥

अथ मधुविन्दुककी चौपाई लिख्यते ।

दोहा.

वंदों जिनवर जगत गुरु, वंदों सिद्ध महंत ॥
वंदों साधू पुरुष सब, वंदों शुद्ध सिद्धंत ॥ १ ॥
मधु विंदुककी चौपई, कहूं ग्रन्थ अनुसार ॥
दुख अरु सुखके उदधिको, लहिये पारावार ॥ २ ॥
काल अनादि गयो इहां, वसत यही जगमाहिं ॥
दुख अरु सुखसों भिन्नता, जानी कवहूं नाहिं ॥ ३ ॥
विषयसुखनको सुख लख्यो, तिहँ दुख लह्यो अपार ॥
सो जानैं जिन केवली, हैं अनंत विस्तार ॥ ४ ॥

चौपाई.

इक दिन भविजन मिले सुभाय। आवत देख्यो श्रीमुनिराय ॥
अट्ठाईश मूल गुण धँरै । तास चरण भवि वंदन करैं ॥५॥
विनती करहि दूहूंकर जोर । हे प्रभु भवबंधनतैं छोर ॥
तव मुनिराज धरमहित जान। जिन आगम कछु कहहिं वखान ६

दोहा.

भविक सुनहु उपदेश तुम, मन वच दृढकर काय ॥
ज्यों पावहु निज सम्पदा, संशय वेग विलाय ॥ ७ ॥
इक दृष्टांत विचारिकैं, कहैं सुगुरु उपदेश ॥
सुनहु भविक थिरतासहित, तज अज्ञान कलेश ॥ ८ ॥

चौपाई.

एक पुरुष वन भूल्यो परयो । ढूंढत ढूंढत सब निशि फिरयो ॥
चहुं दिश अटवी झंझाकार । हीड़त कहुं नहिं पावै पार ॥ ९ ॥

महा भयानक सब वनराय। भटकत फिरै कछू न वसाय ॥
जित देखहि क्षित कानन जोर। पर्‌यो महा संकट तिहँ घोर॥१०
सोचत वाघ सिंह जिनै खाय। जिनै कहुं वैरी पकर न जाय ॥
इहि विधि दुखित महावन धाय। तिहँ थानक गज निकस्यो आय ११
ताकी दृष्टि पर्‌यो नर जहां। ता पकरन गज दोर्‌यो तहां ॥
यह भाग्यो आगेंको जाय। पाछैं गज आवत है धाय ॥ १२ ॥
जो यह देखै दृष्टि निहार। यह तो रह्यो डगन द्वै चार ॥
अब मैं भागि कहां लौं जाउँ। देख्यो कूप एक तिहँ ठाउँ ॥१३॥
पर्‌यो कूप मधि यहै विचार। गज पकरै तो डारै मार ॥
कूप मध्य बड़ ऊग्यो एक। ताकी शाखा फली अनेक॥१४॥
तामहिं मधुमक्षिनको थान। छत्ता एक लग्यो पहचान ॥
बरकी जटा लटकि तहँ रही। कूप मध्य गिरते कर गही ॥१५॥
दोउकर पकर रह्यो तिहँ जोर। नीचें देखै दृष्टि मरोर ॥
कूप मध्य अजगर विकराल। मुह फारे वैठ्यो जिम काल॥१६॥
वह निरखहि आवै मुख मांहि। तो फिर भाजि कहां लौं जाहि॥
चार कौनमें नाग जु चार। बैठे तहां तेहु मुखफार॥ १७ ॥
कब यह नर गिर है इह ठौर। गिरतें याको कीजे कौर ॥
नीचें पंच सर्प लखि डर्‌यो। तब ऊपरको मस्तक कर्‌यो॥१८॥
देखै बटकी जटैं कहँ दोय। ऊंदेंरजुग काटत है सोय ॥
इक उज्वल इक श्याम शरीर। काटहि जटा नही तिहँ पीर॥१९॥
कूप कंठ गज शुंड प्रकार। झकझोरै वरकी वहु डार ॥
पकर निशुंड चलावै ताहि। यह तो रह्यो दूर द्रुम साहि॥२०॥

(१-२) मत ३. जटा. ४ दो चूहे.

वरकी शाखा हाली सवै । मधुकी वूंद गिरी इक तवै ॥
इह राख्यो तवहीं मुखफार । आवत ग्रहण करी निरधार॥२१॥
झकझोरत माखी उड़ि जेह । आय लगी सव याकी देह ॥
काँटे तन पै वेदै नाहिं । मन लाग्यो मधु छत्ता माहिं॥२२॥
एक वूंद जव मुख महिं परै । तव दूजीपैं मनसा करै ॥
लगी दृष्टि छत्तासों जाय । दुखसंकटसों नहिं अकुलाय २३

सोरठा.

तव तिहँ थानक कोय, विद्याधर आकाशमें ॥
जाहिं पुरुष तिय दोय, वैठे निजहि विमानमें ॥ २४ ॥
तिय निरख्यों तिहँ वार, कोउ पुरुष संकट पर्यो ॥
हे पिय ! दुखहिं निवार, निराधार नर कूपमें ॥ २५ ॥
दुख अपार अति घोर, पर्यो पुरुष संकट सहै ॥
कछु न चलत है जोर, हे प्रभु याहि निवारिये ॥ २६ ॥
कहै विद्याधर वैन, सुनहु प्रिया तुम सत्य यह ॥
यह मानें इत चैन, निकसनको क्योंही नही ॥ २७ ॥

दोहा.

प्रिया कहै प्रियतम सुनो, किहँ सुख मान्यो चैन ।
यह अटवी यह कूप गज, अहि मखि मूसा ऐन ॥ २८ ॥
कहै विद्याधर प्रिये सुनो, मधु विंदव रस लीन ॥
यह सुख मान रच्यो यहां, दुख अंगीकृत कीन ॥ २९ ॥
ए सव दुखहिं विचारके, मधुविंदवके स्वाद ॥
लग्यो मूढ संकट सहै, कहिवो सवही वाद ॥ ३० ॥
चतुर प्रिया कहै सुनहु प्रिय, ऐसी कवहुँ न होय ॥
एते संकट जो सहै, सो सुख मानै कोय ॥ ३१ ॥

तातैं याको काढियें, कहै तिया समुझाय ॥
विद्याधर कहै हट तजहु, पंथ अकारथ जाय ॥ ३२ ॥
तीय कहै चलवो नहीं, इहि विन काढे आज ॥
स्वामि वडो उपकार है, कीजे उत्तम काज ॥ ३३ ॥
तिय हटविद्याधर तहां, उतरयो निजहिं विमान ॥
आय कह्यो तिहँ नर प्रतैं, निकसि निकसि अज्ञान ॥३४॥
आवे तो हम वांह गहि, तोकों लेय निकासि ॥
निज विमान वैठायकें, पहुंचावें तो वास ॥ ३५ ॥

चौपाई.

ऐसे वचन सुनत निज कान। वोलै पुरुष सुनहु हितवान ॥
एक वूंद छत्तासो खिरै। सो अवके मेरे मुख गिरै ॥ ३६॥
ताको अवहीं चख सरवंग। तव मैं चलूं तुमारे संग ॥
जव वह वूंद परी मुख माहिं। तव दूजीपर मन ललचाहिं॥३७॥
अव यह जो आवैगी सही। तो चलहूं कछु धोको नही ॥
दूजी वूंद परी मुख जान। तव तीजीपर करी पिछान॥३८॥
इह विधि वूंद स्वादके काज। लाग रह्यो नहिं कछू इलाज ॥
विद्याधर दै हाँक पुकार। निकसै नहीं चल्यो तव हार॥३९॥
आय विमान भयो असवार। निज थानक पहुंच्यो तिहँवार ॥
तवही भवि मुनिके नमि पांय। कहा कही प्रभु कह समुझाय ४०
हम नहिं समुझे यह दृष्टांत। कहहु प्रगट प्रभु सव विरतांत॥
को नर को गज को वनकूप। को अहि को वट जटा अनूप॥४१॥
को ऊंदर को मधुकी वुंद। को माखी जो दे दुखदुंद ॥
कौन विद्याधर कहो समुझाय। जातैं सव संशय मिट जाय॥४२॥

(१) हितैषी.

दोहा.

तव मुनिवर दृष्टांत विधि, कहैं भविक समुझाय ॥
सावधान ह्वै सुनहु तुम, कहूं कथन गुणगाय ॥ ४३ ॥

चौपाई.

यह संसार महा वन जान । तामहिं भवभ्रम कूप समान ॥
गज जिम काल फिरत निशदीस । तिहँ पकरन कहूं विस्वावीस ४४
वटकी जटा लटकि जो रही । सो आवर्दा जिनवर कही ॥
तिहँ जर काटत मूंसा दोय । दिन अरु रैन लखहु तुमसोय ४५
मांखी चूंटत ताहि शरीर । सो वहुरोगा दिककी पीर ॥
अजगर परयो कूपके वीच । सो निगोद सवतैं गतिनीच ॥४६॥
याकी कछु मरजादा नाहिं । काल अनादि रहै इह माहिं ॥
तातैं भिन्न कही इहि ठौर । चहुं गति महितैं भिन्न न और ४७
चहुं दिश चारहु महा भुजंग । सो गति चार कही सरवंग ॥
मधुकी वूंद विषै सुख जान ।जिहँ सुख काजरह्यो हितमान४८
ज्यों नर त्यों विषयाश्रित जीव । इह विधि संकट सहै सदीव ॥
विद्याधर तहँ सुगुरु समान । दै उपदेश सुनावत कान ॥४९॥
आवहु तुमहिं निकाशहिं वीर । दूर करहिं दुख संकट भीर ॥
तवहू मूरख मानै नाहिं । मधुकी वूंदविषै ललचाहिं ५०
इतनो दुख संकट सह रहै । सुगुरुवचन सुन तज्यो न चहै॥
तैसैं ज्ञानहीन जियवंत । ए दुख संकट सहै अनंत ॥५१॥
विषै सुखन मधुविंदव काज । मानत नाहिं वचन जिनराज ॥
सहत महा दुख संकट घोर ।निकस न चलत वधू शिवओर ५२

जिहँ थानक सुख सागर भरे । काल अनंतहु विलसहु खरे ॥
जन्मजरादिक दुख मिट जाय । प्रगटै परमधरम अधिकाय॥५३॥
वहुरन कवहू संकट होय । सुख अनंत विलसहु भ्रुवसोय ॥
यह उपदेश कहै मुनिराज ।भव्य जीव चेतहु निजकाज॥५४॥

दोहा.

सुनके वचन मुनीन्द्रके, भवि चिंतै मन माहिं ॥
विषयसुखनसों मगनता, कवहूं कीजे नाहि ॥ ५५ ॥
विषयसुखनकी मगनसों, ये दुख होंहिं अपार ॥
तातैं विषय विहंडिये, मन वच क्रम निरधार ॥ ५६ ॥
यह विचार कर भविकजन, वंदत मुनिके पाय ॥
धन्य धन्य तारन तरन, जिन यह पंथ वताय ॥ ५७ ॥
एतो दुख संसारमें, एतो सुख सव जान ॥
इम लखि भैया चेतिये, सुगुरु वचन उरआन ॥ ५८ ॥
सत्रहसौ चालीसके, मारगसिर शित पक्ष ॥
तिथि द्वादशी सुहावनी, भोमवार परतक्ष ॥ ५९ ॥
मधुविंदवकी चौपई, कही ग्रंथ अनुसार ॥
जे समुझै वा सरदहै, ते पावहिं भवपार ॥ ६० ॥

इति मधुविंदवकी चौपई.

अथ सिद्धचतुर्दशी लिख्यते ।

दोहा.

परमदेव परणाम कर, परम सुगुरु आराध ॥
परम ब्रह्म महिमा कहूं, परम धरम गुण साध ॥ १ ॥

कवित्त.

आतम अनोपम है दीसै राग द्वेष विना, देखो भव्यजीव! तुम आपमें निहारकैं। कर्मको न अंश कोऊ भर्म को न वंश कोऊ, जाकी सुद्धताई मैं न और आप टारकैं॥ जैसो शिव खते वसै तेसो ब्रह्म इहां लसै, इहां उहां फेर नाहि देखिये विचारकैं। जेई गु- सिद्धमाहि तेई गुण ब्रह्मपांहि, सिद्ध ब्रह्म फेर नाहिं निश्च- य निरधारकैं॥ २॥ सिद्धकी समान है विराजमान चिदानंद ताहीको निहार निजरूप मान लीजिये। कर्मको कलंक अंग पंक ज्यों पखार हर्यो, धार निजरूप परभाव त्याग दीजिये॥ थिरताके सुखको अभ्यास कीजे रैन दिना, अनुभोके रसको सु- धार भले पीजिये। ज्ञानको प्रकाश भास मित्रकी समान दीसै, चित्र ज्यों निहार चित ध्यान ऐसो कीजिये॥ ३॥ भाव कर्म नाम रागद्वेषको बखान्यो जिन, जाको करतार जीव भर्म संग मानिये। द्रव्यकर्म नाम अष्टकर्मको शरीर कह्यो, ज्ञानावर्णी आदि सब भेद भलैं जानिये। नो करम संज्ञातैं शरीर तीन पावत है, औदारिक वैक्रीय आहारक प्रमानिये॥ अंतरालसमै जो अ- हार विना रहै जीव, नो करम तहां नाहि याहीतैं बखानिये॥४॥

सवैया.

लोपहि कर्म हरै दुख भर्म सुधर्म सदा निजरूप निहारो।
ज्ञानप्रकाश भयो अघनाश, मिथ्यात्व महातम मोह न हारो॥
चेतनरूप लखो निजमूरत, सूरत सिद्धसमान विचारो।
ज्ञान अनंत वहै भगवंत, वसै अरि पंकतिसों नित न्यारो॥५॥

छप्पय छंद.

त्रिविधि कर्मतैं भिन्न, भिन्न पररूप परसतैं ॥
विविधि जगतके चिह्न, लखै निज ज्ञान दरसतैं ॥
वसै आपथल माँहिं, सिद्ध समसिद्ध विराजहि ।
प्रगटहि परम स्वरूप, ताहि उपमा सव छाजहि ॥
इह विधि अनेक गुणब्रह्ममहिं, चेतनता निर्मल लसै ॥
तस पद त्रिकाल वंदत भविक', शुद्ध स्वभावहि नित वसै ॥६॥
अष्टकर्मतैं रहित, सहित निज ज्ञान प्राण धर ॥
चिदानंद भगवान, बसत तिहुं लोक शीसपर ॥
विलसत सुखजु अनंत, संत ताको नित ध्यावहि ॥
वेदहि ताहि समान, आयु घट माँहिं लखावहि ॥
इमध्यान करहि निर्मल निरखि, गुणअनंत प्रगटहिं सरव ॥
तस पद त्रिकाल वंदत भविक,' शुद्ध सिद्ध आतम दरव ॥७॥
ज्ञान उदित गुण उदित, मुदित भई कर्म कषायें ।
प्रगटत पर्म स्वरूप, ताहिं निज लेत लखायें ॥
देत परिग्रह त्याग, हेत निहचै निज मानत ।
जानत सिद्ध समान, ताहि उर अंतर ठानत ॥
सो अविनाशी अविचल दरव, सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम ।
निर्मल विशुद्ध शास्वत सुथिर, चिदानंद चेतन धरम ॥८॥

कवित्त.

अरे मतवारे जीव जिन मतवारे होहु, जिनमत आन गहो जिनमत छोरकैं । धरम न ध्यान गहो धरमन ध्यान गहो, धरम स्वभाव लहो, शकति सुफोरकैं ॥ परसों सनेहकरो, परम सनेह

करो, प्रगट गुण गेह करो मोहदल मोरकैं। अष्टा दशदोप हरो, अष्ट कर्म नाश करो, अष्ट गुण भास करो, कहूं कर जोरकैं ॥९॥

वर्णमें न ज्ञान नहि ज्ञान रस पंचनमें, फर्समें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं गंधमें। रूपमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं ग्रथनमें, शब्दमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कर्म बंधमें ॥ इनतैं अतीत कोऊ आतम स्वभाव लसै, तहाँ वसै ज्ञान शुद्ध चेतनाके खंधमें ॥ ऐसो वीतरागदेव कह्यो है प्रकाशभेव, ज्ञानवंत पावै ताहि मूढ़ धावै ध्वंधमें ॥१०॥

वीतराग वैन सो तो ऐनसे विराजत है, जाके परकाश निजभास पर लहिये। सूझै पट दर्व सर्व गुण परजाय भेद, देवगुरु ग्रंथ पंथ सत्य उर गहिये ॥ करमको नाश जामें आतम अभ्यास कह्यो, ध्यानकी हुतास अरिपंकतिको दहिये। खोल दृग देखि रूप अहो अविनाशी भूप, सिद्धकी समान सव तोपैं रिद्ध कहिये ॥११॥

रागकी जु रीतसु तो वडी विपरीत कही, दोपकी जु वात सु तो महादुख दात है। इनहीकी संगतिसों कर्मवन्ध करै जीव, इनही संगतिसों नरक निपात है ॥ इनहीकी संगतिसों वसिये निगोद वीच, जाके दुखदाहको न थाह कह्यो जात है। येही जगजाल के फिरावनको वडे भूप, इनहीके त्यागे भव भ्रम न विलात है ॥१२॥

मात्रिक कवित्त.

असी चार आसन मुनिवरके, तामें मुक्ति होनके दोय।
पद्मासन खड्गासन कहिये, इनविन मुक्ति होय नहिं कोय ॥
परम दिगम्बर निजरस लीनो, ज्ञान दरश थिरतामय होय।
अष्ट कर्मको थान भ्रष्टकर, शिवसंपति विलसत है सोय ॥१३॥

दोहा.

जैसो शिवखेतहि वसै, तैसो या तनमाहिं ॥
निश्चय दृष्टि निहारतैं, फेर रंच कहुं नाहिं ॥ १४ ॥

इति सिद्धचतुर्दशी.

अथ निर्वाणकांडभाषा लिख्यते ।

दोहा.

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित शिरनाय ।
कहूं कांड निर्वानकी, भाषा विविध वनाय ॥ १ ॥

चौपई.

अष्टापद आदीश्वर स्वामि । वासुपूज्य चंपापुरि नामि ॥
नेमिनाथ स्वामी गिरनार । वंदौं भावभगति उर धार ॥ २ ॥
चर्म तिर्थंकर चर्म शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥
शिखरसमेद जिनेश्वर वीस । भावसहित वंदो जगदीस ॥ ३ ॥
वरदत औ वर इंद मुनिंद । सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥
नगर तारवर मुनि उठ कोड़ । वंदौं भावसहित करजोड़ ॥ ४ ॥
श्रीगिरनार शिखर विख्यात । कोटि वहत्तर अरु सौ सात ॥
संबु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय । अनुरुद्ध आदि नमूं तसपाय ॥ ५ ॥
रामचंद्रके सुत द्वै वीर । लाड नरिंद आदि गुणधीर ॥
पंचकोड़ मुनि मुक्तिमझार । पावागिर वंदौं निरधार ॥ ६ ॥
पांडव तीन द्रविड़ राजान । आठकोड मुनि मुकतिप्रमान ॥
श्रीशत्रुंजयगिरिके शीस । भावसहित वंदो निशदीस ॥ ७ ॥

---

(१) साढे तीन करोड.

जो बलिभद्र मुकतिमें गये। आठ कोड़ि मुनि औरहिं भये ॥
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल। तिनके चरण नमूं तिहुं काल ॥८॥
राम हनू सुग्रीव सुडील। गवगवाख्य नील महानील ॥
कोड़ निन्याणव मुक्तिप्रमान। तुंगी गिर वंदों धर ध्यान ॥९॥
नंग अनंग कुमार सुजान। पंचकोड़ अरु अर्द्ध प्रवान ॥
मुक्ति गये शिहुनागिरशीस। ते वंदों त्रिभुवनपति ईश ॥१०॥
रावनके सुत आदि कुमार। मुक्ति भये रेवातट सार ॥
कोटि पंच अरु लाखपचास। ते वंदो धर परम हुलास ॥११॥
रेवानदी सिद्धवर कूट। पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ॥
द्वै चक्री दश काम कुमार। औठकोडि वंदों भवपार ॥१२॥
वड़वानी वड़नगर सुचंग। दक्षिण दिशि गिर चूल उतंग ॥
इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण। ते वंदों भवसागर तर्ण ॥१३॥
सुवरणभद्र आदि मुनि चार। पावागिरिवर शिखरमझार ॥
चलना नदीतीरके पास। मुक्ति गये वंदों नित तास ॥१४॥
फलहोड़ी वडगाम अनूप। पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ॥
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहां। मुक्ति गये वंदों नित तहां ॥१५॥
वाल महावाल मुनि दोय। नाग कुमार मिले त्रय होय ॥
श्रीअष्टापद मुकति मझार। ते वंदों नित सुरत संभार ॥१६॥
अचला पुरकी दिशा ईशान। तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥
साढे तीन कोटि मुनिराय। तिनके चरन नमूं चितलाय ॥१७॥
वंशस्थल वनके ढिग होय। पश्चिम दिश कुंथलगिरि सोय ॥
कुल भूपण देश भूपण नाम। तिनके चरणनि करहुं प्रणाम ॥१८

(२) साढेतीन करोड.

जसरथ राजाके सुत कहे । देश कलिंग पांचसो लहे ॥
कोटि शिला मुनि कोटि प्रमान। वंदन करौं जोर जुग पान ॥१९॥
समवशरण श्रीपार्श्वजिनंद । रिशंदेह गिरि नयनानंद ॥
वरदत्तादि पंच ऋपिराज । ते वंदों नित धरम जिहाज॥२०॥
तीन लोकके तीरथ जहां । नित प्रति वंदन कीजे तहां ॥
मन वच भाव सहित शिर नाय। वंदन करें भविक गुण गाय॥२१
संवत सत्रहसो इकताल । अश्विन सुदि दशमी सुविशाल॥
'भैया' वंदन करहि त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुण माल॥२२॥

इति निर्वाणकांडभापा.

अथ एकादशगुणस्थानपर्यन्तपंथवर्णन लिख्यते ॥

दोहा.

कर्म कलंक खपायकें, भये सिद्ध भगवान ॥
नित प्रति वंदों भाव धर, जो प्रगटैं निज ज्ञान ॥ १ ॥
कहों पंथ इह जीवके, किहँ मग आवै जाय ॥
गुंण थानक दश एकलों, धरै जनम मृत भाय ॥ २ ॥
भव्य राशितैं निकसिकै, मुक्ति होनके काज ॥
चढहि गिरहि इम पंथमें, अंत होंहिं महाराज ॥ ३ ॥

चौपाई.

प्रथम मिथ्यात नाम गुंण थान । उभय भेद ताके परवान ॥
एक अनादि नाम मिथ्यात । दूजो सादि कह्यो विख्यात ॥४॥
प्रथम अनादि मिथ्याती जीव । पंथ तीनको धरै सदीव ॥
चौथे पंचम सप्तम जाय । गिरैतो फिर मिथ्यापुर आय॥५॥
सादि मिथ्यात्व जीव जो धरै । पंथ चार ताके विस्तरै ॥

तीजै चौथे पंचम जाय । सप्तम पुरलौं पहुंचै धाय ॥ ६ ॥
अब दूजो सासादन नाम । ताके एक गिरनको धाम ॥
मिथ्यापुरलौं आवै सही । दूजी वाट न याकी कही ॥ ७ ॥
तीजो मिश्रनाम गुण थान । पंथ दोय याके परमान ॥
गिरै तो पहिले पुरके माहिं । चढै तो चौथे थानक जाहिं ॥ ८ ॥
चौथौ है अव्रतपुर थान । पंथ पंच भाखे भगवान ॥
गिरै तो तीजै दूजै जाय । मिथ्यापुरलौं पहुँचै आय ॥ ९ ॥
चढै तो पंचम सप्तम सही । ऐसी महिमा याकी कही ॥
पंचम देशविरतपुर जान । पंथ पंच ताके उर आन ॥ १० ॥
गिरै तो चौथे तीजै जाय । अथवा दूजै पहिले भाय ॥
चढै तो सप्तम पुरके माहिं । इहि थानक अधिके कछु नाहिं ११
अब षष्टम परमत्त वखान । ताके पंथ छहों पहिचान ॥
गिरै तौ पंचम चौ त्रिय जाय । दूजै पहिले धरै सुभाय ॥ १२ ॥
चढै तो सप्तम पुरलौं आय । ऐसे भेद कहे जिनराय ॥
सप्तम अप्रमत्त पुर नाम । पंथ तीन ताके अभिराम ॥ १३ ॥
गिरै तो छठ्ठे पुरलौं जाहिं । चढै तो अष्टम पुरके माहिं ॥
मरन करै चौथे पुर आय । ऐसे भेद कहे समुझाय ॥ १४ ॥
अष्टम नाम अपूरव करण । शिवलोचन मधि ताकी धरण ॥
गिरै तो सप्तम पुरहि अखंड । चढै तो नवमें पुर परचंड ॥ १५
मरन करै तो चौथै जाय । ऐसे कथन कह्यो मुनिराय ॥
नवमों नाम अनिव्रतकर्ण । पंथ तीन ताके विस्तर्ण ॥ १६ ॥
गिरै तो अष्टम पुरके संग । चढै तो दशमें होय अभंग ॥
मरन करै चौथे पुर वीच । तोहू भवथिति रहै नगीच ॥ १७
सूक्ष्म सांपराय दश कहै । पंथ तीन ताके इम लहै ॥

गिरै तौ नवमें पुरकी वाट । चढै इकादश उपशम घाट ॥१८
मरन करै चौथै पुर सही । ऐसी रीति जिनागम कही ॥
एकादशम मोह उपशांत । पंथ दोय तिहँ कहै सिद्धांत ॥१९
गिरै तो दशमें पुर निरधार । मरन करै तो चौथै सार ॥
ऐसे भेद जिनागममाहिं । गोमठसार ग्रंथकी छांहि ॥२०॥
भाषा करहिं 'भविक' इह हेत । याके पढ़त अर्थ कह देत ॥
वाल गुपाल पढ़हिं जे जीव । 'भैया' ते सुख लहहिं सदीव ॥२१

इति एकादशगुणस्थानकथनम् ।

अथ कालाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

तिहुं पुरके पुरहूत सव, वंदत शीस नवाय ॥
तिहँ तीर्थंकर देवसों, वचत नाहिं यमराय ॥ १ ॥
जिनकी भ्रूके फरकतें, कंपत सुरनरवृन्द ॥
तेहू काल छिनमें लये, जो योधा सुर इन्द्र ॥ २ ॥
जाकी आज्ञामें रहैं, छहों खंडके भूप ॥
ता चक्रीधरको ग्रसै, काल महा भयरूप ॥ ३ ॥
नारायण नरलोकमें, महा शूर वलवंत ॥
तीन खंड आज्ञा वहै, तिनैहु काल ग्रसंत ॥ ४ ॥
औरहु भूप वलिष्ट जे, वसत याहि जगमाहिं ॥
तेहु कालकी चालसों, वचत रंच कहुं नाहिं ॥ ५ ॥
तातैं काल महावली, करंत सवनपै जोर ॥
धन धन सिधपरमातमा, जिहँ कीनों इहि भोर ॥ ६ ॥

ऐसे काल बलिष्टको, जो जीतै सो देव ॥
कहत दास भगवंतको, कीजे ताकी सेव ॥ ७ ॥
काल वसत जगजालमें, नूतन करत पुरान ॥
'भैया' जिहँ जग त्यागियो, नमहुं ताहि धर ध्यान ॥ ८ ॥

इतिकालाष्टक.

अथ उपदेशपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

वीतरागके चरनयुग, वंदो शीस नवाय ॥
कहुं उपदेशपचीसिका, श्रीगुरुके सुपसाय ॥ १ ॥

चौपाई.

वसत निगोद काल बहु गये । चेतन सावधान नहिं भये ॥
दिन दश निकस बहुर फिर परना । एते पर एता क्या करना ॥ २ ॥
अनँत जीवकी एकहि काया । उपजन मरन इकत्र कहाया ॥
स्वास उसास अठारह मरना । एते पर एता क्या करना ॥३॥
अक्षरभाग अनंतम कह्यो । चेतन ज्ञान इहांलों रह्यो ॥
कौन सकति कर तहां निकरना । एते पर एता क्या करना ॥ ४ ॥
पृथिवी अप तेऊ अरु वाय । वनस्पतीमें वसै सुभाय ॥
ऐसी गतिमें दुख बहु भरना । एते पर एता क्या करना ॥ ५ ॥
केतो काल इहां तोहि गयो । निकसि फेर विकलत्रय भयो ॥
ताका दुख कछु जाय न वरना । एते पर एता क्या करना ॥ ६ ॥
पशुपक्षीकी काया पाई । चेतन रहे तहाँ लपटाई ॥
विना विवेक कहो क्यों तरना । एते पर एता क्या करना ॥७॥
इम तिरजंच माहिं दुख सहे । सो दुख किनहूं जाहि न कहे ॥

पाप करमतैं इह गति परना। एते पर एता क्या करना॥८॥
फिरहू परे नरकके माहीं। सो दुख कैसें वरनें जाहीं॥
क्षेत्र गंधतें नाक ज्ञु सरना। एते पर एता क्या करना॥९॥
अग्निसमान भूमि जहँ कही। कितहू शील महा वन रही॥
सूरी सेज छिनक नहिं टरना। एते पर एता क्या करना॥१०
परम अधर्मी देव कुमारा। छेदन भेदन करहिं अपारा॥
तिनके वसतें नाहि उवरना। एते पर एता क्या करना॥११
रंचक सुख जहँ जियको नाहीं। वसत याहि गति नाहिं अघाहीं
देखत दुष्ट महा भय डरना। एते पर एता क्या करना॥१२॥
पुण्ययोग भयो सुर अवतारा। फिरत फिरत इह जगतमझारा॥
आवत काल देख थर हरना। एते पर एता क्या करना॥१३॥
सुरमंदिर अरु सुखसंयोगा। निशदिन सुख संपतिके भोगा॥
छिनइक माहिं तहांते टरना। एते पर एता क्या करना॥१४॥
बहु जन्मांतर पुण्य कमाया। तव कहुं लही मनुप परजाया॥
तामें लग्यो जरा गद मरना। एते पर एता क्या करना॥१५॥
धन जोवन सवही ठकुराई। कर्म योगतैं नौनिधि पाई॥
सो स्वपनांतरकासा वरना। एते पर एता क्या करना॥१६
निशदिन विषय भोग लपटाना। समुझै नाहिं कौन गति जाना॥
है छिन काल आयुको चरना। एते पर एता क्या करना॥१७॥
इन विषयन केतो दुख दीनों। तवहूं तू तेही रस भीनों॥
नेक विवेक हृदै नहिं धरना। एतेपर एता क्या करना॥१८॥
परसंगति केतो दुख पावै। तवहू तोकों लाज न आवै॥
वासन संग नीर ज्यों जरना। एते पर एता क्या करना॥१९॥
देव धर्म गुरु ग्रंथ न जानें। स्वपरविवेक हृदै नहिं आनें॥
क्यों होवै भवसागर तरना। एते पर एता क्या करना॥२०

पांचों इन्द्री अति बटपारे। परम धर्म धन मूसन हारे ॥
खांहिं पियहि एतो दुख भरना। एते पर एता क्या करना ॥२१
सिद्ध समान न जाने आपा। तातैं तोहि लगत है पापा॥
खोल देख घट पटहिं उघरना। एते पर एता क्या करना॥२२॥
श्रीजिनवचन अमल रस वानी। पीवहिं क्यों नहिं मूढ अज्ञानी॥
जातैं जन्म जरा मृत हरना। एते पर एता क्या करना॥२३॥
जो चेतै तो है यह दावो। नाही बैठे मंगल गावो ॥
फिर यह नरभव वृक्षन फरना। एते पर एता क्या करना॥२४॥
'भैया' विनवहि वारंवारा। चेतन चेत भलो अवतारा ॥
है दूलह शिव नारी वरना। एते पर एता क्या करना॥२५

दोहा.

ज्ञानमयी दर्शन नमयी, चारितमयी स्वभाय ॥
सो परमातम ध्याइये, यहैं सु मोक्ष उपाय ॥ २६ ॥
सत्रहसो इकतालके, मारगशिर शितपक्ष ॥
तिथि शंकर गन लीजिये, श्रीरविवार प्रतक्ष ॥ २७ ॥

इति उपदेशपचीसिका.

अथ नंदीश्वरद्वीपकी जयमाला।

दोहा.

वंदों श्रीजिनदेवको, अरु वंदों जिन वैन ॥
जस प्रसाद इह जीवके, प्रगट होंय निज नैन ॥ १ ॥
श्रीनंदीश्वर द्वीपकी, महिमा अगम अपार ॥
कहूं तास जय मालिका, जिनमतके अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई.

एक अरब अरु त्रेसठ कोड़ि । लख चौरासी तापरि जोड़ि ॥
एते योजन महा प्रमान । अष्टमद्वीप नंदीश्वर जान ॥३॥
तामहि चहुं दिशि शिखरि उतंग । तिनको मान कहुं सरवंग ॥
दिशि पूरव गिरि तेरह सही । ताकी उपमा जाय न कही ॥४॥
मध्य एक अंजनके रंग । शिखरि उतंग वन्यो सरवंग ॥
सहस चौरासी योजन मान । धूपरवत देख्यो भगवान ॥ ५ ॥
ताके चहुं दिशि परवत चार । उज्वल वरन महा सुखकार ॥
चौसठि सहस उतंग जु होय । दधिमुख नाम कहावे सोय ६
इक इक दधि मुखपरवत तास । द्वै द्वै रतिकर अचल निवास ॥
इक इक अरुण वरन गिरि मान । सहस चवालिस ऊर्द्ध प्रमान ॥७
इहविधि तेरह गिरिवर गने । ता परि चैत्य अकृत्रिम वने ॥
इक इक गिरिपर इक प्रासाद । ताकी रचना वनी अनाद ॥ ८ ॥
इक जिनमंदिरको विस्तार । सुनहु भविक परमागम सार ॥
गिरिको शिखर वरत तिहिरूप । रत्नमयी प्रासाद अनूप ॥ ९ ॥
इक चैत्यालय विंव प्रमान । इकसो आठ अनूपम जान ॥
रत्नमणी सुंदर आकार । धनुष पंचसो ऊर्ध्व उदार ॥१०॥
इम तेरह पूरव दिशि कहे । ताके भेद जिनागम लहे ॥
छप्पनसो सोरह विँव सबै । ताकी भावन भाऊं अबै ॥ ११ ॥
अनँत ज्ञान जो आतमराम । सो प्रगटहि इह मुद्रा धाम ॥
लोक अलीक विलोकन हार । ता परदेशनि यह आकार ॥१२
अनँत काललों यही स्वरूप । सिद्धालय राजै चिद्रूप ॥

(१) मंदिर.

सुख अनंत प्रगटैं इहि ध्यान। तातैं जिनप्रतिमा परधान॥१३
जिनप्रतिमा जिनवरणे कही। जिन साद्दशमें अंतर नहीं॥
सब सुरवृंद नंदीश्वर जाय। पूजहि तहां विविध धर भाय १४
'भैया' नितप्रति शीस नवाय। वंदन करहि परम गुण गाय॥
इह ध्यावत निज पावत सही। तौ जयमाल नंदीश्वर कही १५

इति नंदीश्वरजयमाला.

अथ बारहभावना लिख्यते।

चौपाई.

पंच परम पद वंदन करों। मन वच भाव सहित उर धरों॥
बारह भावन पावन जान। भाऊं आतम गुण पहिचान॥१॥
थिर नहिं दीखहि नैननि वस्त। देहादिक अरु रूप समस्त॥
थिर विन नेह कौनसों करों। अथिर देख ममता परिहरों॥२
असरन तोहि सरन नहिं कोय। तीन लोकमहिं द्दगधर जोय॥
कोऊ न तेरो राखन हार। कर्मनवस चेतन निरधार॥३॥
अरु संसार भावना एह। परद्रव्यनसों कीजे नेह॥
तू चेतन वे जड़ सरवंग। तातैं तजहु परायो संग॥४॥
एक जीव तूं आप त्रिकाल। ऊरध मध्य भवन पाताल॥
दूजो कोऊ न तेरी साथ। सदा अकेलो फिरहि अनाथ॥५
भिन्न सदा पुद्गलतैं रहै। भर्मबुद्धितैं जड़ता गहै॥
वे रूपी पुद्गलके खंध। तू चिनमूरत सदा अबंध॥६॥
अशुचि देख देहादिक अंग। कौन कुवस्तु लगी तो संग॥
अस्थी मांस रुधिर गद गेह। मलमूतन लखि तजहु सनेह॥७॥

आस्रव परसों कीजे प्रीत। तातैं बंध वढहि विपरीत ॥
पुद्गल तोहि अपनपो नाहिं। तू चेतन वे जड़ सब आंहि ॥ ८ ॥
संवर परको रोकन भाव। सुख होवेको यही उपाव ॥
आवे नहीं नये जहां कर्म। पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म ॥९॥
थिति पूरी ह्वै खिर खिर जाहिं। निर्जरभाव अधिक अधिकाहिं॥
निर्मल होय चिदानंद आप। मिटै सहज परसंग मिलाप॥१०
लोकमांहि तेरो कछु नाहिं। लोक आन तुम आन लखांहिं॥
वह षट दर्शनको सब धाम। तू चिनमूरति आतम राम॥ ११
दुर्लभ पर दर्वनिको भाव। सो तोहि दुर्लभ है सुनि राव॥
जो तेरो है ज्ञान अनंत। सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत ॥१२
धर्म सुआप स्वभावहि जान। आप स्वभाव धर्म सोई मान॥
जब वह धर्म प्रगट तोहि होय। तब परमातम पद लखि सोय१३
येही बारह भावन सार। तीर्थंकर भावहिं निरधार॥
ह्वै वैराग महाव्रत लेहिं। तब भवभ्रमन जलांजुलि देहिं१४
'भैया' भावहु भाव अनूप। भावत होहु चरित शिवभूप॥
सुख अनंत विलसहु निशदीस। इम भाख्यो स्वामी जगदीस१५

इति बारह भावना.

अथ कर्मबंधके दशभेद लिख्यते।

दोहा.

श्री जिनचरणाम्बुजप्रतैं, वंदहुं शीस नवाय ॥
कहूं कर्मके बंधको, भेद भाव समुझाय ॥ १ ॥
एक प्रकृति दश विधि बँधै, भिन्नभिन्न तस नाम ॥

गुण लच्छन वरनन सुनें, जागहिं आतम राम ॥ २ ॥
वन्धसमुच्चय भेद ये, उत्कर्षण जु वढाय ॥
शंकरमन औरहि लसै, अपकर्षण घट जाय ॥ ३ ॥
लावै निकट उदीरणा, सत्ता उदय करंत ॥
उपसम और निधत्त लखि, कर्म निकांचित अंत ॥ ४ ॥

चौपाई.

मिथ्या अव्रत योग कषाय । बंध होय चहुं परतैं आय ॥
थिति अनु भाग प्रकृति परदेश । ए बंधन विधि भेद विशेश ॥५॥
प्रथमहि वंध प्रकृति जो होय । समुचैबंध कहावै सोय ॥
दूजो उत्कर्षण वंध एह । थितहिं वढाय करै वहु जेह ॥६
तीजो संक्रमण जु कहाय । औरकी और प्रकृति हो जाय ॥
गतिविन और करमपैं कही । वंध उदय नाना विधि लही ॥७॥
चौथो अपकर्षण इम थाय । बंध घटै अथवा गल जाय ॥
पंचम करन उदीरण हेर । ल्यावै निकट उदयमें घेर ॥ ८ ॥
सत्ता अपनी लिये वसंत । षष्टम भेद यहै विरतंत ॥
सप्तम भेद उदय जे देय । थिति पूरी कर बंध खिरेय ॥९॥
अष्टम उपसम नाम कहाय । जहां उदीरन वल न वसाय ॥
नवमों भेद निधत्त जु सोय । उदीरन संक्रमणन होय ॥१०॥
दशमों वंध निकांचित जहां । थिति नहीं वढै घटै नहिं तहां ॥
उदीरण. संक्रमणन और । जिम बंध्यो रस दै तिन ठौर ॥ ११
ए दश भेद जिनागम लहे । गोमठसार ग्रंथमें कहे ॥
समझै धारै जे उर माहिं । तिनके चित्त विकलता नाहिं १२
गुण थानक पैं जहां जो होय । आगम देख विलोकहु सोय ॥
सब संशय जियके मिट जाय । निर्मल होय चिदातमराय १३

बंध सकल पुद्गल परपंच । चेतन माहिं न दीसै रंच ॥
लोक अलोक विलोकनवंत । 'भैया' वह पद प्रगट करंत॥१४

दोहा.

ये दश भेद लखे लखहिं, चिदानंद भगवान ॥
जामें सुख सब सास्वते, वेदहु सिद्ध समान ॥ १५ ॥

इति कर्मबंधके दशभेदवर्णन ।

अथ सप्तभंगीवाणी लिख्यते.

दोहा.

वंदों श्रीजिनदेवको, वंदों सिद्ध महंत ॥
वंदों केवल ज्ञान जो, लोक अलोक लखंत ॥ १ ॥
सप्तभंगवाणी कहूं, जिनआगम अनुसार ॥
जाके समुझत समझिये, नीके भेद विचार ॥ २ ॥

चौपाई.

अस्ति नास्ति गुण लच्छनवंत । प्रथम दरब यह भेद धरंत ॥
ये गुण सिद्ध करनके काज । सप्त भंग भाखे मुनिराज ॥३॥
प्रथम द्रव्य अस्ति नय एह । नास्ति कहै दूजी नय जेह ॥
तीजी अस्तिनास्ति निहार । चौथी अवक्तव्य नय धार ॥४॥
पंचमि अस्तिअवक्तव्य कही । छट्ठी नास्तिअक्तव्य लही ॥
सप्तमि अस्तिनास्तिअवक्तव्य । इनके भेद कहूं कछु अव्व॥५॥
अस्ति दरबको मूल स्वभाव । नास्ति परणम निपट निनाव ॥
अथवा और दरब सो नाहिं । ताहि उपेक्षा नाम कहाहिं ॥६॥
अस्तिनास्ति गुण एकहि माहिं । दुहुगुण द्रवलच्छन ठहिराहिं ॥
अस्तिनास्ति विन दर्व न होय । नय साधेतैं भ्रम नहिं कोय॥७

द्रव्यगुण वचननि कह्यो न जाय। वचन अगोचर वस्तु स्वभाय॥
जो कहुं एक अस्तिता सही। तौ दूजी नय लागै नही॥ ८॥
जो कहुं नास्तिक गुणदोउ माहिं। तौ अस्तिकता कैसैं नाहिं॥
अस्ति नास्ति दोउ एकहि वेर। कही न जाय वचनको फेर॥९॥
दुहूको एक विचार न होय। इक आगें इक पीछें जोय॥
कोउ गुण आगें पीछें नाहिं। दोउ गुण एक समयके माहिं१०
तातैं वचन अगोचर दर्व। सातों नय भाखी ए सर्व॥
नय समुझैंतैं वस्तु प्रमान। नय समझे जिय सम्यकवान ११
नय नाहिं लखै मिथ्याती जीव। तातैं भ्रामक रहै सदीव॥
'भैया' जे नय जानहिं भेद। तिनके मिटहि सकल भ्रमखेद॥

इति सप्तभंगीवाणी.

अथ सुबुद्धिचौवीसी लिख्यते।

दोहा.

चरनकमल जिनदेवके, बंदों शीस नवाय॥
कहूं सुबुद्धिचौवीसिके, कछु कवित्त गुण गाय॥ १॥

कवित्त.

निर्वाण सागर महासाधुसु विमलप्रभ[1], शुद्धप्रभ श्रीधर जिनेश्वर नमीजिये। सुदत्त अमलप्रभ उद्धर अङ्गिर सिन्धु सन्मति पुष्पांजलिके चर्णचित दीजिये॥ शिवगण उत्साह ज्ञानेश्वर परमेश्वर, विमलेश्वर यथार्थ नाम नित लीजिये। यशोधर कृष्ण ज्ञान शुद्धमति सिरीभद्र, अतिक्रान्त शान्तपद नमस्कार कीजिये २
महापद्म सुरदेव सुप्रभ जु स्वयंप्रभ, सर्वायुध जयदेव

---

१ निर्मल है प्रभा जिनकी.

चित्तमें चितारिये। उदैदेव प्रभादेव श्रीउदंक प्रश्नकीर्त्ति, जयकीर्त्ति पूर्णबुद्धि हिरदै निहारिये॥ निःकषाय विमलप्रभ विपुल निर्मल चित्र, गुप्त समाधिगुप्त नाम नित धारिये। स्वयंभू कंदर्प जयनाथ विमलसु देवपाल अनंतवीर्य चौवीसी आगम जुहारिये॥ ३॥

पंच पर्म इष्ट सार महामंत्र नमस्कार, जपै जीव लहै पार सागर भौ तीरको। रिद्धको भरै भंडार सिद्धको सुपंथ सार, लब्धिको अनोपचार सार शुद्ध हीरको॥ कष्टको करै निवारदुष्ट दूर होंहिं छार, पुष्ट पर्म ब्रह्मद्वार सुष्टु शुद्ध धीरको। पापको करै प्रहार अष्ट कर्म जैतवार, भव्यको यहै अधार ज्ञान बल वीरको॥४

महा मंत्र यहै सार पंच पर्म नमस्कार, भौ जल उतारै पार भव्यको अधार है। विघ्नको विनाश करै, पापकर्म नाश करै। आतम प्रकाश करै पूरबको सार है॥ दुख चकचूर करै, दुर्जनको दूर करै, सुख भरपूर करै परम उदार है। तिहूं लोक तारनको आत्मा सुधारनको, ज्ञान विस्तारनको यहै नमस्कार है॥५॥

जीव द्रव्य एक देख्यो दूसरो अजीव द्रव्य, गुण परजाय लिये सबै विद्यमान है। देख्यो ज्ञान मधि जिनवर श्री वृषभ नाथ, ताके भेद कहते अनेकही विनान है॥ देवनके इन्द्र जिते तिनके समूह मिले, वंदै नित्य भाव धर सदा ये विधान है। ताको सदा हमहू प्रणाम शीस नाय करैं, जाके गुणधारे मोक्ष मारग निदान है॥ ६॥

अनङ्गशेखर (३२ वर्ण. लघु गुरुके क्रमसे)

नमामि पंच नामको सुध्याय आप धामको, विडार मोह कामको सुरामकी रटा लई। कुराग दोष टारकें कषायको निवारकें,

स्वरूप शुद्ध धारिके निहारकें सुधामई ॥ अनंत ज्ञान भानसों कि चेतना निधानसों, कि सिद्धकी समानसों सुधार ठीक यों दई । सुवुद्धि ऐसें आयके अवंधको दिखायके, चटाक चित्त लायकें झटाक झूंठ रव्वै गई ॥ ७ ॥

प्रकृत्ति आदि सातकी जहां तैं ताहि घातकी, तौ चिंता कौन वातकी मिथ्यात्वकी गढी ढई । लखी सुजात गातकी शरीर सात धातकी, सुयामें काहु भांतिकी न चेतना कहूं भई ॥ अंधेरी मेट रातकी सुजानी वात प्रातकी, प्रवानी जीव जातिकी सुआप चेतना मई । सुवुद्धि ऐसें आयकें अवंधको दिखायकें, चटाक चित्त लायकें झटाक झूंठ रव्वै गई ॥ ८ ॥

कटाक कर्म तोरके छटाक गांठि छोरके, पटाक पाप मोरके तटाक दै मृषा गई । चटाक चिह्न जानिके, झटाक हीय आनके नटाकि नृत्य भानके खटाकि नै खरी ठई ॥ घटाके घोर फारिके, तटाक वंध टारके अटाके राम धारकें रटाक रामकी जई । गटाक शुद्ध पानको हटाकि आन आनको, घटाकि आप थानको सटाक श्यौंवधू लई ॥ ९ ॥

मनहरण. (३१ वर्ण)

केऊ फिरैं कानफटा, केंऊ शीस धरैं जटा, केऊ लिये भस्म वटा भूले भटकत हैं। केऊ तज जाहिं अटा, केऊ घेरैं चेरी चटा, केऊ पढै पट केऊ धूम गटकत हैं ॥ केऊ तन किये लटा, केऊ महा दीसैं कटा केऊ, तरतटा केऊ रसा लटकत हैं । भ्रम भावतैं न हटा हिये काम नाही घटा, विषै सुख रटा साथ हाथ पटकत हैं ॥ १०

छप्पय.

दुविधि परिग्रह त्याग, त्याग पुनि प्रकृति पंच दश ।

गहहिं महा व्रत भार, लहहिं निज सार शुद्ध रस ॥
धरहिं सुध्यान प्रधान, ज्ञान अमृत रस चक्खहिं ।
सहहिं परीषह जोर, व्रत्त निज नीके रक्खहिं ॥
पुनि चढहिं श्रेणि गुण थान पथ, केवल पद प्रापति कराहिं।
तस चरण कमल वंदन करत, पाप पुंज पंकति हराहिं ॥११॥

कवित्त. (मनहरण)

भरमकी रीति भानी परमसों प्रीति ठानी, धरमकी वात जानी ध्यावत घरी घरी। जिनकी बखानी वानी सोई उर नीके आनी, निहचै ठहरानी दृढ ह्वैकें खरी खरी ॥ निज निधि पहिचानी तव भयौ ब्रह्म ज्ञानी, शिव लोककी निशानी आपमें धरी धरी। भौ थिति विलानी अरि सत्ता जु हठानी, तब भयो शुद्ध प्रानी जिन वैसी जे करी करी ॥ १२ ॥

तीनसै तेताल राजु लोकको प्रमान कह्यो, घनाकार गनतीको ऐसो उर आनिये। ऊंचो राजू चवदह देख्यो जिन राज जूने, तामे राजू एक पोलो पवन प्रवानिये ॥ तामें है निगोद राशि भरी घृतघट जैसें, उभै भेद ताके नित इतर सु जानिये। तामैं सों निकसि व्यवहार राशि चढै जीव, केई होहिं सिद्ध केई जगमें बखानिये ॥ १३ ॥

छप्पय.

जो जानहिं सो जीव, जीव विन और न जानें।
जो मानहिं सो जीव, जीव विन और न मानें ॥
जो देखहि सो जीव, जीव विन और न देखै।
जो जीवहि सो जीव, जीव गुण यहै विसेखै ॥

महिमा निधान अनुभूत युत, गुण अनंत निर्मल लसै।
सो जीव द्रव्य पेखंत भवि, सिद्ध खेत सहजहिं वसै॥१४॥

कवित्त.

अचेतनकी देहरी न कीजे तासों नेहरी, ओगुनकी गेहरी परम दुख भरी है। याहीके सनेहरी न आवें कर्म छेहरी सु, पावें दुख तेहरी जे याकी प्रीति करी है॥ अनादि लगी जेहरी जु देखतही खेहरी तू, यामें कहा लेहरी कुरोगनकी दरी है। काम गजकेहरी सुराग द्वेषके हरी तू, तामें दृग देहरी जो मिथ्यामति हरी है॥ १५॥

सवैया.

ज्ञान प्रकाश भयो जिनदेवको, इंद्रसु आय मिले जु तहांई।
रूपसुवर्ण महाद्युति रत्नके, कोट रचे त्रै अनादिकी नाई॥
वीस हजार जु पैड़ी विराजत, तापैं चढ्यो तिरलोक गुसांई।
देखके लोक कहैं अवनीपर, सिंधु चढ्यो असमानके तांई॥१६॥
नीव धरै शिवमंदिरकी, उरमें कितनी उकतैं उपजावै।
ज्ञानप्रकाश करै अति निर्मल, ऊरधकी मति यों चित लावै॥
इन्द्रिन जीतकें प्रीति करै, परमेश्वरसों मन चाह लगावे।
देखै निहार विचार यहै, करमें करनी महाराज कहावै॥ १७॥
तोहि इहां रहिवो कहु केतक, पंथमे प्रीति किये सुख स्वै है।
पोपत जाहिं पियारीसु जानकें, सो तौ नियारीये होतन छ्वै है॥
तू इम जानत है तनही मम, सो भ्रम दूर करो दुख द्वै है।
देह सनेह करै मत हंस, गई कर जाहिं निवाहन ह्वै है॥ १८॥

कवित्त.

मृग मीन सुजनसों अकारन वैर करै, ऐसे जगमाहिं जीव

विधना बनाये हैं । कानन में तृन खांहिं दूर जल पीन जांहिं, बसै बनमाहिं ताहि मारनको धाये हैं ॥ जल माहिं मीन रहै काहूसों न कछू कहै, ताको जाय पापी जीव नाहक सताये हैं । सज्जन सन्तोष धरै काहूसों न वैर करै, ताको देख दुष्ट जीव क्रोध उपजाये हैं ॥ १९ ॥

अहिक्षितिपार्श्वनाथकी स्तुति कवित्त.

आनंदको कंद किधों पूनमको चंद किधों, देखिये दिनंद ऐसो नंद अश्वसेनको । करमको हरै फंद भ्रमको करै निकंद, चूरै दुख द्वंद सुख पूरै महा चैनको ॥ सेवत सुरिंद गुनगावत नरिंद भैया, ध्यावत मुनिंद तेहू पावैं सुख ऐनको । ऐसो जिन चंद करै छिनमें सुछंद सुतौ, ऐक्षितको इंद पाश्र्व पूजों प्रभु जैनको ॥ २० ॥

कोऊ कहै सूरसोमदेव है प्रत्यक्ष दोऊ, कोउ कहै रामचंद्र राखै आवागौनसों । कोऊ कहै ब्रह्मा वडो सृष्टिको करैया यहै, कोऊ कहै महादेव उपज्यो न जोनसों ॥ कोऊ कहै कृष्ण सब जीव प्रतिपाल करै, कोउ लागि रहे हैं भवानीजीके भौनसों । वही उपख्यान साचो देखिये जहान वीचि, वेश्याघर पूत भयो बाप कहै कौनसों ॥ २१ ॥

वीतराग नामसेती काम सब होंहि नीके, वीतराग नामसेती धामधन भरिये । वीतराग नामसेती विघन विलाय जाँय, वीत

(१) यह कवित्त आगें सुपंथ कुपंथ पचीसीमें भी आया है. इसका कारण ऐसा मालूम होता है कि इस सुबुद्धि चौवीसीके आदिमें भूतभविष्यत दो चौवीसीके नमस्कारके दो कवित्त हैं. इनके बीचमें वर्त्तमान चौवीसीको नमस्कार करनेका कवित्त भी भैयाजीने अवश्य बनाया होगा परन्तु लेखकोंकी भूलसे कदाचित छुट जानेसे किसी एक महात्माने यह २१ वाँ कवित्त रखकर २४ की संख्या पूरी की होगी. अन्यथा दोजगहँ एकही कवित्तका होना असंभव है ।

राग नामसेती भवसिंधु तरिये ॥ वीतराग नामसेती परम प-वित्र हूजे, वीतराग नामसेती शिववधू वरिये । वीतराग नामसम हितू नाहिं दूजो कोऊ, वीतराग नाम नित हिरदैमें धरिये ॥२२॥

श्रीराणापुरमंदिरका वर्णन—

देख जिनमुद्रा निजरूपको स्वरूप गहै, रागद्वेषमोहको वहाय डारै पलमें । लोकालोकव्यापी ब्रह्म कर्मसों अबंध वेद, सिद्धको स्वभाव सीख ध्यावे शुद्ध थलमें ॥ ऐसे वीतरागजूके बिंब हैं विराजमान, भव्यजीव लहैं ज्ञान चेतनके दलमें । मांझनी ओ मंडपकी रचना अनूप बनी, राणापुर रत्न सम देख्यो पुण्य फलमें ॥ २३ ॥

सुवुधि प्रकाशमें सु आतम विलासमें सु, थिरता अभ्यासमें सुज्ञानको निवास है। ऊरधकी रीतिमें जिनेशकी प्रतीतिमें सु, कर्म-नकी जीतमें अनेक सुख भास है ॥ चिदानंद ध्यावतही निज पद पावतही, द्रव्यके लखावतही देख्यो सब पास है । वीतराग वानी कहै सदा ब्रह्म ऐसें भास, सुखमें सदा निवास पूरन प्रकाश है ॥ २४ ॥

दोहा.

यह सुवुद्धि चौवीसिका, रची भगवतीदास ॥
जे नर पढहिं विवेकसों, ते पावहिं शिववास ॥ २५ ॥

इति श्रीसुवुद्धि चौवीसी.

अथ अकृत्रिमचैत्यालयकी जयमाला ।

चौपाई.

प्रणमहुं परम देवके पाय । मन वच भाव सहित शिरनाय ॥

अकृत्रिम जिनमंदिर जहां। नितप्रति वंदन कीजे तहां॥ १ ॥
प्रथम पताल लोकविस्तार। दश जातिनके देव कुमार ॥
तिनके भवन भवन प्रति जोय। एक एक जिनमंदिर होय ॥ २ ॥
असुर कुमारनके परमान। चौसठ लाख चैत्य भगवान ॥
नाग कुमारनके इम भाख। जिनमंदिर चौरासी लाख ॥ ३ ॥
हेम कुमारनके परतक्ष। जिनमंदिर हैं वहतर लक्ष ॥
विदुत कुमारनके भवनाल। लक्ष छिहत्तर नमूं त्रिकाल ॥ ४ ॥
सुपर्ण कुमारनके सब जान। लक्ष वहत्तर चैत्य प्रमान ॥
अगनि कुमारनके प्रासाद। लक्ष छिहत्तर वने अनाद ॥ ५ ॥
वात कुमार भवन जिनगेह। लक्ष छिहत्तर वंदहुं तेह ॥
उदधि कुमार अनोपमधाम। लक्ष छिहत्तर करूं प्रणाम ॥ ६ ॥
दीप कुमार देवके नांव। लक्ष छिहत्तर नमुं तिहँ ठांव ॥
लक्ष छयानवें दिक्क कुमार। जिनमंदिर सो है जैकार॥ ७ ॥
ये दश भवन कोटि जहँ सात। लक्ष वहत्तर कहे विख्यात ॥
तिन जिनमंदिरको त्रैकाल। वंदन करूं भवन पाताल॥ ८ ॥
मध्य लोक जिन चैत्य प्रमान। तिनप्रति वंदों मनधर ध्यान ॥
पंचमेरु अस्सी जिन भौन। तिनकी महिमा बरने कौन ॥ ९ ॥
वीस बहुर गजदंत निहार। तहां नमूं जिन चैत्य चितार ॥
तीस कुलाचल पर्वत शीस। जिन मंदिर वंदों निशदीस ॥१०॥
विजयारध पर्वतपर कहे। जिन मंदिर सौशत्तर लहे ॥
श्रुरद्रुमन दश चैत्य प्रमान। वंदन करों जोर जुगपान ॥ ११ ॥
श्रीवक्षार गिरहिं उर धरों। चैत्य असी नित वंदन करों ॥
मनुषोत्तर परबत चहुं ओर। नमहूं चार चैत्य करजोर ॥ १२ ॥

और कहूं जिनमंदिर थान । इक्ष्वाकारहिं चार प्रमान ॥
कुंडलगिरिकी महिमा सार । चैत्य जु चार नमूं निरधार ॥ १३ ॥
रुचिकनाम गिरिमहा वखान। चैत्य जु चार नमूं उर आन ॥
नंदीश्वर वावन गिरराव । वावन चैत्य नमहुं धरभाव ॥ १४ ॥
मध्यलोक भविके मन भावन। चैत्य चारसौ और अठावन ॥
तिन जिन मंदिरको निशदीस। वंदन करों नाय निज शीस ॥ १५ ॥
व्यंतर जाति असंखित देव । चैत्य असंख्य नमहुं इह भेव ॥
ज्योतिष संख्यातैं अधिकाय । चैत्य असंख्य नमूं चितलाय ॥१६॥
अव सुरलोक कहूं परकाश । जाके नमत जाहिं अघनाश ॥
प्रथम स्वर्ग सौधर्म विमान । लाख वतीस नमूं तिहँ थान ॥ १७॥
दूजो उत्तर श्रेणि इशान । लक्ष्य अठाइस चैत्य निधान ॥
तीजो सनत कुमार कहाय । वारह लाख नमूं धर भाय ॥१८॥
चौथो स्वर्ग महेन्द्र सुठामि । लाख आठ जिन चैत्य नमामि ॥
ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर दोय । लाख च्यार जिन मंदिर होय ॥१९
लांतव और कहूं कापिष्ट । सहस पचास नमूं उत किष्ट ॥
शुक्ररु महा शुक्र अभिराम। चालिस सहँसनि करूं प्रणाम २०
सतार सहस्रार सुर लोक । पट सहस्र चरनन द्यों धोक ॥
आनत प्राण आरण अच्युत्त । चार स्वर्गसे सात संयुत्त ॥२१॥
प्रथमहि ग्रैव चैत्य जिन देव । इकसो ग्यारह कीजे सेव ॥
मध्यग्रैव एकसो सात । ताकी महिमा जग विख्यात २२
उपरि ग्रैव निन्वै अरु एक । ताहि नमूं धर परम विवेक ॥
नव नवउत्तर नव प्रासाद । ताहि नमूं तजिके परमाद ॥२३॥
सवके ऊपर पंच विमान । तहँ जिनचैत्य नमूं धर ध्यान ॥
सव सुरलोकनकी मरजाद । कही कथन जिन वचन अनाद२४

लख चौरासी मंदिर दीस। सहस सत्याणव अरु तेईस ॥
तीन लोक जिन भवन निहार। तिनकी ठीक कहूं उरधार ॥२५॥
आठ कोड अरु छप्पन लाख। सहस सत्याणव ऊपर भाख ॥
चहुँसे इक्यासी जिन भौन। ताहि नमूं करिकें चिन्तौन ॥२६
धनुष पंचसो विंबप्रमान। इकसौ आठ चैत्य प्रति जान ॥
नव अरब्ब अरु कोटि पचीस। त्रेपन लाख अधिक पुनिदीस २७
सहस सताईस नवसे. मान। अरु अडतालीस विंब प्रमान ॥
एती जिन प्रतिमा गन लीजे। तिनको नमस्कार नित कीजे २८
जिनप्रतिमा जिनवरके भेश। रंचक फेर न कह्यो जिनेश ॥
जो जिनप्रतिमा सो जिनदेव। यहै विचार करै भवि सेव ॥२९
अनँत चतुष्टय आदि अपार। गुण प्रगटै इहि रूप मझार ॥
तातैं भविजन शीस नवाय। वंदन करहिं योग त्रयलाय ॥३०॥
अकृत्रिम अरु कृत्रिम दोय। जिन प्रतिमा वंदो नित सोय ॥
वारंवार शीस निज नाय। वंदन करहुं जिनेश्वर पाय ३१
सत्रहसै पैंतालिस सार। भादौं सुदि चउदश गुरुवार ॥
रचना कही जिनागम पाय। जैजैजै त्रिभुवनपतिराय ॥३२॥

दोहा.

दक्षलीन गुनको निरख, मूरख मीठे वैन ॥
'भैया' जिनवानी सुने, होत सबनको चैन ॥ ३३ ॥

इति श्रीअकृत्रिम चैत्यालयोंकी जयमाला.

अथ चवदहगुणस्थानवर्त्तिजीवसंख्यावर्णन लिख्यते.

दोहा.

वीतरागके चरनयुग, वंदों दोउ करजोर ॥
कहूं जीव गुणथानके, अष्टकर्म दलभोर ॥ १ ॥

जिहँ चलवो जिहँ पंथको, सो ढूंढै वहु साथ ॥
तैसें पंथिक मोक्षके, ढूंढ लेहिं जिननाथ ॥ २ ॥

चौपाई.

चौदह गुण थानक परमान । जियकी संख्या कहौं वखान ॥
इहि मगचलै मुकत सो होय । रहै अर्द्ध पुद्गललों कोय ॥ ३ ॥
प्रथम मिथ्यात्व नाम गुणथान । जीव अनंतानंत प्रमान ॥
तिनके पंच भेद विस्तार । वरनों जिन आगम अनुसार ४॥
एक पक्ष जो गहिकैं रहैं । दूजी नय नाहीं सरदहैं ॥
वो मिथ्याती मूरख जीव । ज्ञानहीन ते कहैं सदीव ॥ ५ ॥
जिन आगमके शब्द उथाप । थापैं निजमति वचन अलाप ॥
सुजस हेत गुरुतर मनधरै । सो विपरीती भवदुख भरै ॥६॥
देव कुदेव न जाने भेव । सुगुरु कुगुरुकी एकहि सेव ॥
नमैं भगतिसों विना विवेक । विनय मिथ्याती जीव अनेक॥७॥
भांति भांतिके विकलप गहै । जीव तत्त्व नाहीं सरदहै ॥
शून्य हिये डोलै हैरान । सो मिथ्याती संशयवान ॥ ८ ॥
गहल रूप वरतै परिणाम । दुखित महान न पावै धाम ॥
जाको सुरति होय नहिं रंच । ज्ञानहीन मिथ्याती पंच ॥ ९ ॥

दोहा.

इनहि पंच मिथ्यात्व वश, जीव वसै जगमाहिं ॥
इनहिं त्याग ऊपर चढै, ते शिवपथिक कहाहिं ॥ १० ॥
सासादन गुन थानसों, अरु अयोग परजंत ॥
उत्कृष्टी संख्या कहं, भाखी श्रीभगवन्त ॥ ११ ॥

चौपाई.

सासादन गुणथानक नाम । वावन कोटि जीव तिहँ ठाम ॥

एक अरब अरु कोटि जु चार। मिश्रनाम तीजै उरधार ॥१२॥
अव्रत है चौथो गुणवंत। सात अरब जिय तहां वसंत ॥
पंचम देशविरतपुर कहे। तेरह कोटि जीव जहँ लहे॥१३॥
पंच कोटि अरु त्राणवलाख। सहस अठ्याणवें ऊपरि भाख ॥
द्वयसो छह जिय छट्ठे थान। परमादी मुनि कहे वखान॥१४॥
अप्रमत्त सप्तम परतक्ष। कोटि दोय अरु छयानव लक्ष ॥
सहस निन्याणव इकसो तीन। एते मुनि संयम परवीन ॥१५॥
उपसम श्रेणि चढै गुणवान। अष्टम नवम दशम गुण थान।
द्वै द्वै सौ निन्याणव कहे। अठ सत्ताणव सब सरदहे ॥१६॥
अष्टम क्षपक पंथ जिय कोय। शतक पंच अठ्ठाणव होय ॥
नवमें गुण थानक जिय जवै। शतक पंच अठ्ठाणव सवें ॥१७॥
दशमें गुण थानक मुनिराय। शतक पंच अठ्ठाणव थाय ॥
एकादश श्रेणी उपशंत। द्वैसौ अरु निन्याणव तंत ॥१८॥
द्वादशमों गुण क्षीण कषाय। पंच अठाणव सब मुनिराय ॥
अब तेरहमें केवल ज्ञान। तिनकी संख्या कहूं वखान॥१९
लाख आठ केवलि जिन सुनो। सहस अठाणव ऊपर गुनो ॥
शतक पंच अरु ऊपर दोय। एते श्री केवलि जिन होय॥२०
अब चौदम अयोग गुण थान। पंच अठवाण सब निर्वान ॥
तेरह गुण थानक जिय लहूं। सबकी संख्या एकहि कहूं॥२१॥
आठ अरब सतहत्तर कोड़। लाख निन्याणव ऊपर जोड़ ॥
सहस निन्याणव नव सौ जान। अरु सत्याणव सब परमान॥२२॥
जब लौं जिय इह थानक माहिं। तब लौं जिय जग वासि कहांहिं॥
इनहि उलंघि मुकतिमें जांहिं। काल अनंतहि तहां रहांहिं॥२३॥
सुख अनंत विलसहिं तिहँ थान। इहि विधि भाख्यो श्रीभगवान॥

भैया सिद्ध समान निहार । निजघट मांहि वहै पद धार॥२४॥
संवत सत्रह सैंतालीस । मारगसिर दशमी शुभ दीस ॥
मंगल करन महा सुखधाम । सब सिद्धनप्रति करूं प्रणाम ॥२५॥

इति श्रीशिवपंथ पचीसिका ।

अथ पन्द्रह पात्रकी चौपाई लिख्यते.

दोहा.

नमहुं देव अरहंतको, नमहुं सिद्ध शिवराय ॥
नमहुं साधुके चरनको, योग त्रिविधिके लाय ॥ १ ॥
पात्र कुपात्र अपात्रके, पंद्रह भेद विचार ॥
ताकी कछु रचना कहूं, जिन आगम अनुसार ॥ २ ॥
तीन पात्र उत्तम महा, मध्यम तीन बखान ॥
तीन पात्र पुनि जघन हैं, ते लीजे पहिचान ॥ ३ ॥
तीन कुपात्र प्रसिद्ध हैं, अरु अपात्र पुनि तीन ॥
ये सब पन्द्रह भेद हैं, जानहु ज्ञान प्रवीन ॥ ४ ॥

चौपाई.

उत्तम माहिं महा अरु श्रेष्ठ । तीर्थंकर कहिये उत्कृष्ट ॥
मुनि मुद्रामें लेहिं अहार । वह दातार लहै भव पार ॥५॥
उत्तम माहिं मध्यके अंग । श्रीगणधर वरने सरवंग ॥
चार ज्ञान संयुक्त प्रधान । द्वादशांगके करहिं बखान ॥६॥
उत्तम माहि जघन्य जु होय । सामान्यहि मुनि वरने सोय ॥
दर्वित भावित शुद्ध अनूप । परम दयाल दिगम्बर रूप ॥७॥
मध्यम पात्र अणुव्रत धार । तिनके तीन भेद विस्तार ॥
दर्वित भावित गुण संयुक्त । रहै पाप किरियासों मुक्त ॥८॥

उत्तम ऐलक श्रावक पास । एक लंगोटी परिग्रह जास ॥
मठ मंडपमें करहि निवास । एकादशम प्रतिज्ञा भास ॥९॥
दूजो श्रावक क्षुल्लक नाम । कुछ अधिको परिग्रह जिहि ठाम॥
पीछी और कमंडल धरै । मध्यम पात्र यही गुण वरै ॥१०॥
अरु दश प्रतिमा धारी जेह । लघु पात्रनमें वरने तेह ॥
इह विधि यह पंचम गुण थान । मध्यम पात्र भेद परवान ॥११॥
अब लघु पात्र कहूं समुझाय । उत्तम मध्यम जघन कहाय ॥
उत्तम क्षायिक समकितवंत । जिनके भावनको नहि अंत॥१२॥
मध्यम पात्र सु उपसम धार । जिनकी महिमा अगम अपार ॥
वेदक समकित जाके होय । लघुपात्रनमें कहिये सोय ॥१३॥
तीन कुपात्र मिथ्याती जीव । द्रव्यलिंग जो धरहिं सदीव ॥
ज्ञान विना करनी बहु करै । भ्रमि भ्रमि भवसागरमें परै॥१४
मुनिकी सम मुद्रा निरधार । सहै परीसह बहु परकार ॥
जीव स्वरूप न जाने भेव । द्रव्य लिंगी मुनि उत्तम एव॥१५
मध्यम पात्र सु श्रावक भेष । दर्वित किरियां करै विशेष ॥
अन्तर शून्य न आतम ज्ञान । मानत है निजको गुणवान॥१६
जघन्य कुपात्र कहूं विख्यात । जाके उर वरतै मिथ्यात ॥
समकितकीसी ऊपर रीति । अंतर सत्य नही परतीति॥१७॥
कहूं अपात्र दुहूं विधि भ्रष्ट । दर्वित भावित क्रिया अनिष्ट ॥
प्ररिग्रहवंत कहावै साधु । मिथ्यामत भाखै अपराध ॥१८॥
श्रावक आप कहै जगमाहिं । श्रावकके गुण एकहु नाहिं ॥
भक्ष्याभक्ष्य न जाने भेद । मध्य अपात्र करै बहु खेद ॥१९॥
जघन अपात्र यहै विरतंत । कहै आपको समकितवंत ॥
निहचै अरु नाहीं व्यवहार । दर्वित भावित दुहुं विधि छार॥२०

दर्वित गुण समकितके जेह। ग्रंथनमें वहु बरने तेह॥
तिहँ माफिक नाही जिहँ चाल। ते मिथ्याती जीव त्रिकाल॥२१॥
भावित समकित जीव सुभाय। सो निहचै जानै मुनिराय॥
कै जानै जो वेदै जीव। ऐसें गणधर कहैं सदीव॥२२॥

दोहा.

इहविधि पन्द्रह पात्रके, गुण निरखै गुणवंत॥
यथा अवस्थित जानके, धारहिं हिरदै संत॥२३॥
निज स्वभाव रसलीन जे, ते पहुँचे शिव ओर।
मिथ्याती भटकत फिरैं, विनवैं दास किशोर॥२४॥

इति पन्द्रह पात्रकी चौपई.

अथ ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी लिख्यते.

दोहा.

असिआउसा जु पंचपद, वंदों शीस नवाय॥
कछु ब्रह्मा अरु ब्रह्मकी, कहूं कथा गुणगाय॥१॥
ब्रह्मा ब्रह्मा सब कहै, ब्रह्मा और न कोय॥
ज्ञान दृष्टि धर देखिये, यह जिय ब्रह्मा होय॥२॥
ब्रह्माके मुखचार हैं, याहूके मुख चार॥
आँख नाक रसना श्रवण, देखहु हिये विचार॥३॥
आँख रूपको देखकर, ग्रहण करै निरधार॥
रागीद्वेषी आतमा, सबको स्वादनहार॥४॥
नाक सुवास कुवासको, जानत है सब भेद॥
राचै विरचै आतमा, यों मुखबोलें वेद॥५॥
रसना षटरस भुंजती, परी रहै मुख मांहि॥
रीझै खीजै आतमा, मुख यातैं ठहराहिं॥६॥

श्रवण शब्दके ग्रहणको, इष्ट अनिष्ट निवास ॥
मुख तो सोही प्रगट है, सुखदुख चाखै तास ॥ ७ ॥
येही चारों मुख बने, चहुं मुख लेय अहार ॥
तातैं ब्रह्मा देव यह, यही सृष्टि करतार ॥ ८ ॥
हृदय कमलपर बैठिकें, करत विविधि परिणाम ॥
कर्त्ता नाही कर्मको, ब्रह्मा आतम राम ॥ ९ ॥
चार वेद ब्रह्मा रचे, इनहू तजे कषाय ॥
शुद्ध अवस्था ये भये, यहै विन शुद्धि कहाय ॥ १० ॥
नाना रूप रचैं नये, ब्रह्मा विदित कहान ।
नाम कर्मजिय संगलै, करत अनेक विनान ॥ ११ ॥
ब्रह्मा सोई ब्रह्म है, यामें फेर न रंच ॥
रचना सब याकी करी, तातें कह्यो विरंचै ॥ १२ ॥
जेते लक्षण ब्रह्मके, ते ते ब्रह्मा माहि ॥
ब्रह्मा ब्रह्म न अंतरो, यों निश्चय ठहराहि ॥ १३ ॥
जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह बात ॥
'भैया' थोरे कथनमें, कही कथा विख्यात ॥ १४ ॥

इति ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी.

अथ अनित्य पचीसिका लिख्यते ।

कवित्त.

नर लोकनके ईश नाग लोकनके ईश, सुरलोकहूके ईश जाको ध्यान ध्यावही । नाय नाय शीस जाहि वंदत मुनीश नित, अतिशै चौतीस ओ अनंत गुण गावही ॥ कौन करै जाकी

---

१ (ब्रह्मा) (२) जीव (३) ब्रह्मा ।

रीस कर्म अरि डारै पीस, लोकालोक जाहि दीस पंथको बताव-ही। ताके चर्ण निश दीश वंदे भविनाय शीस, ऐसे जगदीश पुण्यवंत जीव पावही ॥ १ ॥

दोहा.

परयो कालके गालमें, मूरख करै गुमान ॥
देहै छिनमें दाव जो, निकस जांहिंगे प्रान ॥ २ ॥

कवित्त.

मिथ्यामत नासवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपापर भास-वेको भानसी वखानी है। छहों द्रव्य जानवेको वंधविधि भान वेको, आपापर ठानवेको परम प्रमानी है ॥ अनुभो बतायवेको जीवके जतायवेको काहु न सतायवेको भव्य उर आनी है। जहाँ तहाँ तारवेको पारके उतारवेको, सुख विस्तारवेको यहै जिनवा-नी हैं ॥ ३ ॥

आज काल जम लेत है, तू जोरत है दाम ॥
लक्ष कोटि जो धर चलै, ऐहै कौनै काम ॥ ४ ॥

कवित्त.

पंच वर्ण वसनसो पंच वर्ण धूलि शाल, मान थंभ सत्य वैन देखे मांन नाश है। दयाको निवास सोही वेदीको प्रकाश लसै, रूपेको जु कोट सु तौ नो करम भास है ॥ द्रव्य कर्म नाम हेम कोट मध्य राजत है, रतनको कोट भाव कर्मको विलास है। ताके मध्य चेतन सु आप जगदीस लसै, समोसर्न ज्ञानवान देखै निजपास है ॥ ५ ॥

लागो है जम जीवको, वोलत ऐसें गाजि ॥
आज कालमें लेत हूं, कहाँ जाहुगे भाजि ॥ ६ ॥

देखहुरे दच्छ एक वात परतच्छ नयी, अच्छनकी संगति विचच्छन भुलानो है। वस्तु जो अभच्छ ताहि भच्छत हैं रैन दिन, पोषवेको पच्छ करे मच्छ ज्यों लुभानो है॥ विनाशीक लच्छ ताहि चच्छुसों विलोकै थिर, वहै जाय गच्छ तव फिरै ज्यों दिवानो है। स्वच्छ निज अच्छको विलच्छकै न देखै पास, मोह जच्छ लागे वच्छ ऐसो भरमानो है॥ ७॥

जगहिं चलाचल देखिये, कोउ सांझ कोउ भोर॥
लाद लाद कृत कर्मको, ना जानों किहि ओर॥ ८॥

नरदेह पाये कहा पंडित कहाये कहा, तीरथके न्हाये कहा तीर तो न जैहै रे। लच्छिके कमाये कहा अच्छके अघाये कहा, छत्रके धराये कहा छीनता न ऐहै रे॥ केशके मुंडाये कहा भेषके वनाये कहा, जोवनके आये कहा जराहू न खैहै रे। भ्रमको विलास कहा दुर्जनमें वास कहा, आतम प्रकाश विन पीछें पछितैहै रे॥ ९॥

दुःखित सब संसार है, सुखी लखै नहिं कोय॥
एक सुखित जिन धर्म है, जिहँ घट परगट होय॥ १०॥

नरदेह पाये कहो कहा सिद्धि भई तोहि, विषै सुख सेयें सव सुकृत गमायो है। पंच इन्द्रि दुष्ट तिन्हें पुष्टकर पोष राखै, आय गई जरा तब जोर विललायो है॥ क्रोध मान माया लोभ चारों चित रोक वैठे, नरक निगोदको संदेसो वेग आयो है। खाय चल्यो गांठको कमाई कोडी एक नाहिं, तोसो मूढ दूसरो न ढूंढ्यो कहूं पायो है॥ ११॥

जाके परिग्रह बहुत है, सो वहु दुखके माहिं॥
विन परिग्रहके त्यागतैं, परसों छूटै नाहिं॥ १२॥

थानी ह्वैके मानी तुम थिरता विशेष इहां, चलवेकी चिंता कछू है कि तोहि नाहिने । जोरत हो लच्छ बहु पाप कर रैन दिन, सो तो परतच्छ पांय चलवो उवाहिने ॥ घरीकी खवर नाहिं सामो सौ वरप कीजै, कौन परवीनता विचार देखो काहिने। आतमके काज विना रज सम राज सुख, सुनो महाराज कर कान किन? दाहिने ॥ १३ ॥

शयन करत है रयनको, कोटिध्वज अरु रंक ॥
सुपनेमें दोऊ एकसे, वरतें सदा निशंक ॥ १४ ॥

मात्रिक कवित्त.

नटपुर नाम नगर इक सुंदर, तामें नृत्य होंहिं चहुं ओर ।
नायक मोह नचावत सवको, ल्यावत स्वांग नये नित जोर ॥
उछरत गिरत फिरत फिरकी दै, करत नृत्य नानाविधि घोर ।
इहि विधि जगत जीव सव नाचत, राचत नाहिं तहां सु किशोर॥१५॥

कर्मनके वस जीव है, जहँ खैंचे तहँ जाय ॥
ज्यों हि नचावे त्यों नचे, देख्यो त्रिभुवनराय ॥ १६ ॥

मात्रिक कवित्त.

इंद्र हरे जिहँ चन्द्र हरे, सुरवृन्द्र हरे असुरादिक जोय ।
ईश हरे अवनीस हरे, चक्रीश हरे वलि केशव दोय ॥
शेष हरे पुर देश हरे सव, भेस हरे थितिकी गत खोय ।
दास कहै शिवरास विना, इहि काल वलीसों वली नहिं कोय ॥१७

एक धर्म जिनदेवको, वसै जासु उर माहिं ॥
ताकी सरवर जगतमें, और दूसरो नाहिं ॥ १८ ॥

कवित्त.

पूरवही पुण्य कहूं किये हैं अनेक विधि, ताके फल उदै आज

नर देही पाई है। इहां आय विषै रस लाग्यो अति नीको तोहि, ताके संग केलि करै यहै निधि पाई है ॥ आगें अब कहा गति ह्वै है चिदानंद राय, चलवेकी थिति सांझ भोर माहि आई है। साथ कौन संबल न सत्तू कछु लेत मूढ, आगें कहा तोहि सुख सेज ले बिछाई है ॥ १९ ॥

द्वै द्वै लोचन सब धरैं, मणि नहिं मोल कराहिं ॥
सम्यकदृष्टी जौंहरी, विरले इहि जगमाहिं ॥ २० ॥

कवित्त.

वर्ष सौ पचास माहिं एते सब मरजाहिं, जे ते तेरी दृष्टिविषै देखतु है बावरे। इनमेंको कोऊ नाहिं बचवेको काल पाँहिं, राजा रंक क्षत्री और शाह उमराव रे ॥ जमहीकी जमा मांहि घरी पल चले जांहिं, घटै तेरी आव कछु नाहिं को उपावरे। आज कालिह तोहूको समेट काल गाल माहिं, चावि जैहै चेत देख पीछें नाहिं दावरे ॥ २१ ॥

जो वानी सर्वज्ञकी, तामें फेर न सार ॥
कल्पित जो काहू कही, तामें दोष अपार ॥ २२ ॥

जाके होय क्रोध ताके बोध को न लेश कहूं, जाके उर मान ताके गुरु को न ज्ञान है। जाके मुख माया वसै ताके पाप केई लशै, लोभके धरैया ताको आरतको ध्यान है ॥ चारों ये कषाय सु तौ दुर्गति ले जाय 'भैया,' इहां न वसाय कछु जोर बल प्रान है। आतम अधार एक सम्यक प्रकार लशै, याहीतैं उधार निज थान दरम्यान है ॥ २३ ॥

आप निकट निज दृगनितैं, विकट चर्म दृग दोय ॥
जाके दृग जैसें खुलै, तैसो देखै सोय ॥ २४ ॥

अरे भव्य प्रानी जो तैं जाति निज जानी तो तू, लखि जिनवानी जामें मोक्षकी निसानी है । काहूले कुवुद्धि सानी यामें विपरीत आनी, ताहि जो पिछानी तो तू भयो ब्रह्म ज्ञानी है। जाके नांव और ठानी द्वादशांगकै वखानी, वपुरे अज्ञानी ताकी वुद्धि भरमानी है। ठौर ठौर कानी जामै रहै नाहिं सत्य पानी, कूरनके मनमानी कलिकी कहानी है ॥ २५ ॥

दोहा.

यह अनित्यपच्चीसिके, दोहा कवित निहार ॥
भैया चेतहु आपको, जिनवानी उर धार ॥ २६ ॥

इति अनित्यपचीसिका.

अथ अष्टकर्मकी चौपई लिख्यते।

दोहा.

नमो देव सर्वज्ञको, वीतराग जस नाम ॥
मन वच शीस नवाइकें, करों त्रिविधिपरणाम ॥ १ ॥

चौपाई.

एक जीव गुण धरै अनंत । ताको कछु कहिये विरतंत ॥
सव गुण कर्म अछादित रहैं । कैसें भिन्न भिन्न तिहँ कहैं ॥ २ ॥
तामें आठ मुख्य गुन कहे । तापै आठ कर्म लगि रहे ॥
तिन कर्मनकी अकथ कहान । निहचैं तो जाने भगवान ॥ ३ ॥
कछु व्यवहार जिनागम साख । वर्णन करौं यथारथ भाख ॥
ज्ञानावरन कर्म जव जाय । तव निज ज्ञान प्रगट सव थाय ४
ताके पंच भेद विस्तार । तथा अनंतानंत अपार ॥
जैसें कर्म घटहि जिहँ थान । तैसो तहाँ प्रगट है ज्ञान ॥५॥

जैसो ज्ञान प्रगट है जहाँ। तैसी कछु जानै जिय तहाँ ॥
दूजो दर्शआवरण और। गये जीव देखहिं सब ठौर ॥ ६ ॥
ताकी नौ प्रकृती सब कही। तामें शक्ति सवहि दवि रही ॥
जैसो घटै आवरन जोय। तैसो तहँ देखै जिय सोय ॥७॥
निरावाध गुण तीजो अहै। ताहि वेदनी ढांके रहै ॥
साता और असाता नाम। तामहि गर्भित चेतन राम ॥८॥
जैसी द्वै प्रकृती घट जाय। तैसी तहँ निर्मलता थाय ॥
जबहि वेदनी सब खिर जाय। तब पंचमि गति पहुंचै आय ॥९
चौथो महा मोह परधान। सब कर्मनमें जो वलवान ॥
समकित अरु चारित गुणसार। ताहि ढकै नाना परकार ॥१०॥
जहँ जिम घटहि मोहकी चाल। तहँ तिम प्रगट होय गुणमाल ॥
ज्यों ज्यों घटै मोह जियपास। त्यों त्यों होय सत्य गुणवास ११
ताकी वीस आठ विधि कही। यथा योग्य थानक सरदही ॥
जगमें जंतु बसै चिरकाल। सो सब मोह अछादित बाल १२
मोह गये सब जानै मर्म। मोह गये प्रगटै निजधर्म ॥
मोह गये केवलिपद होय। मोह गये चिर रहै न कोय ॥१३॥
पंचम आयुकर्म जिन कहै। अवगाहन गुण रोके रहै ॥
जब वे प्रकृति आवरण जाहिं। तब अवगाहन थिर ठहराहिं १४
ताकी चार प्रकृति जगनाम। जाके गये लहै शिवधाम ॥
नाम कर्म षष्ठम विरतंत। करहि जीवको मूरतिवंत ॥१५॥
अमूरतीक गुण जीव अनूप। तापै लगी प्रकृति जड़रूप ॥
पुद्गल लगै कहावें जीव। एकेंद्र्यादिक पंच सदीव ॥१६॥
उदय योग नाना परकार। चेतन वसै शरीरमझार ॥
जैसें तनमें करहि निवास। तैसो नाम लहै जिय तास ॥१७॥

तनकी संगति कष्ट अपार। सहैं जीव संकट बहु वार ॥
जामन मरन अनंता करैं। ताके दुख कहु को उच्चरै ॥१८॥
प्रकृति त्राणवें ताकी कही। जगत मूल येही बनि रही ॥
जब ये प्रकृति सबहि खिरजाहिं। तबहि अरूपी हंस कहाहिं ॥१९॥
सप्तम गोत करम जिय जान। ऊंचनीच जिय यही बखान ॥
गुण जु अगुरु लघु ढाँके रहै। तातैं ऊंचनीच सब कहै ॥ २० ॥
जब ये दोउ आवरन जांहिं। तब पहुंचै पंचमिगतिमाहिं ॥
अष्टम अन्तराय अरि नाम। बल अनंत ढाँकै अभिराम॥२१॥
शकति अनंती जीव सुभाय। जाके रुंदे न परगट थाय ॥
ज्यों ज्यों घटहि आवरण कही। त्यों त्यों प्रगट होय गुण सही २२
पांच जातिके विकट पहार। याकी ओट सबै सुख सार ॥
इन बिन गये न पावै मूल। इन विन गये रह्यो जिय भूल २३
ये सबही सुखके दरबान। येही सबके आगेवान ॥
जब ये अंतराय मिट जाहिं। तब चेतन सब सुखके माहिं॥२४॥

दोहा.

येही आठों कर्ममल, इनमें गर्भित हंस ॥
इनकी शकति विनाशकै, प्रगट करहि निज वंस ॥ २५ ॥
इहिविधि जीव अनन्त सब, वसत यही जगमाहिं ॥
इनहिँ त्याग निर्मल भये, ते शिवरूप कहाहिं ॥ २६ ॥
'भैया' महिमा ब्रह्मकी, ऐसे वनी अनाद ॥
यथा शक्ति कछु वरणयी, जिन आगम परसाद ॥ २७ ॥

इति अष्टकर्मकी चौपई.

अथ सुपंथकुपंथपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

केवल ज्ञान स्वरूपमें, राजत श्री जिनराय ॥
तास चरन वंदन करहुं, मन वच शीस नवाय ॥ १ ॥
कहूं सुपंथ कुपंथ के, कवित पचीस बखान ॥
जाके समुझत समझिये, पंथ कुपंथ निदान ॥ २ ॥

कवित्त.

तेरो नाम कल्पवृच्छ इच्छाको न राखै उर, तेरो नाम कामधेनु कामना हरत है। तेरो नाम चिन्तामन चिन्ताको न राखै पास, तेरो नाम पारस सो दारिद डरत है॥ तेरो नाम अम्रत पियेतैं जरा रोग जाय, तेरो नाम सुखमूल दुःखको दरत है। तेरो नाम वीतराग धरै उर वीतरागा, भव्य तोहि पाय भवसागर तरत है॥३॥

सुन जिनवानी जिहँ प्रानी तज्यो राग द्वेष, तेई धन्य धन्य जिन आगममें गाये हैं। अमृतसमानी यह जिहँ नाहिं उर आनी, तेई मूढ प्रानी भवभाँवरि भ्रमाये हैं॥ याही जिनवानीको सवाद सुख चाखो जिन, तेही महाराज भये करम नसाये हैं। तातैं दृग खोल 'भैया' लेहु जिनवानी लखि, सुखके समूह सब याहीमें बताये हैं ॥ ४ ॥

अपने स्वरूपको न जानै आप चिदानंद, वहै भ्रम भूलि वहै मिथ्या नाम पावै है। देव गुरु ग्रन्थ पंथ सांचको न जाने भेद, जहाँ तहाँ झूठे देख मान शीस नावै है॥ चेतन अचेतन है हिंसा करै ठौर ठौर, वापुरे विचारे जीव नाहक सतावै है। जलके न थलके

न पौन अग्नि फलके न, त्रसनि विराधि मूढ मिथ्याती कहावै हैं ॥ ५ ॥

केई भये शाह केई पातशाह पहुमिपैं, केई भये मीर केई बडे ही फकीर हैं। केई भये राव केई रंक भये बिललात, केई भये काय र औ केई भये धीर हैं॥ केई भये इन्द्र केई चन्द्र छविवंत लसैं, केई भये पौन अरु केई भये नीर हैं। एक चिदानंद केई स्वांगमें कलोल करैं, धन्य तेही जीव जे भये तमासगीर हैं ॥ ६ ॥

सवैया.

परमान सबै विधि जानत है, अरु मानत है मत जे छह रे।
किरिया कर कर्मनि जोरत हैं, नहिं छोरत है भ्रमजे पहरे॥
उपदेश करैं व्रत नेम धरैं, परभावनको उर नाहिं हरे।
निज आतमको अनुभौ न करैं, ते परे भवसागरमें गहरे ॥ ७ ॥

सवैया मात्रिक.

दुर्भर पेट भरनके कारन, देखत हो नर क्यों बिललाय।
झूठ सांच बोलत याके हित, पाप करत नहिं नेक डराय॥
भक्ष्य अभक्ष्य कछू न विचारत, दिन अरु रात मिलै सो खाय।
उत्तम नरभव पाय अकारथ, खोवत वादि जनम सब आय ॥ ८ ॥

कवित्त.

करता सबनके करमको कुलाल जिम, जाके उपजाये जीव जगतमें जे भये। सुर तिरजंच नर नारकी सकल जंतु, रच्यो ब्रह्मांड सब रूपके नये नये॥ तासों वैर करवेको प्रगटे कहांसों आय, ऐसे महा बली जिहँ खातिरमें ना लये। ढूंढै चहुं ओर नहिं पावै कहूं ताको ठोर, ब्रह्माजूकी सृष्टिको चुराय चोर लै गये॥९॥

चौंपरके खेलमें तमासो एक नयो दीसै, जगतकी रीति सब

याहीमें बनाई है। चारों गति चारों दाव फिरबो दशा विभाव, कर्मवर्ती जीव सार मिल विछुराई है॥ तीनो योग पांसे परैं ताके तैसे दाव परे, शुभ ओ अशुभ कर्म हार जीत गाई है। फिरवो न रह्यो जब कर्म खप जांहिं सब, पंचमि गति पावै ये 'भैया' प्रभुताई है॥ १०॥

देहके पवित्र किये आतमा पवित्र होय, ऐसे मूढ भूल रहे मिथ्याके भरममें। कुलके आचारको विचारै सोई जानै धर्म, कंद मूल खाये पुण्य पापके करममें॥ मूंडके मुंडाये गति देहके द-गाये गति, रातनके खाये गति मानत धरममें। शस्त्रके धरैया देव शास्त्रको न जानै भेव, ऐसे हैं अवेव अरु मानत परम में॥ ११॥

नदीके निहारतही आतमा निहार्‍यो जाय, जो पै कोउ ज्ञान-वंत देखै दृष्टि धरकें। एक नीर नयो आय एक आगें चल्यो जाय, इहां थिर ठहराय रह्यो पूर भरकें॥ ताहूमें कलोल कई भांतिकी तरंग उठै, विनसै पुनि ताहूमें अनेकधा उछरिकें। तैसें इह आतममें कई परिणाम होय, ऐसे परवान है अनंत शक्ति करकें १२

जगतकै जीवन जिवावै जगदीश कोउ, वाकी इच्छा आवै तव मार डारियतु है। वाहीके हुकुम सेती काज सब करै जीव, वि-ना वाके हुकम न तृण डारियतु है॥ करता सवनके करमनको वही आप, भोगता दुहूमें कौन जो विचारियतु है। करता सो भोगता कि करै और भुँजै और, याको कछु उत्तर न सूधो धारियतु है॥ १३॥

जोलों यह जीवके मिथ्यात्व दृष्टि लगि रही, तौलों सांच झूंठ सूझै झूंठ सूझै सांच है। राग द्वेष विना देव ताहि कहै रागी देव, जीवको न जाने भेव, मानै तत्त्व पांच है॥ वस्तुके स्वभावको

न जान्यो यह सांचो धर्म, किरियाको धर्म मानै मदिराकी मांच है। सत्यारथ वानी सरवज्ञने पिछानी 'भैया,' ताहि न पिछानी तोलों नाचे कर्म नाच है ॥ १४ ॥

कोऊ कहै सूर सोम देव हैं प्रत्यक्ष दोऊ, कोउ कहै रामचन्द्र राखै आवागौनसों। कोउ कहै ब्रह्मा बडो सृष्टिको करैया अहै, कोउ कहै महादेव उपज्यो न जौनसों॥ कोउ कहै कृष्ण सव जीव प्रतिपाल करै, कोउ लगि रहे हैं भवानी जू के भौनसों। वही उपाख्यान सांचो देखिये जहांन वीचि, वेश्याघर पूत भयो वाप कहै कौनसों ॥ १५ ॥

सवैया इकतुकिया.

निश द्यौस यहै मन लाग्यो रहै, सु मुनिन्द्रके पांय कवै परसों।
जिन देवके देखनकी रटनाजु, कहों किम जाहुं विना परसों॥
कवधों शिवलोकमें जाय वसों, सुख संधि लहों सजिकें परसों।
कव जोग मिलै इम इच्छित है भवि, आज कै कालिह किधों परसों १६

कवित्त.

जाके कुल धर्म मांहिं सरवज्ञ देव नाहिं, पूछत ते कौन पांहि हिर दैकी वातको। संशै उर पूरि रहै ज्ञान गुण दूर रहै, महातम भूरि रहै लखै सार गातको॥ मिथ्याकी लहरि आवै सांच कौ न पंथ पावै, जहां तहां भूलि धावै करै जीव घातको। झूठो ही पुरान मानै झूठे देव देव ठानै, जैसें जन्म अन्ध नर देखै ना प्रभातको ॥ १७॥

राजाके परजा सव वेटा वेटीकी समान, यह तो प्रत्यक्ष वात लोकमें कहान है। आप जगदीस अवतार धऱ्यो धरनी पैं, कुंज निमें केल करी जाको नाम कान्ह है॥ परमेश्वर करै पर वधू सों

अनाचार, कहते न आवै लाज ऐसो ही पुरान है। अहो महाराज यह कौन काज मत कीनो, जगतके डोविवेको ऐसो सरधान है ॥१८॥

स्त्रीरूपवर्णन—मात्रिक कवित्त.

बडी नीत लघु नीत करत है, वाय सरत बदवोय भरी ।
फोडा बहुत फुनगणी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी ॥
शोणित हाड मांस मय मूरत, तापर रीझत घरी घरी ।
ऐसी नारि निरखिकर केशव! 'रसिकाप्रिया' तुम कहा करी१९

सवैया. (मत्तगयन्द)

जो जगको सब देखत है-तुम, ताहि विलोकिकें काहे न देखो ।
जो जगको सब जानतु है, तुम ताहि जु जानो तो सूधो हैं लेखो ॥
जो जगमें थिर है सुखमानत, सो सुख वेदत कौन विशेखो ॥
है घटमें प्रगटै तवही, जवही तुम आप निहारके पेखो ॥ २० ॥

कुपंथ वर्णनकवित्त.

सोई तो कुपंथ जहां द्रव्यको न जाने भेद, सोईतो कुपंथ जहां लागि रहे परसैं । सोई तो कुपंथ जहां हिंसामें वखाने धर्म, सोई तो कुपंथ जहाँ कहै मोक्ष घरसें ॥ सोई तो कुपंथ जो कुशीली-पशु देव कहै, सोई तो कुपंथ जो कुलिंगी पूजै डरसें । सोई तो कुपंथ जो सुपंथ पंथ जानै नाहिँ, विना पंथ पाये मूढ कैसें मोक्ष दरसै ॥ २१ ॥

---

(१) दंतकथामें प्रसिद्ध है कि केशवदासजी कवि जो किसी स्त्रीपर मोहित थे उन्होंनें उसके प्रसन्नार्थ 'रसिकप्रिया' नामका ग्रंथ वनाया. वह ग्रंथ समालोचनार्थ 'भैया' भगोतीदासजीके पास भेजा तो उसकी समालोचनामें यह कवित्त रसिकप्रियाके पृष्ठपर लिखकरकें वापिस भेज दिया था.(२) गौ आदिक कुशीली पशुओंको देव मानते है.

झूठो पंथ सोई जहां झूठे देव देव कहै, झूठे पंथ सोई जहां झूठे गुरु मानिये। झूठो पंथ सोई जहां ग्रंथ सव झूंठे वचें, झूठो पंथ सोई जहां भ्रमको वखानिये॥ झूठो पंथ सोई जहां दयाको न जाने भेद, झूंठो पंथ सोई जहां हिंसाको प्रमानिये। झूठे पंथ चले तव कैसें मोक्ष पावें अरु, विना मोक्षपाये 'भैया' सुखी कैसें जानिये ॥ २२ ॥

सुपन्थवर्णन सवैया.

पंथ वहै सरवज्ञ जहां प्रभु, जीव अजीवके भेद वतैये।
पंथ वहै जु निग्रन्थ महामुनि, देखत रूप महासुख पैये॥
पंथ वहै जहँ ग्रंथ विरोध न, आदि ओ अंतलों एक लखैये।
पंथ वहै जहँ जीवदयावृप, कर्म खपाइकें सिद्धमें जैये ॥ २३ ॥
पंथ वहै जहँ साधु चलै, सव चेतनकी चरचा चित लैये।
पंथ वहै जहँ आप विराजत, लोक अलोकके ईश जु गैये॥
पंथ वहै परमान चिदानंद, जाके चलै भव भूल न ऐये।
पंथ वहै जहँ मोक्षको मारग, सूधे चले शिवलोकमें जैये ॥२४॥

कवित्त.

केवलीके ज्ञानमें प्रमाण आन सव भासै, लोक ओ अलोकन की जेती कछु वात है। अतीत काल भई है अनागतमें होयगी; वर्तमान समैकी विदित यों विख्यात है॥ चेतन अचेतनके भाव विद्यमान सवै, एक ही समैमें जो अनंत होत जात है। ऐसी कछु ज्ञानकी विशुद्धता विशेप वनी, ताको धनी यहै हंस कैसें विललात है ॥ २५ ॥

छयानवें हजार नार छिनकमें दीनी छार, अरे मन ता निहार

काहे तू डरत है। छहों खंडकी विभूति छाडत न वेर कीन्ही, चमू चतुरंगनसों नेह न धरत है॥ नौ निधान आदि जे चउदह रतन त्याग, देह सेती नेह तोर वन विचरत है। ऐसी विभो त्यागत विलंब जिन कीन्हों नाहिं, तेरे कहो केती निधि सोच क्यों करत है॥ २६॥

दोहा.

यहै सुपंथ कुपंथके, कवित पचीस प्रसिद्ध॥
'भैया' पढत विवेकसों, लहिये आतमरिद्ध॥ २७॥

इति सुपंथकुपंथपचीसिका.

अथ मोहभ्रमाष्टक लिख्यते।

दोहा.

परम पूज्य सर्वज्ञ है, तारन तरन त्रिकाल॥
तासु चरन वंदन करों, छांडि सु आल जँजाल॥ १॥
एक मोहकी मगनसों, भ्रमत सवहि संसार॥
देखै अरु समझै नहीं, ऐसो गहल गँवार॥ २॥

कवित्त.

मोहके भरमसों करम सब करै जीव, मोहकी गहलमें जगत सब गाइये। मोह धरै देह परनेह परसों जु करै, भरमकी भूलमें धरम कहां पाइये॥ चरमकी दृष्टिसों परम कहूं पेखियत, मोहहीकी भूल यह भरम भ्रमाइये। चेतन अचेतनकी जाति दोऊ भिन्न भिन्न, मोह एकमेक लखै 'भैया' यों बताइये॥ ३॥

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों एक रूप, कहै परमेश्वरके अंशके बनाये हैं। विरंचि औ शंकरने आपुसमें युद्ध कीनो, खरशी-

स छेदन सु ग्रथनिमें गाये हैं ॥ विष्णु आप आय अवतार लीनों जलमाहिं, जल कहो काहे पैं हो काहु न बताये हैं। सृष्टि रची पीछेंकर पहिले पौन पानी होंहिं, इतनोहू ज्ञान नाहिं ऐसे भरमाये हैं ॥ ४ ॥

कान्ह करी कुंजनमें केलि परनारिनसों, ऐसे व्यभिचारिनको ईश कैसें कहिये । महादेव नागे होय नाचैं सो प्रसिद्ध वात, तऊ न लजात कहै ईश अंश लहिये ॥ ब्रह्माने तिलोत्तमाको देख मुख चार कीन्हे, इतनों विचार नाहीं इन्हैं ऐसी चहिये । कहत हैं ईश जगदीश ए वनाये आप, इनहीके चरण त्रिकाल गहि रहिये ॥ ५ ॥

अर्जुनको तीनों लोक मुखमें दिखाये जिन, प्रद्युमन हरे सुधि कहूं न लहत हैं । शंकर जु शीस काट ढूंढत गणेशहू को, तीन लोक में न कहूं गज ले गहत हैं॥ ब्रह्मा जू की सृष्टिको चुराय जब गये चोर, तीन लोक करे तापैं ढूंढत रहत हैं । रामचंद्र सीता सुधि पूछै पशुपक्षीनपैं, ताको लोक जगतके ईश्वर कहत हैं ॥ ६ ॥

मच्छको स्वरूप धर गये जो पताल माहिं, चारों वेद चोर पास आन यहां धरे हैं । कच्छ ह्वै अठासी लक्ष योजनकी देह धरी, छोटेसे समुद्रमें मथान पीठ करे हैं ॥ पृथ्वीको पताल तैं लै आये आप सूअर ह्वै, सिंहको स्वरूप धार हिर्णाकुश हरे हैं । परमेश पर्मगुरु अविनाशी जोतरूप, ताहि कहैं पशु देह आय अवतरे हैं ॥ ७ ॥

राम औ परशुराम आपुसमें युद्ध कीनों, दोऊ अवतारी अंश ईश्वरके लेरे हैं । कृष्ण अवतार माहिं तीन लोक राखत है, द्वा-

रका न राखसके जादों सब जरे हैं ॥ बौद्ध ह्वै विचारे मूढ मांस भक्षी कीने सब, पापपिंड भर भर नर्क माहिं परे हैं । बावन ह्वै जाच्यो बलि ईश्वर ह्वै लीन्हों छलि, अजहूं पातालद्वारपाल भये खरे हैं ॥ ८ ॥

मात्रिक कवित्त.

पंचम गुण थानक जो श्रावक, उतकृष्टी प्रतिमा धर होय ।
सचित त्याग ताको जिन बोलत, एक सु पट परिग्रहमें जोय ॥
साधु चतुर्दश परिग्रह राखहिं, पचखानन महिं एक न दोय ।
तीर्थंकर लहि उड़द बाकुले, कहत लाज नहिं आवै लोय ॥ ९ ॥

कवित्त.

बापुरे विचारे मिथ्यादृष्टि जीव कहा जानैं, कौन जीव कौन कर्म कैसें के मिलाप है । सदा काल कर्मनसों एकमेक होय रहे. भिन्नता न भासी कौन कर्म कौन आप है ॥ यह तो सर्वज्ञ देव देख्यो भिन्न भिन्न रूप, चिदानंद ज्ञानमयी कर्म जड़ व्याप है । तिहँ भाति मोह हीन जानै सरधानवान, जैसो सर्वज्ञ देखो तैं सोही प्रताप है ॥ १० ॥

दोहा.

मोहभ्रमाष्टक कवितके, दोप न लीज्यो मित्त ॥
'भैया' हृदय विवेकधर, कीज्यो निर्मल चित्त ॥ ११ ॥

इति मोहभ्रमाष्टक ।

अथ आश्चर्यचतुर्दशी लिख्यते ।

दोहा.

नमों पदारथ सार को, निज अनुभूति प्रकाश ॥
सर्व द्रव्य व्यापी प्रभू, केवल ज्ञान प्रकाश ॥ १ ॥

कवित्त.

देहधारी भगवान करै नाहीं खान पान, रहै कोटि पूरवलों जगमें प्रसिधि है। बोलत अमोल बोल जीभ होठ हालै नाहिं, देखै अरु जानै सब इन्द्री न अवधि है। डोलत फिरत रहै डग न भरत कहै, परसंग त्यागी संग देखो केती रिधि है। ऐसी अचरज बात मिथ्यां[1] उर कैसें मात, जानै सांची दृष्टिवारो जाके ज्ञाननिधि है ॥ २ ॥

देखत जिनंदजूको देखत स्वरूप निज, देखत है लोकालोक ज्ञान उपजायके। बोलत है बोल ऐसे बोलत न कोउ ऐसें, तीन लोक कथनको देत है बतायके ॥ छहों काय राखिवेकी सत्य वैन भाखिवेकी, पर द्रव्य नाखिवेकी कहै समुझायके। करम नसायवेकी आप निधि पायवेकी, सुखसों अघायवेकी रिद्धि दै लखायके ॥ ३ ॥

वहिर्लापिका—छप्पय.

कहा सरसुतिके कंध? कहो छिन भंगुर को है?।
काननको कहा नाम? बहुतसों कहियत जो है? ॥
भूपतिके संग कहा? साधु राजै किहँ थानक?।
लच्छिय विरथी कहाँ? कहा रेसम सम वानक? ॥
श्रेयांस राय कीन्हों कहा? सो कीजे भविजन ददा।
सब अर्थ अंत यह तंत सुन, वीतराग सेवहु सदा ॥ ४ ॥

भावार्थ—सु न वी त रा ग से व हो स दा—इसके तीसरे और दूसरे अक्षरसे वीन, चौथे और दूसरेसे तन, पांचवें दूसरेसे रान, छटवें दूसरेसे गन, सातवें

(१) मिथ्यातीके.

दूसरेसे सेन, आठवें दूसरेसे वन, नवमें दूसरेसे हो न, दशवें दूसरेसे सन, और ग्यारहवें दूसरेसे दान, बनकर सब प्रश्नोंके उत्तर निकलते हैं ।

अन्तर्लापिका–छप्पय ।

कहो धर्म कब करै? सदा चितमें क्या धरिये? ।
प्रभु प्रति कीजे कहा? दानको कहा उचरिये? ॥
आस्रव सों किम जीत? पंच पदकों कहा गहिये? ॥
गुरु शिक्षा किम रहै? इन्द्र जिनको कहा कहिये ॥
सब प्रश्न वेद उत्तर कहत, निज स्वरूप मनमें धरो ।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, सदा दया पूजा करो॥५॥

भावार्थ—सदा दया पूजा करो–इस पदके चार शब्दों में तो पहिले चार प्रश्नोंका उत्तर मिलता है. जैसे धर्म कब करै? सदा, चित्तमें सदा क्या रक्खें? दया आदि, और अन्तके चार प्रश्नोंका उत्तर इन्हीं चार शब्दोंको उलटे पढनेसे (रोक, जापु, याद, दास) से निकलता है.

अन्तर्लापिका छप्पय.–

मन्दिर बनवावो? मूर्ति, लाव–?सैना सिंगारहु? ।
अम्बु आन? वासर प्रमाण,? पहुँची नग धारहु? ॥
मिश्री मंगवा? कुमुद, लाव? सरसी तन पिक्खहु?।
तौल लेहु? दत लच्छि, देहु? मुनि मुद्रा सिक्खहु? ॥
सब अर्थ भेद भैया कहत, दिव्य दृष्टि देखहु खरी ।
आकृत्रिम प्रतिमा निरखतसु, करि न घरी न भरी धरी ॥

भावार्थ–प्रथम द्वितीय और तृतीय प्रश्न के उत्तर 'करी न' इस शब्दके तीन अर्थ करने से निकलते है (१ कड़ी नहीं है २ बनवाई नहीं, ३ हाथी नहीं.) दूसरे पादके चौथे पांचवें छटवें प्रश्नके उत्तर 'घरी न' इस शब्दके

तीन अर्थ (१ घड़ा नहीं, घड़ी (वाच) नहीं, ३ बनी नहीं.) इस प्रकार करनेसे निकलते हैं तृतीय पादके तीन प्रश्नोंका उत्तर भरी न के तीन अर्थ (१ भरी नहीं गई २ भरी नहीं, ३ जलसे भरी नहीं) से निकलता है. और चतुर्थ पादके प्रश्नोंका उत्तर 'धरी न' के तीन अर्थ (१ पंसेरी नहीं,२ रक्खी नहीं है ३ धारण नहीं की,) निकालनेसे मिलता है ॥ ६ ॥

प्रश्न. दोहा.

पूछत है जन जैनको, चिदानंदसों वात ॥
आये हो किस देशतैं, कहो कहां को जात ॥ ७ ॥

देश तो प्रसिद्ध है निगोद नाम सिंधुमहा, तीनसे तेताल राजु जाको परमान है। तहांके वसैया हम चेतनके वसवारे, वसत अनादिकाल वीत्यो विन ज्ञान है ॥ तहांतैं निकस कोऊ कर्म शुभ जोग पाय, आये हम इहां सुने पुरुप प्रधान है। ताके पाँय परवेको महाव्रत धरवेको, शिप्य संग करवेको चलिवो निदान है ॥ ८॥

एक दिन एक ठौर मिले ज्ञान चारितसों, पूछी निज वात कहां रावरो निवास है। वोले ज्ञान सत्यरूप चिदानंद नाम भूप, असंख्यात परदेश ताके पुरवास है ॥ एक एक देशमें अनंत गुण ग्राम वसै, तहांके वसैया हम चरणोंके दास हैं। तूहू चल मेरे संग दोऊं मिलि लूटैं सुख, मेरे आँख तेरे पांय मिलो योग खास है ॥ ९ ॥

लाल वस्त्र पहिरेसों देह तो न लाल होय, लाल देह भये हंस लाल तौ न मानिये। वस्त्रके पुराने भये देह न पुरानी होय, देहके पुराने जीव जीरन न जानिये ॥ वसनके नाश भये देहको

न नाश होय, देहके न नाश हंस नाश न वखानिये। देह दर्व पुद्गलकी चिदानंद ज्ञानमयी, दोऊ भिन्न भिन्न रूप 'भैया' उर आनिये ॥ १० ॥

मात्रिक कवित्त.

ग्यारह अंग पढे नव पूरव, मिथ्या वल जिय करहिं वखान।
दे उपदेश भव्य समुझावत, ते पावत पदवी निर्वान ॥
अपने उरमें मोह गहलता, नहिं उपजै सत्यारथ ज्ञान।
ऐसे दरवश्रुतके पाठी, फिरहिं जगत भाखैं भगवान ॥ ११ ॥

प्रश्न कवित्त. (अर्द्धाली)

दर्शन भ्रष्ट भ्रष्ट सोई चेतन, दर्शन भ्रष्ट मुक्त नहिं होय।
चारित भ्रष्ट तरे भवसागर, यह अचरज पूछत शिशु कोय ॥१२

उत्तर चौपाई.

तेरह विधि चारित जो धरैं। तिहँ विन तजे न भवदधि तरैं ॥
जब ये भाव करहिं उर नाश। तव जिय लहै मोक्षपद वास॥१३

कवित्त.

मांस हाड़ लोहू सानि पूतरी वनाई काहु, चामसों लपेट तामें रोम केश लाये हैं। तामैं मलमूत भर कृमि केई कोटि धर, रोग संचै कर कर लोकमें ले आये हैं॥ वोलैं वह खाउं खाउं खाये विना गिर जाऊं, आगेंको न धरों पाउं ताही पै लुभाये हैं। ऐसे भ्रम मोहने अनादिके भ्रमाये जीव, देखैं परतक्ष तोउ चक्षु मानो छाये हैं ॥ १४ ॥

यह आश्चर्य चतुर्दशी, पढत अचंभो होय ॥
भैया लोचन ज्ञानके, खुलत लखैं सब कोय ॥ १५ ॥

इति आश्चर्यचतुर्दशी.

अथ रागादिनिर्णयाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम, केवल ज्ञान जिनंद ॥
तासु चरन वंदन करों, मन धर परमानंद ॥ १ ॥

मात्रिक कवित्त.

रागद्वेष मोहकी परणति, है अनादि नहिं मूल स्वभाव ।
चेतन शुभ्र फटिक मणि जैसें, रागादिक ज्यों रंग लगाव ॥
वाही रंग सकल जग मोहत, सो मिथ्यामति नाम कहाव ।
समदृष्टी सो लखै दुहूं दल, यथायोग्य वरतै कर न्याव ॥ २ ॥

दोहा.

जो रागादिक जीवके, है कहुं मूल स्वभाव ॥
तो होते शिव लोकमें, देख चतुर कर न्याव ॥ ३ ॥
सवहि कर्मतें भिन्न है, जीव जगतके माहिं ॥
निश्चय नयसों देखिये, फरक रंच कहुं नाहिं ॥ ४ ॥
रागादिकसों भिन्न जव, जीव भयो जिहँ काल ॥
तव तिहँ पायो मुकति पद, तोरि कर्मके जाल ॥ ५ ॥
ये हि कर्मके मूल है, राग द्वेष परिणाम ॥
इनहीसें सव होत हैं, कर्म वन्धके काम ॥ ६ ॥

चान्द्रायण छन्द. (२५ मात्रा)

रागी वांधै करम भरमकी भरनसों ।
वैरागी निर्वंध स्वरूपाचरनसों ॥
यहं वंध अरु मोक्ष कही समुझायके ।
देखो चतुर सुजान ज्ञान उपजायके ॥ ७ ॥

कवित्त.

राग रु द्वेष मोहकी परणति, लगी अनादि जीव कहँ दोय ।
तिनको निमित पाय परमाणू, बंध होय वसु भेदहिं सोय ॥
तिनतैं होय देह अरु इन्द्रिय, तहाँ विषै रस भुंजत लोय ।
तिनमें राग द्वेष जो उपजत, तिहँ संसारचक्र फिर होय ॥ ८ ॥

दोहा.

रागादिक निर्णय कह्यो, थोरेमें समुझाय ॥
'भैया' सम्यक नैनतैं, लीज्यो सबहि लखाय ॥ ९ ॥

इति रागादिकनिर्णयाष्टक ।

अथ पुण्यपापजगमूलपचीसिका लिख्यते.

दोहा.

परमातम परतक्ष है, सिद्ध सकल अरहंत ॥
नितप्रति वंदों भावधर, कहूं जगत विरतंत ॥ १ ॥

कवित्त.

स्वामी श्रीमंधरजीके पाय पर ध्यान धर, वीनती करत भवि दोऊ कर जोरकें । तुम जगदीश जग ईश तिहुं लोकनके, भक्त जन संग किन लेहु अघ तोरकें ॥ देव सरवज्ञ सब जीवोंकी करत रक्षा, जीवनकी जाति हम कहैं मद छोरकें । सेव इहिविधि करैं नाम हिरदैमें धरैं, जपैं जिनदेव जिनदेव बल फोरकें ॥ २ ॥

आगे मद माते गज पीछें फोज रही सज, देखें अरि जाय भज बसै बन बनमें । ऐसे बल जाके संग रूप तो बन्यो अनंग, चमू चतुरंग लखि कहै धन धन मैं ॥ पुण्य जब खिस जाय परयो परयो विललाय, पेट हू न भरयो जाय पाप उदै तनमें । ऐसी

ऐसी भांतिकी अवस्था कई धरै जीव, जगतके वासी देखे हांसी आवै मनमें ॥ ३ ॥

चामके शरीर माहिं वसत लजात नाहिं, देखत अशुचि तोउ लीन होय तनमें। नारि वनी काहे की विचार कछू करै नाहिं, रीझि रीझि मोह रहै चामके वदनमें ॥ लछमीके काज महाराज पद छांड देत, डोलत हैं रंक जैसें लोभकी लगनमें। तनकसी आयुपै उपाय कई कोटि करै, जगतके वासी देखे हांसी आवै मनमें ॥ ४ ॥

छप्पय.

पुण्य उदय जव होय, जीव नर देही पावै।
पुण्य उदय जव होय, तवहिं घर लछमी आवै ॥
पुण्य उदय जव होय, सवै जिय हुकुम चलावै।
पुण्य उदय जव होय, तवै शिर छत्र धरावै ॥
जव पुण्य उदय खिस जाय अरु, पाप उदय आवै निकट।
तव परै नरकमें जीव यह, सहै घोर संकट विकट ॥ ५ ॥

पाप उदय परतच्छ, इच्छ नहिं पूजै मनकी।
पाप उदय परतच्छ, विथा वहु वाढ़ै तनकी ॥
पाप उदय परतच्छ, लच्छ घरमें नहिं आवै।
पाप उदय परतच्छ, जीव वहु संकट पावै ॥
जव पाप उदय मिट जाय अरु, पुण्य उदय आवै प्रवल।
तव वही जीव सुख भोगवै, उथल पथल इम जगत थल ॥ ६ ॥

कवित्त.

पापके कियेसों हंस मलिन निकृष्ट होय, यह तौ न वूझैं कोई पाप ही करत हैं। जल थल जीवमयी कहै वेद स्मृति माहिं पाँय तल जीव वसै छूयेतें मरत हैं॥ छोटे वडे देहधारी सवमें विराजै विष्णु, ताके तौ विनासे पाप कैसे न भरत हैं। इतनों विचार नाहिं पाप किये मुक्ति जाँय, ताहीतें अज्ञानी जीव नर्कमें परत हैं॥ ७॥

नागरिन संग केई सागरन केलि करी, राग रंग नाटकसों तोऊ न अघाये हो॥ नर देह पाय तुम आयु पल्य तीन पाई, तहांहू विषै किलोल नानाभाँति गाये हो॥ जहां गये तहां तुम विषैसों विनोद कीन्हों, ताहीतें नरकमें अनेक दुख पाये हो। अजहूं सम्हारि विषै डार क्यों न चिदानंद, जाके संग दुःख होय ताहीसों लुभाये हो॥ ८॥

जहां तोहि चलवो है साथ तू तहां को ढूंढि, इहां कहां लोगनसों रह्यो तू लुभाय रे। संग तेरे कौन चलै देख तू विचार हिये, पुत्र कै कलत्र धन धान्य यह काय रे॥ जाके काज पाप कर भरत है पिंड निज, है है को सहाय तेरे नर्क जव जाय रे। तहां तौ अकेलो तूही पाप पुण्य साथी दोय, तामें भलो होय सोई कीजे हंसराय रे॥ ९॥

जौलों तेरे ज्ञान नैन खुले नाहिं चिदानंद, तौलों तुम मोह वश सूरदास ह्वै रहे। हरके पराये प्रान पोपत हो देह निज, कहो यह कौन धर्म कौन पंथ लै रहे॥ पापके कियेसों कछु पुण्य

(१) देवांगनावोंके २ अंधे.

नाही है है तोहि, एतो हू विचार नाही ऐसे ज्ञान ख्वै रहे। नर्कमें परंगो कौन ? संकट सहैगो कौन, अजहूं सम्हारो क्यों न कौन नींद स्वै रहे ॥ १० ॥

सरवज्ञ देवजूकी सेव करें सव इन्द्र, तिनहूके कवला अहार नाहीं लीजिये। मुनि होंय लब्धिधारी ते चलें अकाश माहिँ, केवलीको भूमचारी ऐसे क्यों कहीजिये ॥ जाके देखें वैरभाव जाहिं सव जीवनके, ताके आगें साधु जरें कैसें के पतीजिये! ऐसो मिथ्यावन्तने वनाय कहूं तन्त लिखो, संत हैं सचेत यों विवेक हिये कीजिये ॥ ११ ॥

पंचमें जो गुण थान भाव जो विशुद्ध होंय, चढें जिय सातवें प्रसिद्ध यह वात हैं। छट्टो गुण थानक जा तियको न होय कहूं, नगन न रहि सकें लज्जावंत गात है॥ मनपर्जय ज्ञान हू, भनें कियो सरवज्ञ, ध्यानहूको योग नाहीं चढि कैसें जात है। तासों कहैं तीर्थंकर पद पाय मुक्ति भई, ऐसे मिथ्यावादिनसों कैसके वसात हैं॥ १२ ॥

सोवत अनादि काल वीत्यो तोहि चिदानंद, अजहूं सम्हार किन मोह नींद खोयकें। सोयो तू निगोद मांहि ज्ञान नैन मूंद आप, सोयो पंच थावरमें शक्तिको समोयके[1] ॥ विकलत्रै देह पाय तहां तूही सोय रह्यो, सोयो न प्रमान धर वाही रूप होयके॥ पंच इन्द्री विषै माहिं मग्न होय सोय रह्यो, खोयो तैं अनंतो काल याही भाँति सोय कैं ॥ १३ ॥

(१) संकोचकें.

चांद्रायण[1] छन्द ।

पुण्यपापको खेल, जगतमें वनि रह्यो ।
इनहीके परसाद, सुखी दुखिया कह्यो ॥
दोउ जगतके मूल, विनाशी जानिये ।
इनहीतें जो भिन्न, सुखी सो मानिये ॥ १४ ॥

मोह मगन संसार, विषय सुखमें रहै ।
करै न आप सम्हार, परिग्रह संग्रहै ॥
जाने यह थिर वास, नाश नहिं होयगो ।
पाके मानुष जन्म, अकारथ खोयगो ॥ १५ ॥

देवधर्म परतीति, परीक्षा सांच की ।
सीखै नाहिं सुदृष्टि, रतन अरु कांचकी ॥
जन्म अकारथ जाय, सुनो मन वावरे ।
पीछें फिर पछताय, वहुर नहिं दावरे ॥ १६ ॥

पुण्य पाप परतक्ष, दोउ जगमूल है ॥
इनहीसें संसार, भरमकी भूल है ॥
केवल शुद्ध स्वभाव, लखै नहिं हंसको ।
ताही तैं द्रुम होय, करमके वंशको ॥ १७ ॥

शुद्ध निरंजन देव, सदा निज पास है ।
ताको अनुभव करो, यही अरदास है ॥
कबहू भूल न जाहु, पुण्य अरु पापमें ।
केवल ज्ञान प्रकाश, लहोगे आपमें ॥ १८ ॥

---

१ न जानें सब प्रतियोंमें इसको 'अरिल्ल' क्यों लिखा है. अरिल्ल १६ मात्राका होता है और इसमें २१ मात्रा हैं, इसे 'तिलोकी' भी कहते हैं.

पुण्य पाप विन जीव, न कोई पाइये।
औरनकी कहा चली, जिनेश्वर गाइये॥
येही जगके मूल, कहे समुझायके।
जो इनसेती भिन्न, वसै शिव जायके॥ १९॥

कवित्त.

कर्मनके हाथ ये विकाये जग जीव सबैं, कर्म जोई करै सोई इनके प्रमान है। वैक्रिय शरीर पाय देव आप मान रहे, देवनकी रीति करै सुनै गीत गान है॥ औदारिक देह पाय नर नारी रूप भये, कीन्हीं वह रीति मानों पिये मद पान है। नरकमें गये तहां नारकी कहाये आप, ऐसो चिदानंद भैया देख्यो ज्ञानवान है॥ २०॥

दोहा.

राम श्याम कित होत है, सो गति लहै न गूढ़॥
धोय चामकी देहको, शुचि मानत है मूढ़॥ २१॥
कहा चर्मकी देहमें, परम परे हो आन॥
देखो धर्म संभारिकें, छांड भरमकी वान॥ २२॥
करम करत है भरमतैं, धरम तुम्हारो नाहिं॥
परम परीक्षा कीजिये, शरम कहा इहि माहिं॥ २३॥
करंन भरनतें होयगो, परन नरकके माहिं॥
ज्ञान चरनके धरन विन, तरन तुम्हारो नाहिं॥ २४॥
सरन सदा ढूंढत रहै, मरन बचावहि कोय॥
डरन प्रान निकसे परें, तरन कहांसों होय॥ २५॥

(१) इन्द्रिय.

जीव कौन पुद्गल कहा, को गुण को परजाय ॥
जो इतनो समुझै नहीं, सो मूरख शिरराय ॥ २६ ॥
पुण्य पाप वश जीव सब, वसत जगतमें जान ॥
'भैया' इनतैं भिन्न जो, ते सब सिद्ध समान ॥ २७ ॥

इति पुण्यपापजगमूलपचीसिका.

अथ बावीस परीसहनके कवित्त लिख्यते ।

दोहा.

पंच परम पद प्रणमिके, प्रणमों जिनवर वानि ॥
कहों परीसह साधुकी, विंशति दोय बखानि ॥ १ ॥

कवित्त.

धूप सीत क्षुधाजीत तृषा डंस भयभीत, भूमिसैन बधबंध सहै सावधान है। पंथत्रास तृणफांस दुरगंध रोगभास, नगनकी लाज रति जीते ज्ञानवान है ॥ तीय मानअपमान थिर कुवच नवान, अजाची अज्ञान प्रज्ञा सहित सुजान है। अदर्शन अलाभ ये परीसह हैं वीस द्वै, इन्हैं जीतै सोई साधु भाखे भगवान है ॥२॥

१. ग्रीष्मपरीसह.

ग्रीषमकी ऋतुमाहिं जलथल सूख जांहिं, परतप्रचंड धूप आगिसी बरत है। दावाकीसी ज्वाल माल वहत बयार अति, लागत लपट कोऊ धीर न धरत है ॥ धरती तपत मानों तवासी तपाय राखी, बड़वा अनल सम शैल जो जरत है। ताके शृंग शिलापर जोर जुग पांव धर, करत तपस्या मुनि करम हरत है ॥ ३ ॥

२. शीतपरीसह.

शीतकी सहाय पाय पानी जहां जम जाय, परत तुषार आय

हरे वृक्ष झाढ़े हैं। महा कारी निशा माहिं घोर घन गरजाहिं, चपलाहू चमकाहिं तहां हग गाढे हैं॥ पौनकी झकोर चलै पाथर हैं तेहू हिलै, ओरानके ढेर लगे तामें ध्यान वाढ़े हैं। कहां लों वखान कहों हेमाचलकी समान, तहां मुनिराय पांय जोर दृढ ठाढ़े हैं॥ ४॥

जोग देके जोगीश्वर जंगलमें ठाढ़े भये, वेदनीके उदैतें परीसहै सहत हैं। कारी घन घटा लागै भारी भयानक अति, गाज विज्जु देखे धीर कोऊ न गहत हैं॥ मेहकी भरन परै मूसरसी धार मानो, पौंनकी झकोर किधों तीर से वहत हैं। ऐसी ऋतु पावसमें पावत अनेक दुःख, तऊ तहाँ सुख वेद आनंद लहत हैं॥ ५॥

३. क्षुधापरीसह.

जगतके जीव जिहँ जेर जीतराखे अरु, जाके जोर आगें सव जोरावर हारे हैं। मारत मरोरे नहिं छोरे राजारंक कहूं, आंखिन अंधेरी ज्वर सव दे पछारे हैं। दावाकीसी ज्वाला जो जराय डारै छाती छवि, देवनको लागै पशुपंछी को विचारे हैं। ऐसी क्षुधा जोर भैया कहित कहां लों और, ताहि जीत मुनिराज ध्यान थिर धारे हैं॥ ६॥

४. तृषापरीसह.

धूपकी धखनि परै आगसो शरीर जरै, उपचार कौन करै दहै द्वार आनके। पानीकी पियास जेती कहै को वखान तेती, तीनों जोग थिरसेती सहै कष्ट जानके॥ एक छिन चाह नाहिं

पानीके परीसे माहिं, प्रान किन नाश जाहिं रहैं सुख मानके। ऐसी प्यास मुनि सहै तब जाय सुख लहै, 'भैया इहिभाँति कहै बंदिये पिछानके ॥ ७ ॥

५. डँस मस्कादिपरीसह.

सिंह सांप ससा स्याल सूअर ओ स्वान भालु, बाघ वीछी वानर सु वाजने सताये हैं। चीता चीलह चरख चिरैया चूहा चेंटी चेंटा, गज गोह गाय जो गिलहरी बताये हैं ॥ मृग मोर मांकरी सु मच्छर ओ मांखी मिल, भौंरा भौंरी देख कै खजूरा खरे धाये हैं। ऐसे डंस मसकादि जीव हैं अनेक दुष्ट, तिनकी परीसे जीते साधुजू कहाये हैं ॥ ८ ॥

६. शय्यापरीसह.

शुद्ध भूमि देख रहै दिनसेती योग गहै, आसन सु एक लहै धरै यह टेक है। कैसो किन कष्ट परै ध्यानसेती नाहिं टरै, देहको ममत्व हरै हिरदै विवेक है ॥ तीनों योग थिरसेती सहत परीसे जेती, कहै को बखान तेती हाँय जे अनेक हैं। ऐसे निशि शैन करै अचल सु अंग धरै, भव्य ताकें पाँय परै धन्य मुनि एक हैं ॥ ९ ॥

७. वधबंधपरीसह.

कोऊ बांधो कोऊ मारो कोऊ किन गहडारो, सबनके संकट सुबोधतैं सहतु है। कोऊ शिर आग धरो कोऊ पील प्रान हरो, कोऊ काट टूक करो द्वेष न गहतु है ॥ कोऊ जल माहिं बोरो कोऊ लेके अंग तोरो, कोऊ कह चोर मोरो दुख दे दहतु है। ऐसे बधबंधके परीसहको जीतै साधु, 'भैया' ताहि वार वार वंदना कहतु है ॥ १० ॥

८. चर्यापरीसह—छप्पय।

जब मुनि करहिं विहार, पंथ पग धरहिं परक्खत।
ऊंठ हाथ परवान, दृष्टि जुग भूमि परक्खत॥
चलत ईरज्या समिति, पंच इन्द्रिय वश कीनें।
दशहुं दिशा मन रोक, एक करुणारस भीनें॥
इम चलत पूज्य मुनिराज जब, होय खेद संकट विकट।
तिहँ सहहिं भाव थिर राखके, तब धावें भव उदधितट॥ ११॥

९ तृणफांसपरीसह—छप्पय।

परत आंखि महँ कछुक, काढि नहिं डारत तिनको।
चुभत फांस तन मांहि, सार नहिं करते जिनको॥
लागत चोट प्रचंड, खेद नहिं कहूं जनावत।
बाणादिक बहु शस्त्र, कहत कहुं पार न आवत॥
इम सहत सकल दुख देह दमि, रागादिक नहिं धरत मन।
भैया त्रिकाल वंदत चरन, धन्य धन्य जग साधु धन॥ १२॥

१०. ग्लानिपरीसह—छप्पय.

लगत देहमें मैल, धोय नहिं तिनको झारत।
देहादिकतैं भिन्न, शुद्ध निज रूप विचारत॥
जल थल सब जिय जंत, संत है काहि सताऊं।
सबही मोहि समान, देत दुख मैं दुख पाऊं॥
इम जान सहत दुरगंध दुख, तब गिलान विजयी भवत।
'भैया' त्रिकाल तिहँ साधु के, इंद्रादिक चरनन नमत॥ १३॥

(१) साढे तीन हाथ।

११. रोगपरीसह—छप्पय.

वात पित्त कफ कुष्ट, स्वास अरु खाँस खैण गनि ।
शीत ताप शिरवाय, पेट पीड़ा जु शूल भनि ॥
अंतीसार अधशीस, अरश जो होय जलंधर ।
एकांतर अरु रुधिर, वहुत फोड़ा जु भगंदर ॥
इम रोग अनेक शरीरमहिं, कहत पार नहिं पाइये ।
मुनिराज सवन जीते रहैं, औषधि भाव न भाइये ॥ १४ ॥

दोहा.

ये एकादश वेदिनी, कर्म परीसह जान ।
मोहसहित वलवान हैं, मोह गये वलहान ॥ १५ ॥

१२. नग्नपरीसह—कवित्त.

नगनके रहिवेको महा कष्ट सहवेको, कर्मवन दहवेको वडे महाराज हैं। देह नेह तोरवेको लोक लाज छोरवेको, पर्म प्रीति जोरवेको जाको जोर काज हैं॥ धर्म थिर राखवेको परभाव नाखवेको, सुधारस चाखवेको ध्यानकी समाज हैं। अंवरके त्यागेसों दिगम्बर कहाये साधु, छहों कायके आराध यातैं शिरताज हैं १६

१३. रतिअरतिपरीसह—कवित्त.

आंखनिकी रति मान दीपक पतंग परै, नासिकाकी रतिमान भ्रमर भुलाने हैं। काननकी रतिमृग खोवत हैं प्राण निज, फरसकी रति गज भये जो दिवाने हैं ॥ रसनाकी रति सव जगत सहत दुख, जानत है यह सुख ऐसें भरमाने हैं ॥ इंद्रिनकी रति मान गति सव खोटी करै, ताहिं मुनिराज जीत आप सुख माने हैं ॥ १७ ॥

छप्पय.

प्रकृति विरोध अहार, मिले मुनि जो दुख पावै।
सोहि अरति परिणाम, तहाँ समता रस भावै॥
औरहु परसंयोग, होत दुख उपजै तनमें।
तहां अरति परनाम, त्याग थिरता धरै मनमें॥
इम सहत साधु दुख पुंज वहु, तवहु क्षमा नहिं उर टरत।,
'भैया' त्रिकाल मुनिराज सो अरतिजीत शिवपद वरत॥१८॥

१४. स्त्रीपरीसह—कवित्त.

नारिके निहारत विचार सव भूलि जांय, नारीके निहारे परिणाम फिरे जात हैं। नारिके निहारत अज्ञान भाव आय झुकै, नारिके निहारत ही शील गुणघात हैं॥ नारिके निहारत न सूरवीर धीर धरै, लोहनके मार जे अडिग ठहरात हैं। ऐसी नारि नागनिके नैनको निमेप जीत, भये हैं अजीत मुनि जगत विख्यात हैं॥ १९॥

१५. मानअपमान परीसह—कवित्त.

जहाँ होय मान तहाँ मानत महान सुख, अपमान होय तहाँ मृत्युके समान हैं। मानके गुमान आप महाराज मान रहे, होत अपमान मूढ हरै दशों प्रान हैं। मानहीकी लाज जग सहत अनेक दुख, अपमान होत धरै नरक निदान है॥ ऐसे मान अपमान दोऊ दुष्ट भाव तज, गनत समान मुनि रहै सावधान हैं॥ २०॥

१६. थिरपरीसह—छप्पय.

जव थिर होहिं मुनिंद, एक आसन दृढ धरई।
जव थिर होहिं मुनिंद, अंग एको नहिं टरई॥

जब थिर होहिं मुनिंद, कष्ट किन आवहिं केते।
जब थिर होहिं मुनिंद, भावसों सहै जु तेते ॥
इम सहत कष्ट मुनिराज अति, रोगदोप नहिं धरत मन।
उतकृष्ट होहिं इक बेर जो, सब उनईस परीस भन ॥ २१ ॥

१७. कुवचनपरीसह–छप्पय.

कुवचन बान समान, लगै तिहिं मार गिरावहिं।
कुवचन अगनि समान, पैठि गुन पुंज जलावहिं ॥
कुवचन बज्र विशाल, भाव गिरि ढाहैं पलमें।
कुवचन विषकी झाल, मोह दुख दै बहु कलमें ॥
कुवचन महान दुख पुंज यह, लगे बचैं नहिं जगत जन।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत लहै निज अखय धन ॥२२

१८. अजाचीपरीसह घनाक्षरी (३२ वर्ण)

अजाची धरत व्रत जाचना करत नाहिं, इंद्री उमंग हरत महा संतोष करकें। रागादि टरत भाव क्रोधादिबंध गरत, वरत स्वभाव शुद्ध मनोविकार हरकें ॥ मरनसों डरत न करत तपस्या जोर, दरत अनेक कष्ट क्षमा खड्ग धरकें। दया भंडार भरत वरत सु साधु ऐसें, 'भैया' प्रणाम करत त्रिकाल पांय परकें ॥ २३ ॥

१९. अज्ञानपरीसह–छप्पय।

सम्यक ज्ञान प्रमान, होहिं मुनि कोय तुच्छ मति।
सुनहिं जिनेश्वर वैन, याद नहिं रहै हृदय अति ॥
ज्ञानावरण प्रसाद, बुद्धि नहिं प्रगटै जाकी।
पूरव भव थिति बंध, इहाँ कछु चलत न ताकी ॥

इम सहत कष्ट मुनि ज्ञानके, होहिं परीसह प्रवलजिय।
तिहँ जीत प्रीति निजरूपसों, लहत शुद्ध अनुभूत हिय ॥ २४ ॥

२०. प्रज्ञापरीसह—छप्पय।

प्रज्ञा वल नहिं होय, तहाँ विद्या नहिं आवै।
प्रज्ञा वल नहिं होय, तहां नहिं पढै पढावै ॥
प्रज्ञा प्रवल न होय, तहाँ चर्चा नहिं सूझै।
प्रज्ञा प्रवल न होय, तहाँ कछु अर्थ न वूझै ॥
इम वुद्धि विशेष न होय जित, तित अनेक परिसह सहत।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत शुद्ध अनुभौ लहत ॥ २५ ॥

२१. अदर्शनपरीसह—छप्पय।

समय प्रकृति मिथ्यात, जासु उरतैं नहि टरई।
सो जिय है गुनवंत, तथा वेदक पद धरई ॥
दर्शन निर्मल नाहिं, मोहकी प्रकृति लखावै।
वहै अदर्शन कष्ट, कहत कैसें बन आवै ॥
परिणाम खेद वहुविधि करत, तौ हू निर्मल होय नहिं।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत रहै निज आप महिं ॥ २६

२२. अलाभपरीसह—कवित्त.

अंतराय कर्मके उदैतैं जो अलाभ होय, ताके भेद दोय कहे निश्चै व्यवहार है। निश्चै तो स्वरूपमें न थिरता विशेष रहै, वह अंतराय जो रहै न एक सार है ॥ व्यवहार अंतराय मिलै न अहार योग, और हू अनेक भेद अकथ अपार है। ऐसें तौ अलाभ की परीसहको जीत साधु, भये हैं अतीत 'भैया' वंदै निरधार है ॥ २७ ॥

बाईसपरीसहविजयी मुनिराजकी स्तुति

कुंडलिया.

महा परीसह वीस द्वय, तिहँ जीतनको धीर।
धन्य साधु संसार में, बडे सूरवर वीर॥
बडे सूरवर वीर, भीर भवकी जिहँ टारी।
कर्म शत्रुको जीत, भये शिवके अधिकारी॥
धारी निजनिधि संच, पंच पदकोजिहँ लहा।
भैया करहि प्रणाम, परीसह विजयी सु महा॥ २८॥

छप्पय.

सत्रहसे उनचास मास, फागुण सुख कारी।
सुदि बारस गुरुवार, सार मुनि कथा सवाँरी॥
विकट परीसह जीत, होत जे शिवपदगामी।
ते त्रिभुवनके नाथ, प्रगट जग अंतरजामी॥
तिहँ चरन नमत हिरदै हरखि, कहत गुननकी माल यह।
कवि भैया द्वैकर जोरके, वंदन करहिं त्रिकाल लह॥ २९॥

हृदयराम उपदेशतैं, भये कवित्त ये सार।
मुनिके गुण जे सरदहैं, ते पावहिं भव पार॥ ३०॥

इति बाईस परीसह कवित्तबंध.

अथ मुनिके छियालीसदोषवर्जितआहारविधिवर्णन लिख्यते.

दोहा.

अरहँत सिद्ध चितारचित, आचारज उवझाय।
साधुसहित वंदन करों, मनवच शीस नवाय॥ १॥

दोष छियालिस टारकें, मुनि जो लेहिं अहार ॥
नाम कथन ताके कहूं, जिन आगम अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई.

अस्थि चर्म सूखे अरु हरे । दृष्टि देख भोजन परिहरे ॥
उखली खोटै चक्की चलै । शिलापिसंती देखत टलै ॥ ३ ॥
गोबर थापै माटी छुवै । कोरे वस्त्र भींट जो हुवै ॥
चूल्हो जरतो नयन निहार । ता घर मुनि नहिं लेहिं अहार॥ ४ ॥
शिरहिं नहाती दीखै कोय । सीस कंघही करती होय ॥
कच्चे पानी परसै अंग । ता घरतें मुनि फिरहिं अभंग ॥५ ॥
करवो खांडो दीसै कहीं । छन्नो फाटो है जो तहीं ॥
देत बुहारी दृष्टिहि परै । ताघर मुनि आयेतें फिरै ॥ ६ ॥
अन्नादिक सूकनको धरै। मिथ्याती भेटै तिहँ घरै ॥
ओंटे कोय कपास निहार । ताघर मुनि फिर जाहिं विचार॥ ७॥
भींटै पाक स्वान मंजार । रोमकँवल परसन परिहार ॥
अग्निदाह जो दृष्टिहि परै । रोवत सुनै अहार न करै ॥ ८ ॥
प्रतिमा भंग सुनै जे कान । शास्त्र जरै इम सुनै सुजान ॥
प्रतिमा हरी भयो भयज़ोर । ता घर आये फिरहिं किशोर॥ ९॥
विनधोये पट पहिरे होय । पड़िगाहैं श्रावक जो कोय ॥
ता कर लेय अहार न साध । अशुचिदोष लागै अपराध ॥ १० ॥
कर्कश वचन सुनहिं विकराल । विनयहीन जो हो अदयाल ॥
लागै चोट ललाटहिं पेख । फिरहिं साधु छर्दित नर देख॥ ११ ॥
विकलत्रय आवै तिहँ ठौर । नख केशादि अपावन और ॥
पानी बूंद परै आकास । ता घर मुनि फिरजाहिं विमास॥ १२॥

खाज सहित रोगी नर देख । पीव बहत पीड़ित पुनि पेख ॥
लोहू दृष्टि परै जो कहीं । तो मुनि असन लेनके नहीं ॥१३॥
मांसादिक मल दृष्टिहि परै । कंद रु मूल मृतक परिहरै ॥
फल अरु वीज होंय तिहँ ठौर । तो मुनि लेहि न एको कौर ॥१४॥
विना वीज ऊगो जो डार । ता निरखत नहिं लेय अहार ॥
ऐसे दोष छियालिस हीन । तजहिं ताहि संयमि परवीन ॥१५॥
उत्तम कुल श्रावकको जान । द्वारापेखन शुद्ध प्रमान ॥
विनयवंत प्राशुक कर नीर । वोलै तिष्ठ स्वामि जगवीर ॥ १६ ॥
ताघर दृष्टि विलोकहिं साध । यहां न कोउ लागै अपराध ॥
तव तिहँ मंदिरमें अनुसरै । प्राशुक भूमि निरख पग धरै ॥१७॥
श्रावक जो प्राशुक आहार । कीन्हों दोष छियालिस टार ॥
निजहित पोषनको परवार । ता महितें कछु भिन्न निकार ॥१८
द्वै करजोर मुनीश्वर लेहिं । श्रावक निजकरसों तिहँ देहिं ॥
पुनि कर फेर नीरको धरै । प्राशुकजल तिहँ करमें करै ॥ १९ ॥
लेय अहार नीर तिहँ ठौर । जिनकल्पी उत्तम शिरमौर ॥
थिवरकल्पिकी हू यह चाल । दोऊ मुनिवर दीनदयाल ॥ २० ॥
दोऊ वनवासी निर्ग्रन्थ । दोऊ चलहिं जिनेश्वर पंथ ॥
दोऊं जपतप किरिया करैं । दोऊ अनुभव हिरदै धरैं ॥ २१॥
जिनकल्पी एकाकी रहै । थिवरकल्पि शिष्यशाखा गहै ॥
अट्ठाईस मूलगुण सार । आपसाधु पालहिं निरधार ॥ २२ ॥
षष्टम अरु सप्तम गुण थान । दोऊं रहैं परम परधान ॥
पूरव कोटि वरष वसु घाट । उतकृष्टै वरतै यह वाट ॥ २३ ॥
केवलज्ञान दोऊं उपजाय । पंचमि गतिमें पहुंचें जाय ॥
सुख अनंत विलसै तिहँ ठौर । तातैं कहैं जगत शिरमौर ॥ २४ ॥

संवत सत्रहसै पंचास । जेठशुदी पंचमि परकाश ॥
भैया वंदत मनहुल्लास । जयजय मुकतिपंथ सुखवास ॥ २५॥

इति छियालीसदोपरहित आहारशुद्धि चौपई.

अथ जिनधर्मपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

प्रगट देव परमातमा, चिदानंद भगवान ॥
वंदत हों तिनके चरन, नाय शीस धर ध्यान ॥ १ ॥

छप्पय.

धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमें दया उभयविधि ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमहिं लखै आपनिधि ॥
धन्य धन्य जिनधर्म, पंथशिवको दरसावै ।
धन्य धन्य जिनधर्म, जहाँ केवल पद पावै ॥
पुनि धन्य धन्य जिनधर्म यह, सुख अनंत जहाँ पाइये ।
'भैया' त्रिकाल निजघटविषै, शुद्ध दृष्टि धर ध्याइये ॥ २ ॥

जैनधर्मको मर्म, दृष्टि समकिततैं सूझै ।
जैनधर्मको मर्म, मूढ कैसें कर वूझै ॥
जैनधर्मको मर्म, जीव शिवगामी पावै ।
जैनधर्मको मर्म, नाथ त्रिभुवन को गावै ॥
यह जैनधर्म जगमें प्रगट, दया दुहूं जग पेखिये ।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, जैनधर्म निज लेखिये ॥ ३ ॥

जैनधर्म जयवंत, अंत जाको नहिं कवहू ।
जैनधर्म जयवंत, संत प्राणी हैं अवहू ॥
जैनधर्म जयवंत, जंत सवको सुखकारी ॥
जैनधर्म जयवंत, तंत सवको अधिकारी ॥

सत जैनधर्म जयवंत जग, प्रगट परम पद पेखिये।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतैं, सुख अनंत सब लेखिये॥ ४॥

कल्पवृक्ष जिनधर्म, इच्छ सब पूरै मनकी।
चिंतामन जिनधर्म, चिंत सब टारै जनकी॥
पारस सो जिनधर्म, करै लोहादिक कंचन।
काम धेनु जिनधर्म, कामना रहती रंच न॥
जिनधर्म परमपद एक लख, सुख अनंत जहां पाइये।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतें, मुक्तिनाथ तोहि गाइये॥ ५॥

उदित तेजपरताप, होत दिनदिन जयकारी।
तम अज्ञान विनाश, आश निज पर अधिकारी॥
सबको शीतल करै, उष्ण क्रोधादिक टारै।
सदा अमिय वरषंत, शांत रस अति विस्तारै॥
'भैया' चकोर अंबुज भविक, सब प्राणिनको सुख करै।
सो जैनधर्म जग चंद सम, सेवत दुख संकट टरै॥ ६॥

जैनधर्म विन जीव! जीत है है नहिं तेरी।
जैनधर्म विन जीव! रीत किन करै घनेरी॥
जैनधर्म विन जीव! ज्ञान चारित कहुँ नाहीं।
जैनधर्म विन जीव! प्रकृति पर जाह न गाही॥
इहि जैनधर्म विन जीव! तुहै, दया उभय सूझै न दृग।
'भैया' निहार निज घट विषै, जैनधर्म सोई मोक्षमग॥ ७॥

जैनधर्म विन जीव! तोहि शिवपंथ न सूझै।
जैनधर्म विन जीव! आप परको नहिं बूझै॥
जैनधर्म विन जीव! मर्म निजको नहिं पावै।
जैनधर्म विन जीव! कर्मगति दृष्टि न आवै॥

इहि जैनधर्म विन जीव तुहे, केवलपद कितहू नहीं।
अजहूं संभारि चिरकाल भयो, चिदानंद! चेतौ कहीं॥ ८॥

जैनधर्मको जीव, आप परको सव जानै।
जैनधर्मको जीव, बंध अरु मोक्ष प्रमानै॥
जैनधर्मको जीव, स्यादवादी परत्यागी।
जैनधर्मको जीव, होय निश्चय वैरागी॥

इहि जैनधर्मको जीव जग, अजरामरपदवी लहै।
'भैया' अनंत सुख भोगवै, आचारज इहविधि कहै॥ ९॥

कवित्त.

पापनके कूट जे अटूट भरे घट माहिं, होते चिरकालनके सबै निघटत हैं। लागे जो मिथ्यातभाव भूलिके सुभावनिज, तिनहूके पटल प्रभात ज्यों फटत हैं॥ अपनी सुदृष्टि होत प्रगटै प्रकाश ज्योत, तिहूं लोकमें उद्योत सत्य प्रगटत हैं। ऐसो जिनधर्मके प्रसादतें प्रकाश होय, अजहूं संभार भैया काहेको रटत हैं॥१०॥

छप्पय.

जो अरहंत सुजीव, जीव सब सिद्ध भणिज्जे।
आचारज पुन जीव, जीव उवझाय गणिज्जे॥
साधु पुरुष सब जीव, जीव चेतन पद राजै।
सो तेरे घट निकट, देख निज शुद्ध विराजै॥

सवजीव द्रव्यनय एकसे, केवलज्ञान स्वरूप मय।
तस ध्यान करहु हो भव्यजन, जो पावहु पदवी अखय॥ ११॥

सवैया.

जो जिनदेवकी सेव करै जग, ताजिनदेवसो आप निहारै।
जो शिवलोक वसै परमातम, तासम आतम शुद्ध विचारै॥

आपमें आप लखै अपनो पद, पाप रु पुण्य दुहूं निरवारै।
सो जिनदेवको सेवक है जिय, जो इहि भांति क्रिया करतारै ॥१२॥

कवित्त.

एक जीवद्रव्यमें अनंत गुण विद्यमान, एक एक गुणमें अनंत शक्ति देखिये। ज्ञानको निहारिये तो पार याको कहूं नाहिं, लोक औ अलोक सब याहीमें विशेखिये॥ दर्शनकी ओर जो विलोकिये तो वहै जोर, छहों द्रव्य भिन्न भिन्न विद्यमान पेखिये। चारितसों थिरता अनंतकाल थिररूप, ऐसेही अनंत गुण भैया सब लेखिये १३

छप्पय.

राग दोष अरु मोहि, नाहिं निजमाहिं निरक्खत।
दर्शन ज्ञान चरित्र, शुद्ध आतम रस चक्खत॥
परद्रव्यनसों भिन्न, चिह्न चेतनपद मंडित।
वेदत सिद्ध समान, शुद्ध निज रूप अखंडित॥
सुख अनंत जिहि पदवसत, सो निहचै सम्यक महत।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, श्रीजिनंद इहि विधि कहत १४

व्यवहार सम्यक लक्षण. छप्पय.

छहों द्रव्य नव तत्त्व, भेद जाके सब जानै।
दोष अठारह रहित, देव ताको परमानै॥
संयम सहित सुसाधु, होय निरग्रंथ निरागी।
मति अविरोधी ग्रन्थ, ताहि मानै परत्यागी॥
वरकेवल भाषित धर्मधर, गुण थानक बूझै मरम।
'भैया' निहार व्यवहार यह, सम्यक लक्षण जिन धरम ॥१५॥

व्यवहार निश्चयनय वर्णन—मात्रिक कवित्त.

जाके निहचै प्रगट भये गुण, सम्यक दर्शन आदि अपार।

ताके हिरदैं गई विकलता, प्रगट रही करनी व्यवहार ॥
जहँ व्यवहार होय तहँ निहचै, होय न होय उभय परकार ।
जहँ व्यवहार प्रगट नहिं दीखै, तहां न निश्चय गुण निरधार१६

कवित्त.

आंख देखै रूप जहां दौड़ तूही लागै तहां, सुने जहां कान तहां तूही सुनै वात है। जीभ रस स्वाद धरै ताको तू विचार करै, नाक सूंघै वास तहाँ तू ही त्रिरमात है ॥ फर्सकी जु आठ जाति तहां कहो कौन भांति, जहां तहाँ तेरो नांव प्रगट विख्यात है। याही देह देवलमें केवलि स्वरूपदेव, ताकी कर सेव मन कहाँ दौड़े जात है ॥ १७॥

जासों कहैं घर तामैं डर तौ कईक तोहि, सवन विसार हंस विषैरस लाग्यो है। गिरवेको डर अरु डर आगि पानीहूको, वस्तु राखवेको डर चौर डर जाग्यो है ॥ पेट भरवेको डर रोग शोक महाडर, लोकनिकी लाज डर राजडर पाग्यो है। डर जमराजहूको डारि तूं निशंक भयो, जैसें मोह राजाने निवाज तोहि दाग्यो है ॥ १८ ॥

रागी द्वेषी देख देव ताकी नित करै सेव, ऐसो है अवेव ताको कैसें पाप खपनो ?। राग रोग क्रीड़ा संग विषैकी उठै तरंग, ताही मैं अभंग रैन दिना करै जपनो ॥ आरति औ रौद्र ध्यान दोऊ किये आगेवान, एतेपैं चहै कल्यान दैके दृष्टि ढपनो। अरे मिथ्या चारी तैं विगारी मति गति दोऊ, हाथ ले कुल्हारी पाँय मारत है अपनो ॥ १९ ॥

छप्पय.

जन्म जरा अरु मरन, पाप संताप विनासै ।
रोग शोक दुख हरै, सर्व चिंता भय नासै ॥

ऋद्धि सिद्धि अनुसरै, विविध विद्या परकासै ।
निजनिधि लहै प्रकाश, ज्ञान प्रभुता गुण भासै ॥
अरु कर्म शत्रु सब जीतके, केवलि पद महिमा वरै ।
सो जैनधर्म जयवंत जग, जास हृदय ध्रुव संचरै ॥ २० ॥
जैनधर्म परसाद, जीव मिथ्यामति खंडै ।
जैनधर्म परसाद, प्रकृति उर सात विहंडै ॥
जैनधर्म परसाद द्रव्यषटको पहिचानै ।
जैनधर्म परसाद, आप परको ध्रुव ठानै ॥
जैनधर्म परसाद लहि, निजस्वरूप अनुभव करै ।
'भैया' अनंत सुख भोगवै, जैन धर्म जो मन धरै ॥ २१ ॥
जैनधर्म परसाद, जीव सब कर्म खपावै ।
जैनधर्म परसाद, जीव पंचमि गति पावै ॥
जैनधर्म परसाद, बहुरि भवमें नहिं आवै ।
जैनधर्म परसाद, आप परब्रह्म कहावै ॥
श्री जैनधर्म परसादतैं, सुख अनंत विलसंत ध्रुव ।
सो जैनधर्म जयवंत जग, भैया जिहँ घट प्रगट हुव ॥ २२ ॥

कवित्त.

सुन मेरे मीत तू निचिंत ह्वैके कहा बैठो, तेरे पीछे काम श-त्रु लागे अति जोर हैं। छिन छिन ज्ञान निधि लेत अति छीन तेरी , डारत अंधेरी भैया किये जात भोर हैं ॥ जागवो तो जा-ग अब कहत पुकारें तोहि, ज्ञान नैन खोल देख पास तेरे चोर हैं। फोरके शकति निज चोरको मरोर बांधि, तोसे बलवा-न आगें चोर ह्वैकै को रहैं ॥ २३ ॥

छप्पय.

चहुं गतिमें नर वड़े, वड़े तिनमें समदृष्टी ।
समदृष्टीतैं वड़े, साधुपदवी उतकृष्टी ॥
साधुनतैं पुन वड़े, नाथ उवझाय कहावें ।
उवझायनतैं वड़े, पंच आचार वतावें ॥
तिन आचार्यनतैं जिन वड़े, वीतराग तारन तरन ।
तिन कह्यो जैनवृष जगतमें, भैया तस वंदत चरन ॥ २४ ॥

दोहा.

जैनधर्म सव धर्म पें, शोभत मुकुर समान ॥
जाके सेवत भव्यजन, पावत पद निर्वान ॥ २५ ॥
ज्यों दीपक संयोगतैं, वत्ती करै उदोत ॥
त्यों ध्यावत परमातमा, जिय परमातम होत ॥ २६ ॥
श्री जिनधर्म उदोत है, तिहूं लोक परसिद्ध ॥
'भैया' जे सेवहिं सदा, ते पावहिं निजरिद्ध ॥ २७ ॥
सत्रहसै पंचासकें, उत्तम भादव मास ॥
सुदि पूनम रचना कही, जैजिनधर्मप्रकाश ॥ २८ ॥

इति जिनधर्मपचीसिका.

अथ अनादिवत्तीसिका लिख्यते ।

दोहा.

अष्टकर्म अरि जीतकें, भये निरंजन देव ॥
मन वच शीस नवायके, कीजे ताकी सेव ॥ १ ॥
छहों सु द्रव्य अनादिके, जगत माहि जयवंत ॥
को किस ही कर्त्ता नहीं, यों भाखै भगवंत ॥ २ ॥

अपने गुण परजायमें, वरतैं सव निरधार ॥
को काहू भेटै नहीं, यह अनादि विस्तार ॥ ३ ॥
द्रव्य एक आकाश है, गुण जाको अवकास ॥
परणामी पूरन भरयो, अंत न वरण्यों जास ॥ ४ ॥
दूजो पुद्गल द्रव्य है, वर्ण गन्ध रस फांस ॥
छाया आकृति तेज द्युति, ये सव जास विलास ॥ ५ ॥
तीजो धर्म सुद्रव्य है, चलत सहायी होय ॥
पुद्गल अरु पुन जीवको, शुद्ध स्वभावी जोय ॥ ६ ॥
चौथो द्रव्य अधर्म है, जव थिर तवहिं सहाय ॥
देय जीव पुद्गलनको, लोक हदलों भाय ॥ ७ ॥
पंचम काल प्रसिद्ध है, वर्त्तन जासु स्वभाय ॥
समय महूरत जाहि जो, सो कहिये परजाय ॥ ८ ॥
षष्ठम चेतन द्रव्य है, दर्शन ज्ञान स्वभाय ॥
परणामी परयोगसों, शुद्ध अशुद्ध कहाय ॥ ९ ॥
है अनादि ब्रह्मण्ड यह, छहों द्रव्यको वास ॥
लोकहद्द इनतें भई, आगें एक अकास ॥ १० ॥
सूर चंद निशदिन फिरैं, तारागण वहु संग ॥
यही अनादि स्वभाव है, छिन्न इक होय न भंग ॥ ११ ॥
कहा ज्ञान है नाज पैं, ऋतुविन उपजै नाहिं ॥
सवहि अनादि स्वभाव है, समुझ देख मनमाहिं ॥ १२ ॥
वोवत है जिहँ वीजको, उपजत ताको वृक्ष ॥
ताहीको रस वढत है, यहै वात परतक्ष ॥ १३ ॥
को वोवत वन वृक्षको, को सींचत नित जाय ॥
फलफूलनिकर लहलहे, यहै अनादि स्वभाय ॥ १४ ॥

वनस्पती फूलै फलै, ऋतु वसंतके होत ॥
को सिखवत है वृक्षको, इहि दिन करो उदोत ॥ १५ ॥
वर्षत है जल धरनिपर, उपजत सब बनराय ॥
अपने अपने रस वढैं, यहै अनादि स्वभाय ॥ १६ ॥
जो पहिले कहो वृक्ष है, तौ न वनै यह वात ॥
विना बीज उपजै नहीं, यह तो प्रगट विख्यात ॥ १७ ॥
जो पहिले कहो वीज है, बीज भयो किहँ ठौर ॥
यहै वात नहिं संभवै, है अनादि की दौर ॥ १८ ॥
को सिखवत है नीरको, नीचेको ढर जाय ॥
अग्निशिखा ऊंची चलै, यहै अनादि स्वभाय ॥ १९ ॥
कहो मीनके वालको, को शिखवत है वीर! ॥
जन्मत ही तिरवो तहां, महा उदधिके नीर ॥ २० ॥
कौन सिखावत वालको, लागत मा तन धाय ॥
क्षुद्धित पेट भरै सदा, यहै अनादि स्वभाय ॥ २१ ॥
पंछी चलै अकाशमें, कौन सिखावन हार ॥
यहै अनादि स्वभाव है, वन्यौं जगत विस्तार ॥ २२ ॥
कौन सांपके वदनमें, विष उपजावत वीर! ॥
यहै अनादि स्वभाव है, देखो गुण गंभीर ॥ २३ ॥
कहो सिंहके वालको, सूरपनो कव होत ॥
कोटि गजनके पुंजको, मार भगावै पोत ॥ २४ ॥
पृथिवी पानी पौन पुन, अग्नि अन्न आकास ॥
है अनादि इहि जगतमें, सर्व द्रव्यको वास ॥ २५ ॥
अपने अपने सहज सव, उपजत विनशत वस्त ॥
है अनादिको जगत यह, इहि परकार समस्त ॥ २६ ॥

चेतन अरु पुद्गल मिले, उपजे कई विकार ॥
तासों विन समुझे कहैं, रच्यो किनहिं संसार ॥ २७ ॥
यह संसार अनादिको, यही भांत चल आय ॥
उपजै विनशै थिर रहै, सो सव वस्तु स्वभाय ॥ २८ ॥
को काहू कर्त्ता नहीं, करता भुगता आप ॥
यहै जीव अज्ञानमें, करै पुण्य अरु पाप ॥ २९ ॥
पुण्य पाप जग वीज है, याहीतैं विस्तार ॥
जन्म मरन सुखदुख सहै, 'भैया' सव संसार ॥ ३० ॥
पुण्यपापको त्याग जे, भये शुद्ध भगवान ॥
अजरामर पदवी लई, सुख अनंत जिहँ थान ॥ ३१ ॥
इहि अनादि वत्तीसिमें, वरनी वात अनादि ॥
'भैया' आप निहारिये, और वात सव वादि ॥ ३२ ॥
सत्रहसै पंचासके, आश्विन पहिला पक्ष ॥
तिथि तेरस रविवारको, कही अनादि प्रत्यक्ष ॥ ३३ ॥

इति अनादिवत्तीसी.

अथ समुद्घातस्वरूप लिख्यते ।

दोहा.

चरन जुगल जिनदेवके, वंदत हों कर जोर ॥
जिहँ प्रसाद निजसंपदा, लहै कर्म दल मोर ॥ १ ॥
समुद्‌घात जे सात हैं, तिनको कछु विस्तार ॥
कहूं जिनागम शाखतें, जिय परदेश विचार ॥ २ ॥
उदयकषाय प्रचंड है, निकसत जियपरदेश ॥
दमि दुर्जनकी देहको, बहुरि न करत प्रवेश ॥ ३ ॥

रोगादिक संयोगसों, औषध परसन काज ॥
निकश जाय परदेश जो, आवत करै इलाज ॥ ४ ॥
केवल ज्ञानी आतमा, लोक हद्दलों जाय ॥
परदेशन पूरित करै, उदै न कछू वसाय ॥ ५ ॥
मरन समय जिहँ जीवको, समुदघात थित होय ॥
प्रथम परस गति आयकें, वहुर जात है सोय ॥ ६ ॥
षष्टम गुण थानीनको, उपजै कहुं संदेह ॥
प्रश्न करत जिनदेवको, निकसत अद्भुत देह ॥ ७ ॥
सुर मनुष्य कर वैक्रिया, नाना ठौर रमाहिं ॥
सब थानक परदेशजिय, निकसै आवै जाहिं ॥ ८ ॥
तैजस वपु मुनिरायके, निकसत उभय प्रकार ॥
अशुभ शुभनके काजको, समुदघात तिहँ वार ॥ ९ ॥
तंतू सब लागे रहैं, सुख दुख वेवे आप ॥
देहादिकके प्रसरते, परदेशनिमें व्याप ॥ १० ॥
'भैया' वात अगम्य हैं, कहन सुननकी नाहिं ॥
जानत हैं जिन केवली, जे लच्छन जिय पाहिं ॥ ११ ॥

इति समुद्घातस्वरूप.

अथ मूढाष्टक लिख्यते ।

दोहा.

चिन्मूरत चिंता हरन, पूरन वांछित आश ॥
अश्वसेन अंगज निलौं[1], नमूं जिनेश्वर पाश[2] ॥ १ ॥
अपने शुद्ध स्वभावसों, करै न कवहू प्रीति ॥
लगे फिरहिं परद्रव्यसों, यह मूढनकी रीति ॥ २ ॥

---

१ मणि. २ पार्श्वनाथ.

चौपाई. (१६ मात्रा)

मूरख कहै ग्रन्थ पहिचानों । सांच झूठको भेद न जानों ॥
जो कुछ लिख्यो सोई मै मानों । मेरे हृदय यहै ठहरानो ॥३॥
धूप मांहि जो कहै अन्धेरा । सूरज अथवतं होय सवेरा ॥
हिंसा करत पुण्य बहु होई । ऐसौ लिख्यो सत्य मुहि सोई ॥४॥
मा कहिकैं जो बांझ बखाने । कर्म न होय प्रकृति परमाने ॥
जो मोको उपदेशहि ऐसो । तो मैं कहूं सत्य सब तैसो ॥ ५ ॥
सांच त्याग जो झूठ अलापै । झूठे वचन सत्य कहि थापै ॥
हिरदै सून्य सुन्यों मैं सबही । नैक विवेक धरों नहिं कबही॥६॥
ऐसे शून्य हिये जे प्रानी । ते कलियुगकी बनी निशानी ॥
तिनको देख दया मन धरिये । वाद विवाद कछू नहिं करिये॥७

दोहा.

ज्ञानवंत सुन वीनती, परसों नाही काम ॥
अनुभव आतम रामको, 'भैया' लख निजधाम ॥ ८ ॥

इति मूढाष्टकं ।

अथ सम्यक्त्वपचीसिका लिख्यते ।

सम्यक[2] आदि अनंत गुण, सहित सु आतम राम ॥
प्रगट भये जिहँ कर्म तज, ताहि करों परणाम ॥ १ ॥
उपशम वेदक क्षायकी, सम्यक तीन प्रकार ॥
ताहीके नव भेद हैं, कहों ग्रंथ अनुसार ॥ २ ॥

चौपाई. (१५ मात्रा)

उपसम समकित कहिये सोय । सात प्रकृति उपसम जहँ होय ।
दर्शन मोह तीन परकार । अनतानुबंधीकी चार ॥ ३ ॥

---

१ डुबते. २ सम्यक्र वा सम्यग्दर्शन.

क्षय उपसमके तीन प्रकार । तिनके नाम कहूं निरधार ॥
अनतानुवंधी चौकरी । जिहँ जिय शक्ति फोरकैं खरी ॥ ४ ॥
महा मिथ्यात मिश्र मिथ्यात । समै[1] प्रकृति उपशम विख्यात ॥
क्षय उपशम समकित तस नाम । अव दूजो वरनों इहि ठाम ॥५॥
अनतानु जे चार कषाय । महा मिथ्यात्व मिले क्षय जाय ॥
दोय प्रकृति उपसम ह्वै रहै । तासों क्षय उपसम पुनि कहै॥६॥
क्षय पद जाहिं प्रकृति जिहँ ठाम । समै प्रकृति उपसम तिहँ नाम॥
ये क्षय उपशम तिहुँ विधि कहे । अव वेदक वरनों सरदहै ॥७॥
जहाँ चार प्रकृति खप रहै । द्वै उपशम इक वेदक लहै ॥
क्षयउपसमवेदक तिहँ नाव । कहे ग्रंथमें हैं वहु ठांव ॥ ८ ॥
पांच खपै उपशम ह्वै एक । समैप्रकृति वेदै गहि टेक ॥
दूजो भेद यहै सिरदार । अव तीजैको सुनहु विचार ॥९॥
छहों प्रकृति जामे क्षय जाहिं । समै मिथ्यात्व मिटै तहँ नाहिं ॥
क्षायक वेदक लच्छन एह । कहे ग्रंथमें नहिं संदेह ॥ १० ॥
उपशमवेदक कहिये तहाँ । छह उपशम इक वेदै जहां ॥
क्षायक समकित तव जिय लहै । सातों प्रकृति मूलसों दहै ॥११॥
जव लग ये प्रकृति नहिं जाती । तव लग कहिये जीव मिथ्याती॥
तिनके दूर कियेतैं जीव । सम्यक दृष्टी कहे सदीव॥१२॥
उनकी थिति पूरी जव होय । तव वे खिरैं फिरैं नहिं सोय ॥
खिरकें निजगुण परगट लहै । सो गुण काल अनन्तो रहै १३
जे गुण प्रगट भये तज कर्म । ते सव जानो जियको धर्म ॥
जैसो प्रभु देखौ भगवान । तैसो है इनके सरधान ॥ १४॥
सम्यकवंत जीव वैरागी । भावन सों सवही का त्यागी ॥
निव्रत पक्ष करै व्रत नाही । अप्रत्याख्यान उदै[2] घटमाही ॥१५॥

---

(१) सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व (२) उदयरूप.

मनवचकाय जोग त्रिक डोलै। लखै आपनी कर्म कलोलैं॥
जितनी कर्म प्रकृति क्षय गई। तितनी कछु निर्मलता भई॥१६
प्रकटी शक्ति ताहि पहिचानै। अरु जिनवरकी आज्ञा मानै॥
अक्षर एक विरोधै कोय। ताको भ्रमन वहुत जग होय १७
तातैं व्रत पचखान न करै। जिनवरकी आज्ञासों डरै॥
लेकैं व्रत जो भंजै जीव। ते महा पापी कहे सदीव॥१८
अप्रत्याख्यान जाय नहिं जहाँ। व्रत पचखान पलै नहिं तहाँ।
सम्यकदृष्टी परम सुजान। धरहिं शुद्ध अनुभवको ध्यान१९
अनुभवमें आतमरस लसै। आतमरसमें शिव सुख वसै॥
आतम ध्यान धरयो जिनदेव। तातैं भये मुक्ति स्वयमेव॥२०॥
मुक्ति होनको वीज निहार। आतम ध्यान धरै अरिटार॥
ज्यों ज्यों कर्म विलयको जाहिं। त्यों त्यों सुख प्रगटै घट माहिं २१
प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान। कर चकचूर चढहिं गुण थान॥
आगें महा ध्यान धर धीर। कर्म शत्रु जीतै वल वीर॥२२॥
प्रगट करै निज केवल ज्ञान। सुख अनंत विलसै तिहँ थान॥
लोक अलोक सवहि झलकंत। तातैं सव भाखै भगवंत॥२३॥
चारों कर्म अघाती हार। तव वे पहुँचै मुकति मँझार॥
काल अनंतहि ध्रुव ह्वै रहै। तास चरन भवि वंदन कहै२४

सुख अनंत की नीव यह, सम्यक दर्शन जान॥
याहीतें शिवपद मिलै, 'भैया' लेहु पिछान॥ २५॥
सत्रहसै पंचासके, मारगसिर[1] सित पक्ष॥
तिथि लच्छन मुनिधर्मकी, मृगेपति[2] वार प्रत्यक्ष॥ २६॥

इति सम्यक्त्वपचीसिका।

---

१ दशमीं. २ सोमवार.

अथ वैराग्यपचीसिका लिख्यते ।

दोहा.

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव ॥
मन वच शीस नवायकें, कीजे तिनकी सेव ॥ १ ॥
जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग ॥
मूल दुहुनको यह कह्यो, जाग सकै तो जाग ॥ २ ॥
क्रोधमान माया धरत, लोभ सहित परिणाम ॥
येही तेरे शत्रु हैं, समुझो आतमराम ॥ ३ ॥
इनही च्यारों शत्रुको, जो जीतै जगमाहिं ॥
सो पावहि पथ मोक्षको, यामें धोखो नाहिं ॥ ४ ॥
जा लच्छीके काज तू, खोवत है निजधर्म ॥
सो लच्छी संग ना चलै, काहे भूलत भर्म ॥ ५ ॥
जा कुटुंवके हेत तू, करत अनेक उपाय ॥
सो कुटंव अगनी लगा, तोकों देत जराय ॥ ६ ॥
पोपत है जा देहको, जोग त्रिविधिके लाय ॥
सो तोकों छिन एकमें, दगा देय खिर जाय ॥ ७ ॥
लच्छी साथ न अनुसरै, देह चलै नहिं संग ॥
काढ़ काढ़ सुजनहि करै, देख जगतके रंग ॥ ८ ॥
दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय ॥
विषय सुखनके कारनै, सर्वस चले गमाय ॥ ९ ॥
जगहिं फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार ॥
चेतन अव किन चेतहू, नरभव लहि अतिसार ॥ १० ॥
ऐसें मति विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय ॥
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ११ ॥

पीतो सुधा स्वभावकी, जी ! तो कहूं सुनाय ॥
तू रीतो क्यों जातु है, वीतो नरभव जाय ॥ १२ ॥
मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट ॥
भ्रष्ट करत है सिष्टको, शुद्ध दृष्टि दै पिष्ट ॥ १३ ॥
चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेपको संग ॥
ज्यों प्रगटै परमातमा, शिव सुख होय अभंग ॥ १४ ॥
ब्रह्म कहूं तो मैं नहीं, क्षत्री हू पुनि नाहिं ॥
वैश्य शूद्र दोऊ नहीं, चिदानंद हूं माहिं ॥ १५ ॥
जो देखै इहि नैनसों, सो सव विनस्यो जाय ॥
तासों जो अपनो कहै, सो मूरख शिरराय ॥ १६ ॥
पुद्गलको जो रूप है, उपजै विनसै सोय ॥
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय ॥ १७ ॥
देख अवस्था गर्भकी, कौन कौन दुख होंहि ॥
वहुर मगन संसारमें, सौ लानत है तोहि ॥ १८ ॥
अधो शीस ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार ॥
थोरे दिनकी वात यह, भूलि जात संसार ॥ १९ ॥
अस्थि चर्म मलमूत्रमें, रैन दिनाको वास ॥
देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास ॥ २० ॥
रोगादिक पीड़ित रहै, महाकष्ट जो होय ॥
तबहू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय ॥ २१ ॥
मरन समय विललात है, कोऊ लेहु वचाय ॥
जानै ज्यों त्यों जीजिये, जोर न कछू वसाय ॥ २२ ॥
फिर नरभव मिलिवो नहीं, किये हु कोट उपाय ॥
तातैं वेगहि चेत हू, अहो जगतके राय ॥ २३ ॥

भैयाकी यह वीनती, चेतन चितहि विचार ॥
ज्ञानदर्श चारित्रमें, आपो लेहु निहार ॥ २४ ॥
एक सात पंचासके, संवत्सर सुखकार ॥
पक्ष शुकल तिथि धर्मकी, जै जै निशिपतिवार ॥ २५ ॥

इति वैराग्यपचीसी.

अथ परमात्माछत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

परम देव परमातमा, परम ज्योति जगदीश ॥
परम भाव उर आनके, प्रणमत हों नमि शीश ॥ १ ॥
एक जु चेतन द्रव्य है, तिनमें तीन प्रकार ॥
वहिरातम अन्तर तथा, परमातम पदसार ॥ २ ॥
वहिरातम ताको कहै, लखै न ब्रह्म स्वरूप ॥
मग्न रहै परद्रव्यमें, मिथ्यावंत अनूप ॥ ३ ॥
अंतर आतम जीव सो, सम्यग्दृष्टी होय ॥
चौथै अरु पुनि बारवें, गुणथानक लों सोय ॥ ४ ॥
परमातम पद ब्रह्मको, प्रगट्यो शुद्ध स्वभाय ॥
लोकालोक प्रमान सब, झलकै जिनमें आय ॥ ५ ॥
वहिरातमास्वभाव तज, अंतरातमा होय ॥
परमातम पद भजत है, परमातम है सोय ॥ ६ ॥
परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय ॥
परमातमको ध्यावते, यह परमातम होय ॥ ७ ॥
परमातम यह ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश ॥
परसों भिन्न निहारिये, जोइ अलख सोइ ईश ॥ ८ ॥

जो परमातम सिद्धमें, सो ही या तन माहिं ॥
मोह मैल दृग लगि रह्यो, तातैं सूझैं नाहिं ॥ ९ ॥
मोह मैल रागादिको, जा छिन कीजे नाश ॥
ता छिन यह परमातमा, आपहि लहै प्रकाश ॥ १० ॥
आतम सो परमातमा, परमातम सो सिद्ध ॥
बीचकी दुविधा मिटगई, प्रगट भई निज रिद्ध ॥ ११ ॥
मैंहि सिद्ध परमातमा, मैं ही आतमराम ॥
मैं ही ज्ञाता ज्ञेयको, चेतन मेरो नाम ॥ १२ ॥
मै अनंत सुखको धनी, सुखमय मोर स्वभाय ॥
अविनाशी आनंदमय, सो हों त्रिभुवन राय ॥ १३ ॥
शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान ॥
गुण अनंतकर संजुगत चिदानंद भगवान ॥ १४ ॥
जैसो शिव खेतहि बसै, तैसो या तनमाहिं ॥
निश्चय दृष्टि निहारतें, फेर रंच कहुँ नाहिं ॥ १५ ॥
कर्मनके संयोगतें, भये तीन परकार ॥
एक आतमा द्रव्यको, कर्म नचावन हार ॥ १६ ॥
कर्म संघाती आदिके, जोर न कछू बसाय ॥
पाई कला विवेककी, राग द्वेष विन जाय ॥ १७ ॥
कर्मनकी जर राग है, राग जरे जर जाय ॥
प्रगट होत परमातमा, भैया सुगम उपाय ॥ १८ ॥
काहे को भटकत फिरै, सिद्ध होनके काज ॥
राग द्वेष को त्यागदे, 'भैया' सुगम इलाज ॥ १९ ॥
परमातम पदको धनी, रंक भयो विललाय ॥
राग द्वेषकी प्रीतिसों, जनम अकारथ जाय ॥ २० ॥

राग द्वेषकी प्रीति तुम, भूलि करो जिन रंच ॥
परमातम पद ढांकके, तुमहिं किये तिरजंच ॥ २१ ॥
जप तप संयम सब भलो, राग द्वेष जो नाहिं ॥
राग द्वेषके जागते, ये सब सोये जांहिं ॥ २२ ॥
राग द्वेषके नाशतें, परमातम परकाश ॥
राग द्वेषके भासतें, परमातम पद नाश ॥ २३ ॥
जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार ॥
देख सयोगी स्वामिको, अपने हिये विचार ॥ २४ ॥
लाख बातकी बात यह, तोकों दई बताय ॥
जो परमातम पद चहै, राग द्वेष तज भाय ॥ २५ ॥
राग द्वेषके त्याग बिन, परमातम पद नाहिं ॥
कोटिकोटि जपतप करो, सबहि अकारथ जाहिं ॥ २६ ॥
दोष आतमाको यहै, राग द्वेषके संग ॥
जैसें पास मजीठके, वस्त्र और ही रंग ॥ २७ ॥
तैसें आतम द्रव्यको, राग द्वेषके पास ॥
कर्म रंग लागत रहै, कैसें लहै प्रकाश ॥ २८ ॥
इन कर्मनको जीतिबो, कठिन बात है मीत ॥
जड़ खोदें बिन नहिं मिटै, दुष्टजाति विपरीत ॥ २९ ॥
ल्लोपत्तोके किये, ये मिटवेके नाहिं ॥
ध्यान अग्नि परकाशकें, होम देहु तिहि माहिं ॥ ३० ॥
ज्यों दारूके गंजको, नर नहिं सकै उठाय ॥
तनक आग संयोगतैं, छिन इकमें उड़ि जाय ॥ ३१ ॥
देह सहित परमातमा, यह अचरजकी बात ॥

(१) टालटूल. (२) ढेरको.

राग द्वेषके त्यागतैं, कर्म शक्ति जर जात ॥ ३२ ॥
परमातमके भेद द्वय, निकल सकल परमान ॥
सुख अनंतमें एकसे, कहिवेको द्वय थान ॥ ३३ ॥
भैया वह परमातमा, सो ही तुममें आहि ॥
अपनी शक्ति सम्हारिके, लखो वेग ही ताहि ॥ ३४ ॥
राग द्वेषको त्यागके, धर परमातम ध्यान ॥
ज्यों पावे सुख संपदा, भैया इम कल्यान ॥ ३५ ॥
संवत विक्रम भूपको, सत्रहसे पंचास ॥
मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुति जास ॥ ३६ ॥

इति परमात्माछत्तीसी।

अथ नाटकपच्चीसी लिख्यते।

कर्म नाट नृत तोरके, भये जगत जिन देव ॥
नाम निरंजन पद लह्यो, करूं त्रिविधि तिहिं सेव ॥ १ ॥
कर्मनके नाटक नटत, जीव जगतके माहिं ॥
तिनके कछु लच्छन कहूं, जिन आगमकी छाहिं ॥ २ ॥
तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावनहार ॥
नाचत है जिय स्वांगधर, करकर नृत्य अपार ॥ ३ ॥
नाचत हैं जिय जगतमें, नाना स्वांग वनाय ॥
देव नर्क तिरजंचमें, अरु मनुष्य गति आय ॥ ४ ॥
स्वांग धरै जव देवको, मानत है निज देव ॥
वहीं स्वांग नाचत रहै, ये अज्ञानकी टेव ॥ ५ ॥
औरनसों औरहि कहै, आप कहै हम देव ॥
गहिके स्वांग शरीरको, नाचत है स्वयमेव ॥ ६ ॥

भये नरकमें नारकी, लागे करन पुकार ॥
छेदन भेदन दुख सहै, यही नाच निरधार ॥ ७ ॥
मान आपको नारकी, त्राहि त्राहि नित होय ॥
यहै स्वांग निर्वाह है, भूलपरो मति कोय ॥ ८ ॥
नित निगोदके स्वांगकी, आदि न जानै जीव ॥
नाचत है चिरकालके, भव्य अभव्य सदीव ॥ ९ ॥
इत्तर नाम निगोद है, तहाँ बसत जे हंस ॥
ते सब स्वांगहि खेलकैं, वहुर धरयो यह वंस ॥ १० ॥
उछरि उछरिकैं गिरपरै, ते आवै इहि ठौर ॥
मिथ्यादृष्टि स्वभाव धर, यहै स्वांग शिरमौर ॥ ११ ॥
कबहू पृथिवी कायमें, कबहू अग्नि स्वरूप ॥
कबहू पानी पौन है, नाचत स्वांग अनूप ॥ १२ ॥
वनस्पतीके भेद बहु, स्वास अठारह वार ॥
तामें नाच्यो जीव यह, धर धर जन्म अपार ॥ १३ ॥
विकलत्रयके स्वांगमें, नाचे चेतन राय ॥
उसीरूप है परणये, वरनें कैसें जाय ॥ १४ ॥
उपजे आय मनुष्यमें, धरै पँचेंद्री स्वांग ॥
अष्ट मदनि मातो रहै, मानो खाई भांग ॥ १५ ॥
पुण्य योग भूपति भये, पापयोग भये रंक ॥
सुख दुख आपहि मानिके, नाचत फिर निशंक ॥ १६ ॥
नारि नपुंसक नर भये, नाना स्वांग रमाहिं ॥
चेतनसों परिचय नहीं, नाच नाच खिर जाहिं ॥ १७ ॥
ऐसे काल अनंत हुव, चेतन नाचत तोहि ॥
अजहूं आप संभारिये, सावधान किन ! होहि ॥ १८ ॥

सावधान जे जिय भये, ते पहुंचे शिव लोक ॥
नाचभाव सब त्यागके, विलसत सुखके थोक ॥ १९ ॥
नाचत हैं जग जीव जे, नाना स्वांग रमंत ॥
देखत हैं तिह नृत्यको, सुख अनंत विलसंत ॥ २० ॥
जो सुख देखत होत है, सो सुख नाचत नाहिं ॥
नाचनमें सब दुःख है, सुख निजदेखन माहिं ॥ २१ ॥
नाटकमें सब नृत्य है, सारवस्तु कछु नाहिं ॥
ताहि विलोको कौन है, नाचन हारे माहिं ॥ २२ ॥
देखै ताको देखिये, जानै ताको जान ॥
जो तोको शिव चाहिये, तो ताको पहचान ॥ २३ ॥
प्रगट होत परमातमा, ज्ञान दृष्टिके देत ॥
लोकालोक प्रमान सब, छिन इकमें लखलेत ॥ २४ ॥
'भैया' नाटक कर्मतें, नाचत सब संसार ॥
नाटक तज न्यारे भये, ते पहुंचे भव पार ॥ २५ ॥

इति नाटकपचीसी।

अथ उपादाननिमित्तका संवाद लिख्यते।

दोहा.

पाद प्रणमि जिनदेवके, एक उक्ति उपजाय ॥
उपादान अरु निमितको, कहुं संवाद बनाय ॥ १ ॥
पूछत है कोऊ तहाँ, उपादान किह नाम ॥
कहो निमित्त कहिये कहा, कबके हैं इह ठाम ॥ २ ॥
उपादान निजशक्ति है, जियको मूल स्वभाव ॥
है निमित्त परयोगतें, बन्यो अनादि बनाव ॥ ३ ॥

निमित कहै मोको सबै, जानत हैं जग लोय ॥
तेरो नाव न जानहीं, उपादान को होय ॥ ४ ॥
उपादान कहै रे निमित, तू कहा करै गुमान ॥
मोकों जाने जीव वे, जो हैं सम्यकवान ॥ ५ ॥
कहै जीव सब जगतके, जो निमित्त सोइ होय ॥
उपादानकी बातको, पूछै नाहीं कोय ॥ ६ ॥
उपादान विन निमित तू, कर न सकै इक काज ॥
कहा भयो जग ना लखै, जानत हैं जिनराज ॥ ७ ॥
देव जिनेश्वर गुरु यती, अरु जिन आगम सार ॥
इहि निमित्ततैं जीव सब, पावत हैं भवपार ॥ ८ ॥
यह निमित्त इह जीवको, मिल्यो अनंती बार ॥
उपादान पलट्यो नहीं, तौ भटक्यो संसार ॥ ९ ॥
कै केवली कै साधु कै, निकट भव्य जो होय ॥
सो क्षायक सम्यक लहै, यह निमित्तवल जोय ॥ १० ॥
केवलि अरु मुनिराजके, पास रहैं बहु लोय ॥
पै जाको सुलट्यो धनी, क्षायक ताको होय ॥ ११ ॥
हिंसादिक पापन किये, जीव नर्कमें जाहिं ॥
जो निमित्त नहिं कामको, तो इम काहे कहाहिं ॥ १२ ॥
हिंसामें उपयोग जिहँ, रहै ब्रह्मके राच ॥
तेई नर्कमें जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच ॥ १३ ॥
दया दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय ॥
जो निमित्त झूंठो कहो, यह क्यों मानै लोय ॥ १४ ॥
दया दान पूजा भली, जगतमांहिं सुखकार ॥
जहँ अनुभवको आचरन, तहँ यह बंध विचार ॥ १५ ॥

यह तो बात प्रसिद्ध है, शोच देख उरमाहिं ॥
नरदेहीके निमितविन, जिय क्यों मुक्ति न जाहिं ॥ १६ ॥
देह पींजरा जीवको, रोकै शिवपुर जात ॥
उपादानकी शक्तिसों, मुक्ति होत रे भ्रात ॥ १७ ॥
उपादान सब जीवपै, रोकन हारो कौन ॥
जाते क्यों नहिं मुक्तिमें, विन निमित्तके होन ॥ १८ ॥
उपादान सु अनादिको, उलट रह्यो जगमाहिं ॥
सुलटतही सूधे चले, सिद्ध लोकको जाहिं ॥ १९ ॥
कहुं अनादि विन निमितही, उलट रह्यो उपयोग ॥
ऐसी बात न संभवै, उपादान तुम जोग ॥ २० ॥
उपादान कहै रे निमित, हमपै कही न जाय ॥
ऐसे ही जिन केवली, देखै त्रिभुवन राय ॥ २१ ॥
जो देख्यो भगवान ने, सोही सांचो आहि ॥
हम तुम संग अनादिके, बली कहोगे काहि ॥ २२ ॥
उपादान कहै वह बली, जाको नाश न होय ॥
जो उपजत विनशत रहै, बली कहांतें सोय ॥ २३ ॥
उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार ॥
परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार ॥ २४ ॥
जो अहारके जोगसों, जीवत है जगमाहिं ॥
तो वासी संसारके, मरते कोऊ नाहिं ॥ २५ ॥
सूर सोम मणि अगिनके, निमित लखैं ये नैन ॥
अंधकारमें कित गयो, उपादान दृग दैन ॥ २६ ॥
सूर सोम मणि अग्नि जो, करैं अनेक प्रकाश ॥
नैन शक्ति विन ना लखै, अन्धकार सम भास ॥ २७ ॥

कहै निमित्त वे जीव को? मो विन जगके माहिं ॥
सबै हमारे वश परे, हम विन मुक्ति न जाहिं ॥२८॥
उपादान कहै रे निमित्त, ऐसे बोल न बोल ॥
तोको तज निज भजत हैं, तेही करैं किलोल ॥ २९ ॥
कहै निमित्त हमको तजे, ते कैसें शिव जात ॥
पंचमहाव्रत प्रगट हैं, और हु क्रिया विख्यात ॥ ३० ॥
पंचमहाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार ॥
परको निमित्त खपायके, तव पहुंचे भवपार ॥ ३१ ॥
कहै निमित्त जग मैं वडो, मोतैं वडो न कोय ॥
तीन लोकके नाथ सव, मो प्रसादतैं होय ॥ ३२ ॥
उपादान कहै तू कहा, चहुं गतिमें ले जाय ॥
तो प्रसादतैं जीव सव, दुखी होहिं रे भाय ॥ ३३ ॥
कहै निमित्त जो दुख सहै, सो तुम हमहि लगाय ॥
सुखी कौन तैं हौत है, ताको देहु बताय ॥ ३४ ॥
जा सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं ॥
ये सुख, दुखके मूल हैं, सुख अविनाशी माहिं ॥ ३५ ॥
अविनाशी घट घट वसै, सुख क्यों विलसत नाहिं? ॥
शुभनिमित्तके योगविन, परे परे विललाहिं ॥ ३६ ॥
शुभनिमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार ॥
पै इक सम्यक दर्श विन, भटकत फिर्यो गँवार ॥ ३७ ॥
सम्यक दर्श भये कहा, त्वरित मुकतिमें जाहिं ॥
आगें ध्यान निमित्त हैं, ते शिवको पहुँचाहिं ॥ ३८ ॥
छोर ध्यानकी धारना, मोर योगकी रीति ॥
तोर कर्मके जालको, जोर लई शिवप्रीति ॥ ३९ ॥

तब निमित्त हारयो तहाँ, अब नहिं जोर वसाय ॥
उपादान शिव लोकमें, पहुँच्यो कर्म खपाय ॥ ४० ॥
उपादान जीत्यो तहाँ, निजबल कर परकास ॥
सुख अनंत ध्रुव भोगवै, अंत न वरन्यो तास ॥ ४१ ॥
उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवनपै वीर ॥
जो निजशक्ति संभारहीं, सो पहुँचै भवतीर ॥ ४२ ॥
भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे वरनी जाय ॥
वचनअगोचर वस्तु है, कहिवो वचन वनाय ॥ ४३ ॥
उपादान अरु निमितको, सरस बन्यो संवाद ॥
समदृष्टीको सुगम है, मूरखको वकवाद ॥ ४४ ॥
जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद ॥
साख जिनागमसों मिलै, तो मत कीज्यो खेद ॥ ४५ ॥
नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको वास ॥
तिहँ थानक रचनाकरी, 'भैया' स्वमति प्रकास ॥ ४६ ॥
संवत विक्रम भूप को, सत्रहसै पंचास ॥
फाल्गुण पहिले पक्षमें, दशों दिशा परकाश ॥ ४७ ॥

इति उपादाननिमित्तसंवाद ।

अथ चतुर्विंशतितीर्थंकरजयमाला लिख्यते ।

दोहा.

वीस चार जगदीशको, वंदों शीस नवाय ॥
कहूं तास जयमालिका, नामकथन गुण गाय ॥ १ ॥

पद्धरिछन्द. (१६ मात्रा)

जय जय प्रभु ऋषभ जिनेन्द्रदेव । जय जय त्रिभुवनपति

करहिं सेव ॥ जय जय श्री अजित अनंत जोर । जय जय जि-
हँ कर्म हरे कठोर ॥ २ ॥ जय जय प्रभु संभव शिवसरूप । जय
जय शिवनायक गुण अनूप ॥ जय जय अभिनंदन निर्विकार ।
जय जय जिहिं कर्म किये निवार ॥ ३ ॥ जय जय श्री सुमति
सुमति प्रकाश । जय जय सब कर्म निकर्म नाश ॥ जय जय
पदमप्रभ पदम जेम । जय जय रागादि अलिप्त नेम ॥ ४ ॥
जय जय जिनदेव सुपार्श्व पास । जय जय गुणपुंज कहैं नि-
वास ॥ जय जय चंद्रप्रभ चन्द्रकांति । जय जय तिहुं पुरजन
हरन भ्रांति ॥ ५ ॥ जय जय पुफदंत महंत देव । जय जय
पट द्रव्यनि कहन भेव ॥ जय जय जिन शीतल शीलमूल ।
जय जय मनमथ मृग शारदूल ॥ ६ ॥ जय जय श्रेयांस अनं
त वच्छ । जय जय परमेश्वर हो प्रतच्छ ॥ जय जय श्री जिनवर
वासुपूज । जय जय पूज्यनके पूज्य तूंज[1] ॥ ७ ॥ जय जय प्र-
भु विमल विमल महंत । जय जय सुख दायक हो अनंत ॥ जय
जय जिनवर श्री अनंत नाथ । जय जय शिवरमणी ग्रहण हा-
थ ॥ ८ ॥

जय जय श्री धर्म जिनेन्द्र धन्न । जय जय जिन निश्चल करन
मन्न ॥ जय जय श्रीजिनवर शांतिदेव । जय जय चक्री तीर्थंकरेव
॥ ९ ॥ जय जय श्रीकुंथु कृपानिधान । जय जय मिथ्यातमहरन
भान ॥ जय जय अरिजीतन अरहनाथ । जय जय भवि जीवन
मुक्ति साथ ॥ १० ॥ जय जय मल्लि नाथ महा अभीत । जय
जय जिन मोहनरेन्द्र जीत ॥ जय जय मुनिसुव्रत तुम सु-
ज्ञान । जय जय त्रिभुवनमें दीप भान ॥ ११ ॥ जय जय नमि-

(१) तू ही.

नाथ निवास सुक्ख । जय जय तिहुं भवननि हरन दुःख ॥ जय जय श्री नेम कुमारचंद । जय जय अज्ञानतमके निकंद ॥ १२ ॥ जय जय श्रीपार्श्व प्रसिद्ध नाम । जय जय भविदायक मुक्ति-धाम ॥ जय जय जिनवर श्रीवर्द्धमान । जय जय अनंत सुख-के निधान ॥ १३ ॥ जय जय अतीत जिन भये जेह । जय जय सु अनागत ह्वै हैं तेह ॥ जय जय जिन हैं जे विद्यमान ॥ जय जय तिन वंदों धर सु ध्यान ॥१४॥ जय जय जिनप्रतिमा जिन स्वरूप । जय जयसु अनंत चतुष्ट भूप ॥ जय जय मन वच निज सीसनाय । जय जय जय 'भैया' नमै सुभाय ॥ १५ ॥

घत्ता.

जिनरूप निहारे आप विचारे, फेर न रंचक भेद कहै ॥
'भैया' इम वंदै ते चिरनंदै, सुख अनंत निजमाहिं लहै ॥ १६ ॥

दोहा.

रागभाव छूट्यो नहीं, मिट्यो न अंतर दोख ॥
संतति बाढै बंधकी, होय कहांसों मोख ॥ १७ ॥

इति चतुर्विंशतितीर्थंकरजयमाला.

अथ पंचेन्द्रियसंवाद लिख्यते ।

दोहा.

प्रथम प्रणमि जिनदेवको, बहुरि प्रणमि शिवराय ॥
साधु सकलके चरनको, प्रणमों सीस नवाय ॥ १ ॥
नमहुं जिनेश्वर बैनको, जगत जीव सुखकार ॥
जस प्रसाद घटपट खुलै, लहिये बुद्धि अपार ॥ २ ॥

इक दिन इक उद्यानमें, बैठे श्री मुनिराज ॥
धर्म देशना देत हैं, भवि जीवनके काज ॥ ३ ॥
समदृष्टी श्रावक तहां, और मिले बहु लोक ॥
विद्याधर क्रीड़ा करत, आय गये बहु थोक ॥ ४ ॥
चली बात व्याख्यानमें, पांचों इन्द्रिय दुष्ट ॥
त्यों त्यों ये दुख देत हैं, ज्यों ज्यों कीजे पुष्ट ॥ ५ ॥
विद्याधर बोले तहाँ, कर इन्द्रिनको पक्ष ॥
स्वामी हम क्यों दुष्ट हैं, देखो बात प्रत्यक्ष ॥ ६ ॥
हमहींतें सब जगलखे, यह चेतन यह नावं ॥
इक इन्द्रिय आदिक सबै, पंच कहे जिहँ ठावं ॥ ७ ॥
हमतैं जप तप होत हैं, हमतैं क्रिया अनेक ॥
हमहींतें संयम पलै, हम विन होय न एक ॥ ८ ॥
रागी द्वेषी होय जिय, दोष हमहि किम देहु ॥
न्याव हमारो कीजिये, यह विनती सुन लेहु ॥ ९ ॥
हम तीर्थंकर देव पैं, पांचों हैं परतच्छ ॥
कहो मुक्ति क्यों जात हैं, निजभावन कर स्वच्छ ॥ १०॥
स्वामि कहैं तुम पांच हो, तुममें को सिरदार ॥
तिनसों चर्चा कीजिये, कहो अर्थ निरधार ॥ ११ ॥
नाक कान नैना कहैं, रसना फरस विख्यात ॥
हम काहू रोकैं नही, मुक्ति लोकको जात ॥ १२ ॥
नाक कहैं प्रभु मैं वडो, मोतैं वडो न कोय ॥
तीन लोक रक्षा करै, नाक कमी जिन होय ॥ १३ ॥

(१) मत.

नाक रहेतैं सब रह्यो, नाक गये सब जाय ॥
नाक बरोबर जगतमें, और न बडो कहाय ॥ १४ ॥
प्रथम वदन पर देखिये, नाक नवल आकार ॥
सुंदर महा सुहावनो, मोहे लोक अपार ॥ १५ ॥
सीस नवत जगदीसको, प्रथम नवत है नाक ॥
तौही तिलक विराजतो, सत्यारथ जग वाक ॥ १६ ॥

ढाल "दान सुपात्रन दीजिये" एदेशी भाषा गुजराती.

नाक कहै जग हूं वडो, वात सुनो सब कोई रे ॥
नाक रहे पत[1] लोकमें, नाक गये पत खोई रे, नाक० ॥ १७ ॥
नाक रखनके कारणे, वाहूवलि वलवंतो रे ॥
देश तज्यो दीक्षा ग्रही, पण न नम्यों चक्रवंतो रे, नाक० ॥१८॥
नाक रहनके कारनै, रामचन्द्र जुध कीधो रे ॥
सीता आणी वलकरी, वलि ते संयम लीधो रे, नाक० ॥१९॥
नाक राखण सीता सती, अगनी कुंडमें पैठी रे ॥
सिंहासन देवन रच्यो, तिहँ ऊपर जा वैठी रे, नाक० ॥२०॥
दशार्णभद्र महा मुनि, नाक राखण व्रत लीधो रे ॥
इन्द्र नम्यो चरणे तिहाँ, मान सकल तज दीधोरे, नाक०॥२१
सगर थयो सौरो धणी, छलथी दीक्षा लीधीरे ॥
नाक तणी लज्जा करी, फिर नवि मनसा कीधीरे, नाक०॥२२
अभय कुंवर श्रेणिक तणों, वेटो आज्ञाकारीरे ॥
तूंकारो तातहि दियो, ततछिन दीक्षा धारीरे, नाक०॥२३॥
नाम कहूँ केता तणां, जीव तरचा जगमाहीरे ॥
नाक तणे परसादथी, शिव संपति विलसाईरे, नाक०॥२४॥

(१) इज्जत.

सुख विलसैं संसारना, ते सहु मुझ परसादैरे ॥
नाना वृक्ष सुगंधता, नाक सकल आस्वादैरे, नाक कहै० ॥२५॥
तीर्थंकर त्रिभुवन धणी, तेहना तनमां वासोरे ॥
परम सुगंधो घणी लसै, ते सुख नाक निवासोरे, नाक कहै०॥२६
ओर सुगंधो अनेक छै, ते सव नाकज जाणैरे ॥
आनंदमां सुख भोगवे, 'भैया' एम वखाणैरे, नाक कहै० ॥२७॥

दोहा.

कान कहै रे नाक सुन, तू कहा करै गुमान ॥
जो चाकर आगें चलै, तो नहिं भूप समान ॥ २८ ॥
नाक सुरनि पानी झरैं, वहै सलेष्म अपार ॥
गूंघनि कर पूरित रहै, लाजै नही गँवार ॥ २९ ॥
तेरी छींक सुनै जिते, करै न उत्तम काज ॥
मूदै तुह दुर्गंधमें, तऊ न आवै लाज ॥ ३० ॥
वृषभ ऊंट नारी निरख, और जीव जग माहिं ॥
जित तित तोको छेदिये, तौऊ लजानो नाहिं ॥ ३१ ॥
कान कहे जिन वैनको, सुनै सदाचित लाय ॥
जस प्रसाद इह जीवको, सम्यग्दर्शन थाय ॥ ३२ ॥
कानन कुंडल झलकता, मणि मुक्ता फल सार ॥
जगमग जगमग ह्वै रहै, देखै सब संसार ॥ ३३ ॥
सातों सुरको गायवो, अद्भुत सुखमय स्वाद ॥
इन कानन कर परखिये, मीठे मीठे नाद ॥ ३४ ॥
कानन सुन श्रावक भये, कानन सुनि मुनिराज ॥
कान सुनहि गुण द्रव्यके, कान वड़े शिरताज ॥ ३५ ॥

राग काफी धमालमें०

कानन सुन ध्यानन ध्याइये हो, चिन्मूरत चेतन पाइये हो, कानन०टेक ।

कानन सरभर को करे हो, कान वड़े सिरदार ॥
छहों द्रव्यके गुण सुणै हो, जाने सकल विचार, कानन० ॥३६॥

संघ चतुर्विध सव तरे हो, कानन सुनि जिन वैन ॥
निज आतम सुख भोगवै हो, पावत शिवपद ऐन, कानन० ॥३७॥

द्वादशांग वानी सुनै हो, काननके परसाद ॥
गणधर तो गुरुवा कह्या हो, द्रव्य सूत्र सव याद, कानन० ॥ ३८ ॥

कानन सुनि भरतेश्वरे हो, प्रभुको उपज्यो ज्ञान ॥
कियो महोच्छव हरखसें हो, पायो है पद निर्वान, कानन० ॥३९॥

विकट वैन धन्ना सुने हो, निकस्यो तज आवास ॥
दीक्षा गह किरिया करी हो, पायो शिवगति वास, कानन० ॥४०॥

साधु अनाथीसों सुन्यो हो, श्रेणिक जीव विचार ॥
क्षायक सम्यक तव लह्यो हो, पावैगो भवदधि पार, कानन० ॥४१॥

नेमनाथवानी सुनी हो, लीनो संयम भार ॥
ते द्वारिकके दाहसों हो, उवरे हैं जीव अपार, कानन० ॥ ४२ ॥

पार्श्वनाथके वैन सुने हो, महामन्त्र नवकार ॥
धरणेंधर पदमावती हो, भये हैं जु तिहि वार, कानन० ॥ ४३॥

कानन सुनि कानन गये हो, भूपति तज वहु राज ॥
काज सवारे आपने हो, केवलि ज्ञान उपाज, कानन० ॥ ४४ ॥

जिनवानी कानन सुने हो, जीव तरे जग मांहि ॥
नाम कहां लों लीजिये हो, 'भैया'जे शिवपुर जांहि, कान० ४५

दोहा.

आंख कहैरे कान तू, इस्यो करै अहँकार ॥
मैलनिकर मूंद्यो रहै, लाजै नहीं लगार ॥ ४६ ॥

भली बुरी सुनतो रहै, तोरै तुरत सनेह ॥
तो सम दुष्ट न दूसरो, धारी ऐसी देह ॥ ४७ ॥
दुष्टवचन सुन तो जरै, महा क्रोध उपजंत ॥
तो प्रसादतैं जीव वहु, नरकन जाय परंत ॥ ४८ ॥
पहिले तुमको वेधिये, नरनारीके कान ॥
तोहू नही लजात है, वहुर धरै अभिमान ॥ ४९ ॥
काननकी वातैं सुनी, सांची झूंठी होय ॥
आँखिन देखी वात जो, तामें फेर न कोय ॥ ५० ॥
इन आंखिनसों देखिये, तीर्थंकरको रूप ॥
सुख असंख्य हिरदै लसै, सो जानै चिद्रूप ॥ ५१ ॥
आँखिन लख रक्षा करै, उपजै पुण्य अपार ॥
आँखिनके परसादसों, सुखी होत संसार ॥ ५२ ॥
आँखिनतैं सव देखिये, तात मात सुत भ्रात ॥
देव गुरू अरु ग्रन्थ सव, आँखिनतैं विख्यात ॥ ५३ ॥

ढाल—"वनमालीके वाग चंपो मौलि रह्योरी" ए देशी ।

आंखिनके परसाद, देखे लोक सवैरी ॥
आवै निजपद याद, प्रतिमा पेखत वेरी, आंखनके० ॥ ५४ ॥
देखूं दृग सिद्धान्त, ग्रन्थ अनेक कह्यारी ॥
जे भाख्या भगवंत, दर्वित तेह लह्यारी, आंखन० ॥ ५५ ॥
समवशरणकी रिद्धि, देखत हर्ष घनोरी ॥
प्रभु दर्शन फलसिद्धि, नाटक कौन गिनोरी, आँखन० ॥ ५६ ॥
जिन मंदिर जयकार, प्रतिमा परम वनीरी ॥
देखत हर्ष अपार, थुति नहिं जाहिं भनीरी, आँखन० ॥ ५७ ॥

ईर्य्या समिति निहार, साधु चलै जु भलेरी ॥
ते पावैं शिवनार, सुखकी कीर्ति फलेरी, आँखिन० ॥ ५८ ॥
आँखिन विंव निहार, सम्यक शुद्ध लह्योरी ॥
गोत तीर्थंकर धार, रावन नाम कह्योरी, आँखिन० ॥ ५९ ॥
चारों परतेक बुद्ध, देखत भाव फिरेरी ॥
लहि निज आतमशुद्ध, भवजल वेग तिरेरी, आँखिन० ॥ ६० ॥
पूरव भव आहार, देते दृष्टि परय्योरी ॥
इहि चौवीसी सार, अंस कुमर जु तरय्योरी, आँखिन० ॥६१॥
वाघिनि साधु विदार, दंतहि दृष्टि धरीरी ॥
पूरव भवहि निहार, त्यागन देह करीरी, आँखिन० ॥ ६२ ॥
शालिभद्र सुकुमार, श्रेणिक दृष्टि परय्योरी ॥
गहि संयमको भार, आतम काज करय्योरी, आँखिन० ॥ ६३ ॥
देख्यो जुद्ध अकाज, दीक्षा वेग गहेरी ॥
पांडव तज सब राज, निज निधि वेग लहेरी, आंखन० ॥ ६४ ॥
कहूं कहाँलों नाम, जीव अनेक तरेरी ॥
'भैया' शिवपुर ठाम, आंखितैं जाय वरेरी, आँखन० ॥ ६५ ॥

दोहा.

जीभ कहै रे आँखि तुम, काहे गर्व करांहि ॥
काजल कर जो रंगिये, तो हू नाहिं लजांहि ॥ ६६ ॥
कायर ज्यों डरती रहै, धीरज नहीं लगार ॥
बातबातमें रोयदे, बोलै गर्व अपार ॥ ६७ ॥
जहाँ तहाँ लागत फिरै, देख सलौनो रूप ॥
तेरे ही परसाद तैं, दुख पावै चिद्रूप ॥ ६८ ॥

कहा कहूं दृगदोपको, मोपैं कहे न जाहिं ॥
देख विनाशी वस्तुको, वहुर तहाँ ललचाहिं ॥ ६९ ॥
जीभ कहै मोतैं सवै, जीवत है संसार ॥
पटरस भुंजों स्वाद ले, पालों सव परिवार ॥ ७० ॥
मोविन आंखन खुल सकैं, कान सुनै नहिं वैन ॥
नाक न सूंघै वासको, मो विन कहीं न चैन ॥ ७१ ॥
मंत्र जपत इह जीभसों, आवत सुरनर धाय ॥
किंकर ह्वै सेवा करै, जीभहिके सुपसाय ॥ ७२ ॥
जीभहितैं जंपत रहैं, जगत जीव जिन नाम ॥
जसु प्रसादतैं सुख लहैं, पावै उत्तम ठाम ॥ ७३ ॥

ढाल—"रे जीया तो विन वडीरे छ मास" ए देशी ।

यतीश्वर जीभ वडी संसार, जपै पंच नवकार,
जतीश्वर० ॥ टेक ॥

द्वादशांगवाणी श्रवैजी, वोलै वचन रसाल ॥
अर्थ कहै सूत्रन सवैजी, सिखवै धर्म विशाल, यतीश्वर०॥७४॥
दुरजनतैं सज्जन करैजी, वोलत मीठे वोल ॥
ऐसी कला न औरपैंजी, कौन आंख किह तोल, यतीश्वर० ॥७५॥
जीभहितैं सव जीतिये जी, जीभहितैं सव हार ॥
जीभहितैं सव जीवकेजी, कीजतु है उपकार, यतीश्वर०॥७६॥
जीभहितैं गणधर भयेजी, भव्यनि पंथ दिखाय ॥
आपन वे शिवपुर गयेजी, कर्मकलंक खपाय, यतीश्वर०॥७७॥
जीभहितैं उवझायजूजी, पावै पद परधान ॥
जीभहितैं समकित लह्यो जू, परदेशी परवान, यतीश्वर०॥७८॥

मथुरा नगरीमें हुवोजी, जंबूनाम कुमार ॥
कहिकैं कथा सुहावनीजी, प्रति बोध्यो परिवार, यतीश्वर०॥७९॥
रावनसों विरचे भलेजी, वाल महामुनि वाल ॥
अष्टापद मुक्त गयाजी, देखहु ग्रंथ निहाल, यतीश्वर०॥ ८० ॥
मिटै उरझ उरकी सबैजी, पूछत प्रश्न प्रतक्ष ॥
प्रगट लहै परमात्माजी, विनसे भ्रमको पक्ष, यतीश्वर०॥ ८१ ॥
तीन लोकमें जीभही जी, दूर करै अपराध ॥
प्रतिक्रमणकिरिया करैजी, पढै सिझाये साध, यतीश्वर ॥८२॥
जीभहि तैं सव गाइयेजी, सातों सुरके भेद ॥
जीभहितैं जस जंपियेजी, जीभहि पढिये वेद, यतीश्वर, ॥८३॥
नाम जीभतैं लीजियेजी, उत्तर जीभहि होय ॥
जीभहि जीव खिमाइयेजी, जीभ समौ नहि कोय, यतीश्वर॥८४॥
केते जिय मुक्ति गयेजी, जीभहिके परसाद ॥
नाम कहांलों लीजियेजी, भैया बात अनादि, जतीश्वर ॥८५॥

दोहा.

फर्स कहैरे जीभ तू, एतो गर्व करंत ॥
तो लागै झूंठो कहै, तो हू नाहि लजंत ॥ ८६ ॥
कहै वचन कर्कस बुरे, उपजै महा कलेश ॥
तेरे ही परसादतैं, भिड़ भिड़ मरै नरेश ॥ ८७ ॥
तेरे ही रस काजको, करत अरंभ अनेक ॥
तोहि तृपति क्यों ही नही, तोतैं सवै उदेक ॥ ८८ ॥
तोमै तो अवगुण घने, कहत न आवै पार ॥
तो प्रसादतैं सीसको, जात न लागै वार ॥ ८९ ॥
झूंठे ग्रंथ न तू पढ़ै, दै झूंठो उपदेश ॥

जियको जगत फिरावती, और हु करै कलेश ॥ ९० ॥
जा दिन जिय थावर वसत, ता दिन तुममें कौन ॥
कहा गर्व खोटो करो, नाक आँख मुख श्रौन ॥ ९१ ॥
जीव अनंते हम धरैं, तुम तौ संख असंखि ॥
तितहू तो हम विन नही, कहा उठत हो झंखि ॥ ९२ ॥
नाक कान नैना सुनो, जीभ कहा गर्वाय ॥
सव कोऊ शिरनायकै, लागत मेरे पाय ॥ ९३ ॥
झूठी झूठी सव कहै, सांची कहै न कोय ॥
विन काया के तप तपे, मुक्ति कहांसों होय ॥ ९४ ॥
सहै परीसह वीस द्वै, महा कठिन मुनि राज ॥
तव तौ कर्म खपाइकैं पावत हैं शिवराज ॥ ९५ ॥

ढाल–" मोरी सहियोरी ढाल न आवैगो" ए देशी ।

मोरासाधुजी फरस वडो संसार, करै कई उपकार, मोरा.

दक्षिण करतैं दीजिये जी, दान अनेक प्रकार ॥
तो तिहूँ भवशिवपद लहैजी, मिटै मरनकी मार, मोरा०॥९६॥
दान देत मुनिराजको जी, पावै परमानंद ॥
सुरनर कोटि सेवा करैजी, प्रतपै तेज दिनंद, मोरा० ॥ ९७ ॥
नरनारी कोऊ धरोजी, शील व्रतहिं शिरदार ॥
सुख अनेक सो जी लहैजी, देखो फरस प्रकार, मो० ॥ ९८ ॥
तपकर काया कृश करेजी, उपजै पुण्य अपार ॥
सुख विलसै सुर लोककेजी, अथवा भवदधि पार, मोरा०॥ ९९ ॥
भाव जु आतम भावतोजी, सो वैठो मो माहिं ॥
काया विन किरिया नही जी, किरिया विन सुख नाहिं मो०॥१००॥

गज सुकुमार गिरयो नहीं जी, फरस तपत भई जोर ॥
केवल ज्ञान उपायकैंजी, पहुँच्यो शिवगति ओर, मोरा० ॥१०१॥
खंदक ऋषिकी खाल उतारी; सह्यो परीसह जोर ॥
पूर्व बंध छूटै नहीजी, घट गये कर्म कठोर, मोरा० ॥१०२॥
देखहु मुनि दमदंतको जी, कौरों करी उपाधि ॥
ईंटनमें गर्भित भयोजी, तऊन तजीय समाधि, मोरा० ॥ १०३ ॥
सेठ सुदर्शनको दियोजी, राजा दंड प्रहार ॥
सह्यो परीसह भावस्योंजी, प्रगट्यो पुण्य अपार, मोरा० ॥१०४॥
प्रसन्न चन्द्र शिर फरसियोजी, फिर जगये सब भाव ॥
नरकहि तज शिवगति लहीजी, देखहु फरस उपाव, मोरा० १०५
जेते जिय मुकते गयेजी, फरसहिंके उपगार ॥
पंच महाव्रत विन धरेजी, कोऊ न उतरयो पार, मोरा० ॥१०६॥
नांव कहांलों लीजियजी, वीत्यो काल अनंत ॥
'भैया' मुझ उपकारकोजी, जानै श्रीभगवंत, मोरा० ॥१०७॥

सोरठा.

मन बोल्यो तिहँ ठौर, अरे फरस संसारमें ॥
तू मूरख शिरमौर, कहा गर्व झूंठो करै ॥ १०८ ॥
इक अंगुल परमान, रोग छानवें भर रहे ॥
कहा करै अभिमान, देख अवस्था नरककी ॥ १०९ ॥
पांचों अव्रत सार, तिनसेती नित पोषिये ॥
उपजै कई विकार, एतेपैं अभिमान यह ॥ ११० ॥
छिन इकमें खिर जाय, देखत दृष्ट शरीर यह ॥
एतेपैं गर्वाय, तोसम मूरख कौन है ॥ १११ ॥

दोहा.

मन राजा मन चक्रि है, मन सबको सिरदार ॥
मनसों वडो न दूसरो, देख्यो इहि संसार ॥ ११२ ॥
मनतें सबको जानियें, जीव जिते जगमाहिं ॥
मनतें कर्म खपाइये, मनसरभर कोउ नाहिं ॥ ११३ ॥
मनतें करुणा कीजिये, मनतें पुण्य अपार ॥
मनतें आतमतत्त्वको, लखियें सर्व विचार ॥ ११४ ॥
मनहि सयोगी स्वामिपैं, सत्य रह्यो ठहराय ॥
चार कर्मके नाशतें, मन नहिं नाश्यो जाय ॥ ११५ ॥
मन इन्द्रिनको भूप है, इन्द्रिय मनके दास ॥
यह तो वात प्रसिद्ध है; कीन्हीं जिनपरकाश ॥ ११६ ॥
तव वोले मुनिरायजी, मन क्यों गर्व करंत ॥
देख हु तंदुल मच्छको, तुमतें नर्क परंत ॥ ११७ ॥
पाप जीव कोई करो, तू अनुमोदै ताहि ॥
तासम पापी तू कह्यो, अनरथ लेहि विसाहि ॥ ११८ ॥
इन्द्रिय तो वैठी रहैं, तू दौर निशदीश ॥
छिन छिन वांधै कर्मको, देखत है जगदीश ॥ ११९ ॥
वहुत वात कहिये कहा, मन सुनि एक विचार ॥
परमातमको ध्याइये, ज्यों लहिये भवपार ॥ १२० ॥
मन वोल्यो मुनि राजसों, परमातम है कौन ॥
स्वामी ताहि वताइये, ज्यों लहिये सुख भौन ॥ १२१ ॥
आतमको हम जानते, जो राजत घट माहिं ॥
परमातम किह ठौर है, हम तो जानत नाहिं ॥ १२२ ॥

परमातम इहि ठौर है, रागद्वेष जिहिं नाहिं ॥
ताको ध्यावत जीव ये, परमातम ह्वै जाहिं ॥ १२३ ॥
परमातम द्वै विधि लसै, सकल निकल परमान ॥
तिसमें तेरे घट वसै, देखि ताहि धर ध्यान ॥ १२४ ॥
ढाल—" कपूर हुवै अति उजलो रे मिरियासेती रंग" ए देशी.।
प्राणी आतम धरम अनूपरे, जगमें प्रगट चिद्रूप, प्राणी० टेक।
इन्द्रिनकी संगति कियेरे, जीव परै जग माहिं ॥
जन्म मरन बहु दुख सहैरे, कबहू छूटै नाहिं, प्राणी० ॥१२५॥
भौंरो पर्यो रस नाककेरे, कमलमुदित भये रैन ॥
केतकी कांटन बाँधियोरे, कहूं न पायो चैन , प्राणी० ॥१२६॥
काननकी संगत कियेरे, मृग मार्यो वन माहिं ॥
अहि पकर्यो रस कानकेरे, कितहू छूट्यो नाहिं, प्राणी० ॥१२७॥
आँखनिरूप निहारकैरे, दीप परत है धाय ॥
देखहु प्रगट पतंगकोरे, खोवत अपनो काय, प्राणी० ॥१२८॥
रसनारस मछ मारियोरे, दुर्जन कर विसवास ॥
यातैं जगत विगूचियोरे, सहै नरकदुख वास, प्राणी० ॥१२९॥
फरसहितैं गज वसपर्योरे बंध्यो सांकल तान ॥
भूख प्यास सबदुखसहैरे, किहँविधिकहहिं बखान प्राणी० १३०॥
पंचेन्द्रियकी प्रीतिसोंरे, जीव सहै दुख घोर ॥
काल अनंतहिं जग फिरैरे, कहूँ न पावे ठोर, प्राणी ॥१३१॥
मन राजा कहिये वडोरे, इंद्रिनको सिरदार ॥
आठ पहर प्रेरत रहैरे, उपजै कई विकार, प्राणी० ॥१३२॥
मन इंद्री संगति कियेरे, जीव परै जग जोय ॥
विषयनकी इच्छा बढेरे, कैसें शिवपुर होय, प्राणी० ॥१३३॥

इन्द्रिनतें मन मारियेंरे, जोरियें आतम माहिं ॥
तोरियें नातो रागसोंरे, फोरियें बल इयों थाहिं, प्राणी०॥१३४॥
इन्द्रिन नेह निवारियेंरे, टारियें क्रोध कषाय ॥
धारियें संपति शास्वतीरे, तारियें त्रिभुवन राय प्राणी० ॥१३५॥
गुण अनंत जामें लसेंरे, केवल दर्शन आदि ॥
केवल ज्ञान विराजतोरे, चेतन चिह्न अनादि, प्राणी०॥१३६॥
थिरता काल अनादिलोंरे, राजें जिहँ पद माहिं ॥
गुण अनंत स्वामी वहेरे, दूजो कोऊ नाहिं, प्राणी० ॥१३७॥
शक्ति अनंत विराजतीरे, दोष न जामहि कोय ॥
समकित गुणकर सोभितोरे, चेतन लखियें सोय, प्राणी० १३८॥
बढे घटे कबहू नहीरे, अविनाशी अविकार ॥
भिन्न रहे परद्रव्यसोंरे, सो चेतन निरधार, प्राणी० ॥१३९॥
पंच वर्णमें जो नहीरे, नही पंच रस माहिं ॥
आठ फरसतें भिन्नहेरे, गंध दोऊ कोउ नाहिं, प्राणी० ॥१४०॥
जानत जो गुण द्रव्यकेरे, उपजन विनसन काल ॥
सो अविनाशी आतमारे, चिह्नहु चिह्न दयाल, प्राणी०॥१४१॥
गुण अनंत या ब्रह्मकेरे, कहियें किहँविधि नाम ॥
'भैया' मनवचकायसोंरे, कीजे तिहपरिणाम, प्राणी० ॥१४२॥

दोहा.

परद्रव्यनसों भिन्न जो, स्वकिय भाव रसलीन ॥
सो चेतन परमातमा, देख्यो ज्ञान प्रवीन ॥१४३॥
जो देखें गुण द्रव्यके, जानें सबको भेद ॥
सो या घटमें प्रगट है, कहा करत है खेद ॥१४४॥
गुण अनंतको नाथ वह, चिदानंद भगवान ॥

दर्शन ज्ञान विराजतो, देखो धर निज ध्यान ॥ १४५॥
देखनहारो ब्रह्म वह, घट घटमें परतच्छ ॥
मिथ्यातमके नाशतैं, सूझै सबको स्वच्छ ॥१४६॥
जैसो शिव तैसो इहाँ, भैया फेर न कोय ॥
देखो सम्यक नयनसों, प्रगट विराजै सोय ॥१४७॥
निकट ज्ञानदृग देखतैं, विकट चर्मदृग होय ॥
चिकट कटै जब रागकी, प्रगट चिदानंद जोय ॥ १४८॥
जिनवानी जो भगवती, दास तास जो कोय ॥
सो पावहि सुखसास्वते, परम धर्म पद होय ॥१४९॥
संवत सत्र इक्यावने, नगर आगरे माहिं ॥
भादों सुदि सुभ दोजको, बालख्याल प्रगटाहिं ॥१५०॥
सुरसमाहिं सब सुख बसै, कुरसमाहिं कछु नाहिं ॥
दुरस बात इतनी यहै, पुरुष प्रगट समझांहिं ॥१५१॥
गुण लीजे गुणवंत नर, दोष न लीज्यो कोय ॥
जिनवानी हिरदै बसे, सबको मंगल होय ॥१५२॥

इति पंचेन्द्रियसंवाद ।

अथ ईश्वरनिर्णयपचीसी लिख्यते ।

दोहा.

परमेश्वर जो परमगुरु, परमज्योति जगदीस ॥
परमभाव उर आनकें, वंदत हों नमि सीस ॥ १ ॥
ईश्वर ईश्वर सब कहै, ईश्वर लखै न कोय ॥
ईश्वर तो सो ही लखै, जो समदृष्टी होय ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश जे, ते पाये नहिं पार ॥
ता ईश्वरको और जन, क्यों पावै निरधार ॥ ३ ॥

ईश्वरकी गति अगम है, पार न पायी जाय ॥
वेदस्मृति सव कहत हैं, नाम भजोरे भाय ॥ ४ ॥

कवित्त.

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों पच हारे, काहु न निहारे प्रभु कैसे जगदीस हैं । दशों अवतार माहिं कौनेंधों जनम लीन्हों, तिन हू न पाये परब्रह्म ऐसे ईस हैं । ध्रुव प्रहलाद दुरवासा लोम ऋषि भये, किन हू न कहे ऐसे आप विस्वावीस हैं । आवत अचंभो इह धावत सकल जग, पावत न कोऊ ताहि नांव काहि सीस हैं ॥ ५ ॥

एक मतवारे कहैं अन्य मतवारे सव, मेरे मतवारे परवारे मत सारे हैं । एक पंचतत्त्ववारे एक एकतत्त्व वारे, एक भ्रममतवारे एक एक न्यारे हैं ॥ जैसें मतवारे वकैं तैसें मतवारे वकैं, तासों मतवारे तकैं विना मतवारे हैं ॥ शांतिरसवारे कहैं मतको निवारे रहैं, तेई प्रानप्यारे लहैं और सव वारे हैं ॥ ६ ॥

अनङ्गशेखर.

और अज्ञान आतमा लखै न तू महातमा, लख्यो है तो महातमा निजातमा न सूझई । प्रसिद्ध जो विख्यातमा विराजै गात गातमा, कहावै पात पातमा चिदातमा न वूझई ॥ मिथ्यात्व मोह मातमा लख्यो तु जीव घातमा, क्रोधादि वातवातमा अज्ञातमा हु झूझई । अनंत शक्ति जातमा उद्योत ज्यों प्रभातमा, सु सूझै खंध आतमा तू वंधमें अरूझई ॥ ७ ॥

कवित्त.

हिंसाके करैया जोपै जैहैं सुरलोक मध्य, नर्कमांहि कहो वुध

(१) किधौं. २ भोले.

कौन जीव जावेंगे ? । लेकैं हाथ शस्त्र जेई छेदत पराये प्रान, ते नहीं पिशाच कहो और को कहावेंगे ? ॥ ऐसे दुष्ट पापी जे संतापी पर जीवनके, ते तो सुख संपतिसों कैसें के अघावेंगे ॥ अहो ज्ञानवंत संत तंतकै विचार देखो, बोवें जे बंबूर ते तौ आम कैसें खांवेंगे ? ॥ ८ ॥

कुंडलिया ।

सुख जो तुमको चाहिये, सो सुख सबको चाह ।
खान पान जीवत रहै, धन सनेह निरवाह ॥
धन सनेह निरवाह, दाह दुख काहि न व्यापै ।
थावर जंगम जीव, मरन भय धार जु कांपै ॥
आपै देह विचार, होयकैं आपहि सनमुख ।
'भैया' घटपट खोल, बोल कहि कौन चहै सुख ॥ ९ ॥

कवित्त.

वीतराग वानीकी न जानी बात प्रानी मूढ, ठानी तैं क्रिया अनेक आपनी हठाहठी । कर्मनके बंध कौन अन्ध कछू सूझै तोहि, रागदोष पर्णितसों होत जो गठागठी ॥ आतमाके जीतकी न रीत कहू जानै रंच, ग्रन्थनके पाठ तू करै कहा पठापठी । मोहको न कियो नाश सम्यक न लियो भास, सूत न कपास करै कोरीसों[1] लठालठी ॥ १० ॥

हाथी घोरे पालकी नगारे रथ नालकी न, चकचोल चालकी न चढि रीझियतु है । स्वेतपट चालकी न मोती मन मालकी न, देख द्युति भाल की न मान कीजियतु है ॥ शैल बाग ताल की न जल जंतु जालकी न, दया वृद्ध बालकी न दंड दीजियतु है ।

(१) कपड़ा बुननेवालेसों.

देख गति कालकी न ताहू कौन हालकी न, चाविचूव गालकी न वीन लीजियतु है ॥ ११ ॥

जैसें कोउ स्वान पर्‌यो काचके महलवीच, ठौर ठौर स्वान देख भूँस भूँस मर्‌यो है। वानर ज्यों मूठी वांध पर्‌यो है पराये वश, कूयेमें निहार सिंह आप कूद पर्‌यो है ॥ फटिककी शिलामें विलोक गज जाय अर्‌यो, नलिनीके सुवटाको कौनैधों पकर्‌यो है। तैसें ही अनादिको अज्ञानभाव मान हंस, आपनो स्वभाव भूलि जगतमें फिर्‌यो है ॥ १२ ॥

दोहा.

ईश्वरके तो देह नहिं, अविनाशी अविकार ॥
ताहि कहैं शठ देह धर, लीन्हों जग अवतार ॥ १३ ॥

जो ईश्वर अवतार ले, मरै वहुर पुन सोय ॥
जन्म मरन जो धरतु है, सो ईश्वर किम होय ॥ १४ ॥

एकनकी घां होय कैं, मरै एकही आन ॥
ताको जे ईश्वर कहैं, ते मूरख पहचान ॥ १५ ॥

ईश्वरके सव एकसे, जगतमांहि जे जीव ॥
काहूपै नहिं द्वेष है, सवपै शांति सदीव ॥ १६ ॥

ईश्वरसों ईश्वर लरै, ईश्वर एक कि दोय ॥
परशुराम अरु रामको, देखहु किन जगलोय ॥ १७ ॥

रौद्र ध्यान वर्तै जहां, तहां धर्म किम होय ॥
परम वंध निर्दय दशा, ईश्वर कहिये सोय ॥ १८ ॥

ब्रह्माके खरशीस हो, ता छेदन कियो ईस ॥
ताहि सृष्टिकर्त्ता कहै, रख्यो न अपनो सीस ॥ १९ ॥

जो पालक सब सृष्टिको, विष्णु नाम भूपाल ॥
सो मारयो इक बानतैं, प्रान तजे ततकाल ॥ २० ॥
महादेव वर दैत्यको, दीनों होय दयाल ॥
आपन पुन भाजत फिरयो, राख लेहु गोपाल ॥ २१ ॥
जिनको जग ईश्वर कहै, ते तो ईश्वर नाहिं ॥
ये हू ईश्वर ध्यावते, सो ईश्वर घट माहिं ॥ २२ ॥
ईश्वर सो ही आतमा, जाति एक है तंत ॥
कर्म रहित ईश्वर भये, कर्म सहित जगजंत ॥ २३ ॥
जो गुण आतम द्रव्यके, सो गुण आतम माहिं ॥
जड़के जड़में जनिये, यामै तो भ्रम नाहिं ॥ २४ ॥
दर्शन आदि अनंत गुण, जीव धरै तिहुं काल ॥
वर्णादिक पुद्गल धरै, प्रगट दुहूंकी चाल ॥ २५ ॥
सत्यारथ पथ छोड़के, लगै मृषाकी ओर ॥
ते मूरख संसारमें, लहै न भवको छोर ॥ २६ ॥
'भैया' ईश्वर जो लखै, सो जिय ईश्वर होय ॥
यों देख्यो सर्वज्ञने, यामें फेर न कोय ॥ २७ ॥

इति ईश्वरनिर्णयपचीसी ।

अथ कर्त्ताअकर्त्तापचीसी लिख्यते ।

दोहा.

कर्मनको कर्त्ता नहीं, धरता सुद्ध सुभाय ॥
ता ईश्वरके चरन को, वंदों सीस नवाय ॥ १ ॥
जो ईश्वर करता कहैं, भुक्ता कहिये कौन ॥
जो करता सो भोगता, यहै न्यायको भौन ॥ २ ॥

दुहूं दोपतें रहित है, ईश्वर ताको नाम ॥
मनवचशीस नवाइकैं, करूं ताहि परणाम ॥ ३ ॥
कर्मनको करता वहै, जापैं ज्ञान न होय ॥
ईश्वर ज्ञानसमूह है, किम कर्त्ता ह्वै सोय ॥ ४ ॥
ज्ञानवंत ज्ञानहिं करैं, अज्ञानी अज्ञान ॥
जो ज्ञाता कर्त्ता कहैं, लगै दोप असमान ॥ ५ ॥
ज्ञानीपै जड़ता कहा, कर्त्ता ताको होय ॥
पंडित हिये विचारकैं, उत्तर दीजे सोय ॥ ६ ॥
अज्ञानी जड़तामयी, करै अज्ञान निशंक ॥
कर्त्ता भुगता जीव यह, यों भाखै भगवंत ॥ ७ ॥
ईश्वरकी जिय जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान ॥
जो इह नैं कर्त्ता कहो, तौ है वात प्रमान ॥ ८ ॥
अज्ञानी कर्त्ता कहैं, तौ सव वनै वनाव ॥
ज्ञानी ह्वै जड़ता करै, यह तौ वनै न न्याव ॥ ९ ॥
ज्ञानी करता ज्ञानको, करै न कहुं अज्ञान ॥
अज्ञानी जड़ता करै, यह तो वात प्रमान ॥ १० ॥
जो कर्त्ता जगदीश है, पुण्य पाप किहँ होय ॥
सुख दुख काको दीजिये, न्याय करहु वुध लोय ॥ ११ ॥
नरकनमें जिय डारिये, पकर पकरकें वाँह ॥
जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह ॥ १२ ॥
ईश्वरकी आज्ञा विना, करत न कोऊ काम ॥
हिंसादिक उपदेशको, कर्त्ता कहिये राम ॥ १३ ॥
कर्त्ता अपने कर्मको, अज्ञानी निर्धार ॥
दोप देत जगदीशको, यह मिथ्या आचार ॥ १४ ॥

ईश्वर तौ निर्दोष है, करता भुक्ता नाहिं ॥
ईश्वरको कर्त्ता कहै, ते मूरख जगमाहिं ॥ १५ ॥
ईश्वर निर्मल मुकुरवत, तीनलोक आभास ॥
सुख सत्ता चैतन्यमय, निश्चय ज्ञान विलास ॥ १६ ॥
जाके गुन तामें बसै, नहीं औरमें होय ॥
सूधी दृष्टि निहारतैं, दोष न लागै कोय ॥ १७ ॥
वीतरागवानी विमल, दोषरहित तिहुंकाल ॥
ताहि लखै नहिं मूढ जन, झूठे गुरुके वाल ॥ १८ ॥
गुरु अंधे शिष्य अंधकी, लखै न बाट कुवाट ॥
विना चक्षु भटकत फिरै, खुलै न हिये कपाट ॥ १९ ॥
जोलौं मिथ्यादृष्टि है, तोलौं कर्त्ता होय ॥
सो हू भावित कर्मको, दर्वित करै न कोय ॥ २० ॥
दर्व कर्म पुद्गल मयी, कर्त्ता पुद्गल तास ॥
ज्ञानदृष्टिके होत ही, सूझे सब परकाश ॥ २१ ॥
जोलौं जीव न जान ही, छहों कायके वीर ॥
तौलौं रक्षा कौनकी, कर है साहस धीर ॥ २२ ॥
जानत है सब जीवको, मानत आप समान ॥
रक्षा यातैं करत है, सबमें दरसन ज्ञान ॥ २३ ॥
अपने अपने सहजके, कर्त्ता हैं सब दर्व ॥
यहै धर्मको मूल है, समझ लेहु जिय सर्व ॥ २४ ॥
'भैया, बात अपार है, कहै कहांलौं कोय ॥
थोरेहीमें समझियो, ज्ञानवंत जो होय ॥ २५ ॥

(१) स्वभावके.

सत्रहसे इक्यावनै, पोष शुकल तिथि वार ॥
जो ईश्वरके गुण लखै, सो पावे भवपार ॥ २६ ॥

इति कर्त्ताअकर्त्तापचीसी.

अथ दृष्टांतपचीसी लिख्यते ।

दोहा.

केवल ज्ञान स्वरूपमें, वसै चिदातम देव ॥
मन वच शीस नवायकैं, कीजे तिनकी सेव ॥ १ ॥
एक शुद्ध परमातमा, दुविधि तास पद जान ॥
त्रिविधि नमत हों जोर कर, चहुं निक्षेपन वान ॥ २ ॥
सुरसति वर्षति मेघ जिम, जिन मुख अम्रत धार ॥
पीवत है भवि जीव जे, ते सुख लहैं अपार ॥ ३ ॥
जिय हिंसा जगमें बुरी, हिंसा फल दुख देत ॥
मकरी मांखी भक्ष्यती, ताहि चिरी भख लेत ॥ ४ ॥
जिय हिंसा करते नहीं, धरते शुद्ध स्वभाय ॥
तौ देखौ मुनिराजके, सेवत सुरनर पाय ॥ ५ ॥
झूंठ भलो नहिं जगतमें, देखहु किन दृग जोय ॥
झूंठी तूती बोलती, ता ढिग रहै न कोय ॥ ६ ॥
सांच बडो संसारमें, मानत सब परमान ॥
सांच सूआ कहै रामको, सुनत सबै धर कान ॥ ७ ॥
विन दीनौं जे लेत हैं, ताहि लगै वहु पाप ॥
चौरहि सूरी दीजिये, देखहु जग संताप ॥ ८ ॥

---

(१) सप्तमी.

लेत नहीं परद्रव्यको, देत सकल परत्याग ॥
तौ लच्छी भगवानके, रहत चरन ढिग लाग ॥ ९ ॥
शीलव्रत पालै नहीं, भालै परतिय रूप ॥
पेख हु रावन आदि वहु, परत नर्कके कूप ॥ १० ॥
मन वच काया योगसों, शीलव्रतहिं ठहराय ॥
सेठ सुदर्शन देखिये, सुरगण भये सहाय ॥ ११ ॥
परिग्रह संग्रह ना भलो, परिग्रह दुखको मूल ॥
माखी मधुको जोरती, देखहु दुखको शूल ॥ १२ ॥
जिनके परिग्रह रंच नहिं, मातजात जिम वाल ॥
तिह मुनिवरके इंद्र हू, सेवत चरन त्रिकाल ॥ १३ ॥
मन वच काया योगसों, सव त्यागी मुनिराज ॥
कछु त्यागी जिय अणुव्रती, तेहू हैं सिरताज ॥ १४ ॥
राग न कीजे जगतमें, राग किये दुख होय ॥
देखहु कोकिल पींजरै, गहि डारत हैं लोय ॥ १५ ॥
देख संडासी पकरियें, अहिरण ऊपर डार ॥
आगहि घनसों पीटिये, लोहैं संग निवार ॥ १६ ॥
नेहन कीजै आनसों, नेह किये दुख होय ॥
नेह सहित तिल पेलिये, डार जंत्रमें जोय ॥ १७ ॥
परसंगति कीजे नहीं, परहि मिले दुख पेख ॥
पानी जैसें पीटिये, वस्त्र मिले दुख देख ॥ १८ ॥
पवन जु पोषै मसकको, मसक थूल ह्वै जाय ॥
देखहु संगति दुष्टकी, पौनहि देह जराय ॥ १९ ॥
चेतन चंदन वृक्षसों, कर्म साँप लपटाहिं ॥
बोलत गुरुवच मोरके, सिथल होय दुर जाहिं ॥२०॥

(१) लुहारकी धोंकनी.

कुगुरु कुगतिके सारथी, मूढनको ले जाहिं ॥
हिंसाके उपदेश दै, धर्म कहै तिहमाहिं ॥ २१ ॥
दक्षनके हित दक्षसों, शठकै शठसों प्रीत ॥
अलि अम्बुजपै देखिये, दर्दुर कर्दम मीत ॥ २२ ॥
परभावनसों विरचकें, निज भावनको ध्यान ॥
जो इह मारग अनुसरै, सो पावै निर्वान ॥ २३ ॥
वहुत वात कहिये कहा, थोरे ही दृष्टन्त ॥
जो पावै निज आतमा, सो पावै भव अन्त ॥ २४ ॥
'भैया' निज पाये विना, भ्रमन अनंते कीन ॥
तेई तरे संसारमें, जिहँ आपो लखि लीन ॥ २५ ॥
एक सात पण दोय हैं, अश्विन दिशा प्रकास ॥
यह दृष्टांत पचीसिका, कही भगोतीदास ॥ २६ ॥

इति दृष्टान्तपचीसी

अथ मनवत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

दर्शन ज्ञान चरित्र जिहँ, सुख अनंत प्रतिभास ॥
वंदत हों तिहँ देवको, मन धर परम हुलास ॥ १ ॥
मनसों वंदन कीजिये, मनसों धरिये ध्यान ॥
मनसों आतम तत्त्वको, लखिये सिद्ध समान ॥ २ ॥
मन खोजत है ब्रह्मको, मन सब करै विचार ॥
मनविन आतम तत्त्वको, करै कौन निरधार ॥ ३ ॥
मनसम खोजी जगतमें, और दूसरो कौन ॥
खोज गहै शिवनाथको, लहै सुखनको भौन ॥ ४ ॥

---

(१) दशमी.

जो मन सुलटै आपको, तौ सूझै सब सांच ॥
जो उलटै संसारको, तौ मन सूझै कांच ॥ ५ ॥
सत असत्य अनुभय उभय, मनके चार प्रकार ॥
दोय झुकै संसारको, द्वै पहुंचावै पार ॥ ६ ॥
जो मन लागै ब्रह्मको, तों सुख होय अपार ॥
जो भटकै भ्रम भावमें, तौ दुख पार न वार ॥ ७ ॥
मनसो बली न दूसरो, देख्यो इहि संसार ॥
तीन लोकमें फिरत ही, जातन लागै वार ॥ ८ ॥
मन दासनको दास है, मन भूपनको भूप ॥
मन सब बातनि योग्य है, मनकी कथा अनूप ॥ ९ ॥
मन राजाकी सैन सब, इन्द्रिनसे उमराव ॥
रात दिना दौरत फिरै, करै अनेक अन्याव ॥ १० ॥
इन्द्रियसे उमराव जिहँ, विषय देश विचरंत ॥
भैया तिह मन भूपको, को जीतै विन संत ॥ ११ ॥
मन चंचल मन चपल अति, मन वहु कर्म कमाय ॥
मन जीते विन आतमा, मुक्ति कहो किम थाय ॥ १२ ॥
मनसो जोधा जगतमें, और दूसरो नाहिं ॥
ताहि पछारै सो सुभट, जीत लहै जग माहिं ॥ १३ ॥
मन इन्द्रिनको भूप है, ताहि करै जो जेर ॥
सो सुख पावे मुक्तिके, यामें कछू न फेर ॥ १४ ॥
जब मन मूंद्यो ध्यानमें, इंद्रिय भई निराश ॥
तब इह आतम ब्रह्मनें, कीने निज परकाश ॥ १५ ॥
मनसो मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय ॥
सुख समुद्रको छाडकें, विषके वनमें जाय ॥ १६ ॥

विष भक्षनतैं दुख वढै, जानै सव संसार ॥
तवहू मन समझै नहीं, विषयन सेती प्यार ॥ १७ ॥
छहों खंडके भूप सव, जीत किये निजदास ॥
जो मन एक न जीतियो, सहै नर्क दुख वास ॥ १८ ॥
छाँड़ तनकसी झूंपरी, और लंगोटी साज ॥
सुख अनंत विलसंत है, मन जीतै मुनिराज ॥ १९ ॥
कोटि सताइस अपछरा, वत्तिस लक्ष विमान ॥
मन जीते विन इन्द्र हू, सहै गर्भ दुख आन ॥ २० ॥
छाँड़ घरहि वनमें वसै, मन जीतनके काज ॥
तौ देखो मुनिराजजू, विलसत शिवपुर राज ॥ २१ ॥
अरि जीतनको जोर है, मन जीतनको खाम ॥
देख त्रिखंडी भूपको, परत नर्कके धाम ॥ २२ ॥
मन जीतै जे जगतमें, ते सुख लहैं अनंत ॥
यह तौ वात प्रसिद्ध है, देख्यो श्रीभगवंत ॥ २३ ॥
देख वडे आरंभसों, चक्रवर्ति जग माहिं ॥
फेरत ही मन एकको, चले मुक्तिमें जांहिं ॥ २४ ॥
वाहिज परिगह रंच नहिं, मनमें धरै विकार ॥
तंदुल मच्छ निहारिये, पड़ै नरक निरधार ॥ २५ ॥
भावनहीतैं वंध है, भावनहीतैं मुक्ति ॥
जो जानै गति भावकी, सो जानै यह युक्ति ॥ २६ ॥
परिग्रह कारन मोहको, इम भाख्यो भगवान ॥
जिहँ जिय मोह निवारियो, तिहिं पायो कल्यान ॥ २७ ॥

अरिल्ल.

कहा भयो वहु फिरे तीर्थ अड़सठका ॥
कहा होय तन दहे, रैन दिन कठका ॥

कहा होय नित रटै राम मुख पट्ठका।
जो वस नाही तोहि पंसेरी अट्ठका ॥ २८ ॥
कहा मुंडाये मूंड वसे कहा मट्ठका।
कहा नहाये गंग नदीके तट्टका ॥
कहा कथाके सुने वचनके पट्ठका।
जो वस नाही तोहि पसेरी अट्ठका ॥ २९ ॥

चौपाई १६ मात्रा.

कहा कहों जियकी जड़ताई। मोपैं कछु वरनी नहिं जाई ॥
आरज खंड मनुष्यभव पायो। सो विषयनसँग खेल गमायो ॥३०॥
आगें कहो कौन गति जैहो। ऐसे जनम वहुर कहाँ पैहो ॥
अरे तू मूरख चेत सवेरे। आवत काल छिनहि छिन नेरे ॥३१॥
जवलों जमकी फौज न आवै। तवलों जो मनको समुझावै ॥
आतम तत्त्व सिद्धसम राजै। ताहि विलोक मर्नभय भाजै ॥३२
वहुत वात कहिये कहु केती। कारज एक ब्रह्म ही सेती ॥
ब्रह्म लखै सो ही सुख पावै। भैया सो परब्रह्म कहावै ॥ ३३ ॥

चौपाई १५ मात्रा.

नगर आगरे जैनी वसै। गुण मणिरिद्ध वृद्धि कर लसै ॥
तिहँ थानक मन ब्रह्म प्रकाश। रचना कही 'भगोतीदास' ३४

इति मनवत्तीसी।

अथ स्वप्नवत्तीसी लिख्यते।

दोहा.

स्वपनेवत संसारमें जागे श्रीजिनराय ॥
तिनके चरन चितारकें, वंदत हों मन लाय ॥ १ ॥

---

(१) आठ पसेरीका मन।

मोह नींदमें जीवको, वीत गयो चिरकाल ॥
जाग न कबहू आपकी, कीन्ही सुध संभाल ॥ २ ॥
जानत हैं सब जगतमें, यह तन रहवो नाहिं ॥
पोपत हैं किहँ भावसों, मोह गहलता माहिं ॥ ३ ॥
मेरे मीत नचीत तू, है बैठ्यो किहँ ठौर ॥
आज काल जम लेत है, तोहि सुपन भ्रम और ॥ ४ ॥
देखत देखत आंखसों, यह तन विनस्यो जाय ॥
एतेपर थिर मानिये, यहो मूढ शिरराय ॥ ५ ॥
जो प्रभातको देखिये, सो संध्याको नाहिं ॥
ताहि सांच कर मानिये, भ्रम अरु कहा कहाहिं ॥ ६ ॥
ज्यों सुपनेमें देखिये, त्यों देखत परतच्छ ॥
सब विनाशी वस्तु है, जात छिनकमें गच्छ ॥ ७ ॥
सुपनेमें भ्रम देखिये, जागत हू भ्रम मूल ॥
ताहि सांच शठ मानकें, रह्यो जगतमें फूल ॥ ८ ॥
सुपनेमें अरु जागतें, फेर कहा है वीर ॥
वाहूमें भ्रम भूल है, वाहूमें भ्रम भीर ॥ ९ ॥
सुपनेवत संसार है, मूढ़ न जाने भेव ॥
आठ पहर अज्ञानमें, मग्न रहैं अहमेव ॥ १० ॥
सुपनेसों कहैं झूंठ है, जाग कहैं निजगेह ॥
ते मूरख संसारमें, लहैं न भवको छेह ॥ ११ ॥
कहा सुपनमें सांच है? कहा जगतमें सांच? ॥
भूल मूढ थिरमानकें, नाचत डोलै नाच ॥ १२ ॥
आँख मूंद खोलै कहा, जागत कोऊ नाहिं ॥
सोवत सब संसार है, मोह गहलता माहिं ॥ १३ ॥

(१) चली.

मोह नींदको त्यागकें, जे जिय भये सचेत ॥
ते जागे संसारमें, अविनाशी सुख लेत ॥ १४ ॥
अविनाशी पद ब्रह्मको, सुख अनंतको मूल ॥
जाग लह्यो जिहँ जगतमें, तिहँ पायो भवकूल॥ १५ ॥
अविनाशी घट घट प्रगट, लखत न कोऊ ताहि ॥
सोय रहे भ्रम नींदमें, कहि समुझावें काहि ॥ १६ ॥
आप कहै हम दक्ष हैं, और न कहै अज्ञान ॥
अहो सुपनकी भूलमें, कहा गहै अभिमान ॥ १७ ॥
मान आपको भूपती, औरनसों कहै रंक ॥
देख सुपनकी संपदा, मोहित मूढ निशंक ॥ १८ ॥
देख सुपनकी साहिवी, मूरख रह्यो लुभाय ॥
छिन इकमें छय जायगी, धूम महलके न्याय ॥ १९ ॥
कहा सुपनकी साहिवी, मूरख हिये विचार ॥
जम जोधा छिन एकमें, लेहैं तोहि पछार ॥ २० ॥
सोवतमें इह जीवको; सुरति रहै नहिं रंच ॥
आप कछू मानै कछू, सवहि भरम परपंच ॥ २१ ॥
मूरख है यह आतमा, क्यों ही समझत नाहिं ॥
देख सुपनवत आंखसों, बहुर मगन तिह माहिं ॥ २२ ॥
जानत है जमराजकी, आवत फौज प्रचंड ॥
मार करै इह देहको, छिनक माहिं शत खंड ॥ २३ ॥
ऐसे जमको भय नहीं, पोषत तन मन लाय ॥
तिनसम मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय ॥ २४ ॥
मूरख सोवत जगतमें, मोह गहलतामाहिं ॥
जन्म मरन बहु दुख सहै, तो हू जागत नाहिं ॥ २५ ॥

जन ऊपर जम जोर है, जिनसों जम हु डराय ॥
तिनके पद जो सेइये, जमकी कहा वसाय ॥ २६ ॥
जिनके पदको सेवते, निजपद परगट होय ॥
तिनतें वडो न दूसरो, और जगतमें कोय ॥ २७ ॥
निजपद परगट होत ही, शिवपद मिलै सुभाय ॥
जनम मरन वहु दुख मिटै, जम विलख्यो है जाय ॥ २८ ॥
जम जीतेतें जीवको, सुख अनंत ध्रुव होय ॥
वहुर न कवहू, सोयवो, जगे कहावें सोय ॥ २९ ॥
जम जीते जीते वहै, जागे वहै प्रमान ॥
वहै सवन शिरमुकट है, चेतन धर तिहँ ध्यान ॥ ३० ॥
ध्यान धरत परब्रह्मको, तोहि परमपद होय ॥
तुहू कहावै सिद्धमय, और कहै कहा कोय ॥ ३१ ॥
चेतन ढील न कीजिये, धरहु ब्रह्मको ध्यान ॥
सुख अनंत शिवलोकमें, प्रगटै महा कल्यान ॥ ३२ ॥
इह विधि जो जागै पुरुप, निज दृग कर परकास ॥
तिहँ पायो सुखशास्वतो, कहै 'भगोतीदास ॥ ३३ ॥
उग्रसेनपुर अवनिपैं, शोभत मुकट समान ॥
तिह थानक रचना कही, समुझ लेहु गुणवान ॥ ३४ ॥

इति सुपनवत्तीसी ।

अथ सूवावत्तीसी लिख्यते ।

दोहा.

नमस्कार जिन देवको, करौं दुहूं करजोर ॥
सुवा वतीसी सुरस मैं, कहूं अरिनदलमोर ॥ १ ॥

आतम सुआ सुगुरु वचन, पढत रहै दिन रैन ॥
करत काज अघरीतिके, यह अचरज लखि नैन ॥ २ ॥
सुगुरु पढावे प्रेमसों, यहू पढत मनलाय ॥
घटके पट जो ना खुलै, सबहि अकारथ जाय ॥ ३ ॥

चौपाई.

सुवा पढायो सुगुरु बनाय । करम बनहि जिन जइयो भाय ॥ भूले चूके कबहु न जाहु । लोभनलिनिपैं दगा न खाहु ॥ ४ ॥ दुर्जन मोह दगाके काज । बांधी नलनी तर धर नाज ॥ तुम जिन बैठ हु सुवा सुजान । नाज विषयसुख लहि तिहँ थान ॥ ५ ॥ जो बैठहु तो पकरि न रहियो । जो पकरो तो दृढ जिन गहियो ॥ जो दृढ गहो तो उलटि न जइयो । जो उलटो तौ तजि भजि धइयो ॥ ६ ॥ इह विधि सूआ पढायो नित्त । सुवटा पढिकें भयो विचित्त ॥ पढत रहै निशदिन ये वैन । सुनत लहै सब प्रानी चैन ॥ ७ ॥ इक दिन सुवटै आई मनै । गुरु संगत तज भज गये बनै ॥ वनमें लोभ नलिन अति बनी । दुर्जन मोह दगाको तनी ॥ ८ ॥ ता तरु विषयभोग अन धरे । सुवटै जान्यो ये सुख खरे ॥ उतरे विषयसुखनके काज । बैठ नलिनपैं बिलसै राज ॥ ९ ॥ बैठो लोभ नलिनपैं जबै । विषय स्वाद रस लटके तबै ॥ लटकत तरैं उलटि गये भाव । तर मूंडी ऊपर भये पांव ॥ १० ॥ नलिनी दृढ पकरै पुनि रहै । मुखतैं वचन दीनता कहै कोउ न बनमें छुडावनहार । नलनी पकरहि करहि पुकार ॥ ११ ॥ पढत रहै गुरुके सब वैन । जे जे हितकर सिखये ऐन ॥ "सुवटा वनमें उड जिन जाहु । जाहु तो भूल खता जिन खाहु ॥ १२ ॥

नलनीके जिन जइयो तीर। जाहु तो तहां न वैठहु वीर॥ जो वैठो तो दृढ जिन गहो। जो दृढ गहो तो पकरि न रहो॥१३॥ जो पकरो तो चुगा न खइयो। जो तुम खावो तो उलटन जइ-यो॥ जो उलटो तो तज भज घइयो। इतनी सीख हृदय मैं लहियो"॥ १४॥ ऐसे वचन पढत पुन रहै। लोभ नलनि तज भज्यो न चहै॥ आयो दुर्जन दुर्गति रूप। पकड़े सुवटा सुंदर भूप॥ १५॥ डारे दुखके जाल मझार। सो दुख कहत न आ-वै पार॥ भूख प्यास वहु संकट सहै। परवस परे महा दुख लहै॥ १६॥ सुवटाकी सुधि बुधि सव गई। यह तौ वात और कछु भई॥ आय परे दुख सागर माहिं। अव इततैं कितको भज जाहिं॥ १७॥ केतो काल गयो इह ठौर। सुवटै जियमें ठानी और॥ यह दुख जाल कटै किहँ भाँति। ऐसी मनमें उपजी खाँति॥ १८॥ रात दिना प्रभु सुमरन करै। पाप जाल काटन चित धरै॥ क्रम क्रम कर काट्यो अघजाल। सुमरन फ-ल भयो दीनदयाल॥ १९॥ अव इततैं जो भजकैं जाउं। तौ नलनीपर वैठ न खाउं॥ पायो दाव भज्यो ततकाल। तज दुर्जन दुर्गति जंजाल॥ २०॥ आये उडत वहुर वनमाहिं। वैठे नर-भव द्रुमकी छाहिं॥ तित इक साधु महा मुनिराय। धर्म देशना देत सुभाय॥ २१॥ यह संसार कर्मवनरूप। तामहि चेतन सुआ अनूप॥ पढत रहै गुरु वचन विशाल। तौ हू न अपनी करै संभाल॥ २२॥ लोभ नलिनपै वैठे जाय। विषय स्वाद रस लटके आय॥ पकरहि दुर्जन दुर्गति परै। तामें दुःख वहुत जिय भरै॥ २३॥ सो दुख कहत न आवै पार। जानत

जिनवर ज्ञानमझार ॥ सुनतैं सुवटा चौंक्यो आप । यह तो मोहि परयो सब पाप ॥ २४ ॥ ये दुख तौ सब मैं ही सहे । जो मुनिवरने मुखतैं कहे ॥ सुवटा सोचै हिये मझार । ये गुरु सांचे तारनहार ॥ २५ ॥ मैं शठ फिरयो करमवन माहिं । ऐसे गुरु कहुँ पाये नाहिं ॥ अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो । सांचे गुरुको दर्शन लयो ॥ २६ ॥ गुरुकी गुणस्तुति वारंवार । सुमिरै सुवटा हिये मझार ॥ सुमरत आप पाप भज गयो । घटके पट खुल सम्यक थयो ॥ २७ ॥ समकित होत लखी सब बात । यह मैं यह परद्रव्य विख्यात ॥ चेतनके गुण निजमहि धरे । पुद्गल रागादिक परिहरे ॥ २८ ॥ आप मगन अपने गुण माहिं । जन्म मरण भय जियको नाहिं ॥ सिद्ध समान निहारत हिये । कर्म कलंक सबहि तज दिये ॥ २९ ॥ ध्यावत आप माहिं जगदीश । दुहुंपद एक विराजत ईश ॥ इहविधि सुवटा ध्यावत ध्यान । दिनदिन प्रति प्रगटत कल्यान ॥ ३० ॥ अनुक्रम शिवपद जियको भया । सुख अनंत विलसत नित नया ॥ सतसंगति सबको सुख देय । जो कछु हियमें ज्ञान धरेय ॥ ३१ ॥ केवलिपद आतम अनुभूत । घट घट राजत ज्ञान संजूत ॥ सुख अनंत विलसै जिय सोय । जाके निजपद परगट होय ॥ ३२ ॥ सुवा बतीसी सुनहु सुजान । निजपद प्रगटत परम निधान ॥ सुख अनंत विलसहु ध्रुव नित्त । 'भैयाकी' विनती धर चित्त ॥ ३३ ॥ संवत सत्रह त्रेपन माहिं । अश्विन पहिले पक्ष कहाहिं ॥ दशमी दशों दिशा परकास । गुरु संगति तैं शिव सुखभास ॥ ३४ ॥

इति सूवाबत्तीसी ।

अथ ज्योतिषके छन्द लिख्यते।

छप्पय।

दिन करके दिन वीस, चंद्र पंचास प्रमानहु।
मंगल विंशति आठ, वुद्ध छप्पन शुभ ठानहु॥
शनिके गण छत्तीस, देव गुरु दिनहि अठावन।
राहु वियालिस लहिय, शुक्र सत्तर मन भावन॥
इम गनहु दशा निजराशितें, सूरज जित संक्रमहिं तित।
शुभफलहिं विचारहु भविक जन, परम धरम अवधार चित॥१॥

मेष वृछिक पति भौम, वृषभ तुलनाथ शुक्र सुर।
मीनराशि धनराशि ईश, तस कहत देव गुरु॥
कन्या मिथुन वुधेश, कर्क स्वामी श्री चंद गणि॥
मकर कुंभ नृप शनी, सिंह राशिहि प्रभु रवि भणि॥
ये राशी द्वादश जगतमें, ज्योतिष ग्रंथ वखानिये।
तस नाथ सात लख भविकजन, परम तत्त्व उर आनिये॥२॥

मेष सूर वृष चंद्र, मकर मंगल गण लिज्जै।
कन्या वुध अति शुद्ध, कर्क सुरगुरुहि भणिज्जै॥
मीन शुक्र सुख करन, तुलहि दुख हरन शनीश्वर॥
मिथुन राहु जय करय, भरय भंडार धनीश्वर॥
इह विधि अनेक गुण उच्च महि, रिद्ध सिद्धि संपति भरय॥
तस नाथ सात लखि भविक जन, पर्म धर्म जिय जय करय॥ ३॥

दोहा.

तुल सूरज वृश्चिक शशी, कर्क भौम वुध मीन॥
मकर वृहस्पति कन्य भृगु, मेष शनिश्चर दीन॥४॥

राहु होय धन राशि जो, ए सब कहिये नीच ॥
परमारथ इनमें इतो, रहिये निज सुख वीच ॥ ५ ॥

इति ज्योतिपछन्द ।

अथ पद राग प्रभाती ।

साहिब जाके अमर है सेवक सब ताके ॥
दीप और पर दीपमें भर रहे सदाके, साहिब० ॥ १ ॥
जामे तीर्थंकर भये चक्री वसु देवा ॥
काल अनन्तहु एकसे, घट वढ नहि टेवा, साहिब० ॥ २ ॥
जाकी उत्पति नित्य है नित होय विनाशा ॥
जीव विना पुद्गल विना सागर सम वासा, सहिब० ॥ ३ ॥
अर्थ कहो याको कहा विनती सौ वारा ॥
नाव कह्यो या पदविषै, तुम लेहु विचारा, साहिब० ॥ ४ ॥

पुनः

कहा तनकसी आयुपैं, मूरख तू नाचैं ॥
सागरथितिधर खिर गये, तू कैसें बांचै, कहा० ॥ १ ॥
देख सुपनकी संपदा, तू मानत सांचै ॥
वे जु नर्ककी आपदा, जर है को आंचै, कहा० ॥ २ ॥
धर्मकर्ममें को भलो परखो 'मणि काचै ॥
भैया आप निहारिये परसों मति मांचै, कहा० ॥ ३ ॥

इति पद.

अथ फुटकर कविता लिख्यते ।

कवित्त.

तेरो ही स्वभाव चिनमूरति विराजत है, तेरो ही स्वभाव सुख सागरमें लहिये। तेरो ही स्वभाव ज्ञान दरसन राजत है, तेरो ही

स्वभाव ध्रुव चारितमें कहिये ॥ तेरो ही स्वभाव अविनाशी सदा दीसत है तेरो ही स्वभाव परभावमें न गहिये । तेरो ही स्वभाव सब आन लसै ब्रह्ममाहिं यातें तोहि जगतको ईश सरदहिये ॥१॥

मोह मेरे सारेने विगारे आन जीव सब, जगतके वासी तैसे वासी कर राखे हैं ॥ कर्मगिरिकंदरामें वसत छिपाये आप, करत अनेक पाप जात कैसे भाखे हैं ॥ विषैवन जोर तामे चोरको निवास सदा, परधन हरवेके भाव अभिलाखे हैं । तापै जिनराज जूके वैन फौजदार चढे, आन आन मिले तिन्हें मोक्ष देश दाखे हैं ॥ २ ॥

जोलों तेरे हिये भर्म तोलों तू न जानै मर्म, कौन आप कौन कर्म कौन धर्म सांच है । देखत शरीर चर्म जो न सहै शीत घर्म, ताहि धोय मानै धर्म ऐसे भ्रम माच है॥नेक हू न होय नर्म वात वातमाहिं गर्म, रहो चाहै हेम हर्म वसनाहीं पांच है।एते पै न गहै शर्म कैसें ह्वै प्रकाश पर्म, ऐसे मूढ भर्ममाहिं नाचै कर्म नाच है॥३

अमल सुपी रहैरी अमल सुपीरहैरी, अमल वही रहैरी अमल सु पीर है । वानी जो गहीरहैरी वानी जो वही रहैरी, वानी न कही लहैरी वानी न कही रहै ॥ परको शरीरहैरी परको नही रहैरी, परको नही रहैरी वहै दुख भीर है । भौदधि गहीरहैरी आयो तिह तीरहैरी, चेतै निज धां कहीरी परहै सही रहै ॥४॥

अरिनके ठट्ट दह वट्ट कर डारे जिन, करम सुभट्टनके पट्टन उजारे हैं । नर्क तिरजंच चट पट्ट देकें वैठ रहे, विषै चौर झट झट्ट पकर पछारे हैं ॥ भौ वन कटाय डारे अष्ट मद दुष्ट मारे, मदनके देश जारे क्रोध हू संहारे हैं । चढत सम्यक्त सूर वढत प्रताप पूर, सुखके समूह भूर सिद्धके निहारे हैं ॥ ५ ॥

१ महल.

वारवार फिर आई वारवार फिर आई, वारवार फेर आई आतमसों हरी है। वारवार जुर आई वारवार जर आई, वारवार जार आई ऐसी नीच खरी है॥ वारवार वार चाहैं वारवार वार चाहै, वारवार चार चाहैं मानो चार दरी है। वारवार धोखो खाहि वारवार कहै काहि, वारवार पोपै ताहि वारवुधि करी है॥ ६॥

अपनी कमाई भैया पाई तुम यहां आय, अव कछु सोच किये हाथ कहा परि है। तव तो विचार कछु कीन्हों नाहिं वंधसमै, याके फल उदै आय हमै ऐसे करि है॥ अव पछताये कहा होत है अज्ञानी जीव, भुगते ही वनै कृति कर्म कहूं हरि है। आगेको संभारिकैं विचार काम वही करि, जातैं चिदानंद फंद फेरकै न धरि है॥ ७॥

नाम मात्र जैनी पै न सरधान शुद्ध कहूं, मूँड़के मुँड़ाये कहा सिद्धि भई बावरे। काय कृश किये कछू कर्म तौ न कृश होहिं, मोह कृश करिवेको भयो तो न चावरे॥ छाँड्यो घरवार पै न छांड्यो घरवार कोऊ, वार वार ढूंढै धन वनै कहूं दावरे। कलियुगके साधुकी वडाई कहो केती कीजे, रात दिना जाके भाव रहैं हाव हावरे॥ ८॥

सवैया.

हे मन नीच निपात निरर्थक, काहेको सोच करै नित कूरो।
तू कितहू कितहू पर द्रव्य है, ताहिकी चाह निशा दिन झूरो॥
आवत हाथ कछू शठ तेरे जु, वांधत पाप प्रणाम न पूरो।
आगेको वेल वढै दुखकी कछु, सूझत नाहिं किधों भयो सूरो॥९॥

छप्पय छंद.

शीश गर्व नहिं नम्यो, कान नहिं सुनै वैन सत ॥
नैन न निरखे साधु, वैनतें कहे न शिवपति ॥
करतें दान न दीन, हृदय कछु दया न कीनी ॥
पेट भरयो कर पाप, पीठ परतिय नहिं दीनी ॥
चरन चले नहिं तीर्थ कहूँ, तिहि शरीर कहा कीजिये ॥
इमि कहै स्याल रे श्वान यह! निंद निकृष्ट न लीजिये ॥ १० ॥

सवैया. (मात्रिक)

मनवचकाय योग तीनहुंसों, सब जीवनको रक्षक होय ॥
झूठे वचन न बोलै कवहू, विना दिये कछु लेय न जोय ॥
शीलव्रतहिं पालैं निरदूषन, दुविधि परिग्रह रंच न कोय ॥
पंच महाव्रत ये जिन भाषित, इहि मगचलै साधु है सोय ॥११॥

कवित्त.

पेटहीके काज महाराजजूको छांड़ देत, पेटहीके काज झूंठ जंपत वनायकें। पेटहीके काज राव रंकको वखान करै, पेटहीके काज तिन्हैं मेरु कहै जायकें ॥ पेटहीके काज पाप करत डरात नाहिं, पेटहीके काज नीच नवें शिर नायकें। पेटहीके काजंको खुशामदी अनेक करै, ऐसे मूढ पेट भरै पंडित कहायकें ॥ १२ ॥

छप्पय.

वीतरागके विंव सेव, समदृष्टी करई ॥
अष्टक द्रव्य चढाय, थाल भरि आगे धरई ॥
पूजा पाठ प्रमान, जाप जप ध्यानहिं ध्यावै ॥
अचल अंग थिरभाव, शुद्ध आतम लौ लावै ॥

(१) कहत.

मंजार निरखि नैवेद्यको, मर्कट फल इच्छा धरहि।
तंदुलहिं चिरा पुष्पहिं भँवर, एक थाल भुंजन करहि ॥१३॥

मात्रिक कवित्त.

जे जिहँ काल जीव मत ग्राही, किरिया भावहोहिं रस रत्त।
कर करनी निज मन आनंदै, वांछा फल चिंतहिं दिन रत्त॥
रहित विवेक सु ग्रंथ पाठ कर, झार धूर पद तीन धरत्त।
तिनको कहिये औगुन थानक, चक्रीधरमें नृपति भरत्त॥ १४॥

कवित्त.

केई केई वेर भये भूपर प्रचंड भूप, बड़े बड़े भूपनके देश छीनलीने हैं। केई केई वेर भये सुर भौनवासी देव, केई केई वेर तो निवास नर्क कीने हैं॥ केई केई वेर भये कीट मलमूत माहिं, ऐसी गति नीचवीच सुख मान भीने हैं। कौड़ीके अनंत भाग आपन विकाय चुके, गर्व कहा करे मूढ़! देख! दृग दीने हैं॥ १५॥

जव जोग मिल्यो जिनदेवजीके दरसको, तव तो संभार कछु करी नाहिं छतियाँ। सुनि जिनवानीपै न आनी कहूं मन माहिं, ऐसो यह प्रानी यों अज्ञानी भयो मतियाँ॥ स्वपर विचारको प्रकार कछु कीन्हों नाहिं, अव भयो वोध तव झूरे दिन रतियाँ। इहाँ तो उपाय कछु वनै नाहिं संजमको, वीत गयो औसर वनाय कहै वतियाँ॥ १६॥

छप्पय.

जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ अघ कैसे आवें।
जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ व्यंतर भज जावें॥

जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ सुख संपति होई।
जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ दुख रहै न कोई॥
नवकार जपत नव निधि मिलै, सुख समूह आवै सरव।
सो महा मंत्र शुभ ध्यानसों,'भैया' नित जपवो करव॥ १७॥

दोहा.

सीमंधर स्वामी प्रमुख, वर्त्तमान जिनदेव॥
मन वच शीस नवायके, कीजे तिनकी सेव॥ १८॥
महिमा केवल ज्ञानकी, जानत है श्रुतज्ञान॥
तातें दुहू बरावरी, भाषे श्री भगवान॥ १९॥
जितनो केवल ज्ञान है, तितनो है श्रुतज्ञान॥
नाव भिन्न यातें कह्यो, कर्म पटल दरम्यान॥ २०॥
विन कषायके त्यागतें, सुख नहिं पावै जीव॥
ऐसे श्री जिनवर कही, वानी माहिं सदीव॥ २१॥
जो कुदेवमें देव बुधि, देव विषै बुधि आन॥
जो इन भावन परिणवै, सो मिथ्या सरधान॥ २२॥
जैसे पटको पेखनो, तैसो यह संसार॥
आय दिखाई देत है, जात न लागै वार॥ २३॥
त्याग विना तिरवो नहीं, देखहु हिये विचार॥
तूंवी लेपहिं त्यागती, तव तर पहुँचै पार॥ २४॥
त्याग वडो संसारमें, पहुँचावै शिवलोक॥
त्यागहितें सव पाइये, सुख अनंतके थोक॥ २५॥
सुगुरु कहत है शिष्यको, आपहि आप निहार॥
भले रहे तुम भूलिकें, आपहि आप विसार॥ २६॥

(१) वीचमें. २ पटवीजना. (खद्योत)

जो घर तज्यो तो कहा भयो, राग तज्यो नहिं वीर ! ॥
साँप तजै ज्यों कंचुकी, विप नहिं तजैं शरीर ॥ २७ ॥
भरतक्षेत्र पंचम समय, साधु परिग्रहवंत ॥
कोटि सात अरु अर्ध सव, नरकहिं जाय परंत ॥ २८ ॥
देत मरन भव सांप इक, कुगुरु अनंती वार ॥
वरु सांपहिं गहपकरिये, कुगुरु न पकर गँवार ॥ २९ ॥
वाघ सिंघको भय कहा ! एकवार तन लेय ॥
भय आवत है कुगुरुको, भवभव अति दुख देय॥ ३० ॥
दृगके दोप न छूटहीं, मृग जिमि फिरत अजान ॥
धृग जीवन या पुरुपको, भृगुकेदास¹ समान ॥ ३१ ॥
केवलज्ञान स्वरूप मय, राजत श्री जिनराय ॥
वंदत हों तिनके चरन, मनवच शीस नवाय ॥ ३२ ॥
कर्मनके वश जीव सव, वसत जगतके माहिं ॥
जे कर्मनको वस किये, ते सव शिवपुर जाहिं ॥ ३३ ॥

इति फुटकर कविता.

अथ परमात्मशतक लिख्यते ।

दोहा.

पंच परम पद प्रणमिके, परम पुरुप आराधि ॥
कहों कछु संक्षेपसों, केवल ब्रह्म समाधि ॥ १ ॥
सकल देवमें देव यह, सकल सिद्धमें सिद्ध ॥
सकल साधुमें साधु यह, पेख निजातमरिद्ध ॥ २ ॥

---

(२) यह निजातम की समृद्धि सम्पूर्ण देवोंमें देव, सम्पूर्ण सिद्ध पर-

---

१ एकाक्षी (काना).

सारे विभ्रम मोहके, सारे जगत मँझार ॥
सारे तिनके तुम परे, सारे गुणहिं विसार ॥ ३ ॥

सोरठा.

पीरे होहु सुजान, पीरे का रे ह्वै रहे ॥
पीरे तुम विन ज्ञान, पीरे सुधा सुवुद्धि कहँ ॥ ४ ॥
विमल रूप निजमान, विमल आन तू ज्ञान में ॥
विमल जगतमें जान, विमल समलतातें भयो ॥ ५ ॥
उजरे भाव अज्ञान, उजरे जिहँतें बंधये ॥
उजरे निरखे भान, उजरे चारहु गतिनतें ॥ ६ ॥

मात्माओंमें सिद्ध और सम्पूर्ण साधुओंमें साधु है इससे हे भव्य उस निजातम रिद्धिको पेख अर्थात् देख ॥

(३) (सारे) सम्पूर्ण जगतमें जो मोहके (सारे) सब विभ्रम हैं, तुम (सारे) उत्तम २ गुणोंको विसारके उन्हींके (सारे) सहारे अर्थात् आश्रय पड़े हो।

(४) हे सुजान! (पीरे) पियरे अर्थात् प्यारे होओ. (पीरे) दुःखित (का रे) क्यों हो रहे हो, और तुम विना ज्ञानके ही (पीरे) पीड़े अर्थात् दुःखित हुए हो, इसलिये अब वुद्धि रूपी अमृत को (पीरे) पान करो।

(५) हे विमल आत्मन्! अपना (विमल) कर्मों से रहित स्वरूप मान करके (तू ज्ञानमें आन) ज्ञानको प्राप्त हो, (विमल) विशेष मलरहित सिद्ध संसारमेंसे ही जानों, क्योंकि विमल मलसहितसे होता है, भावार्थ मोक्ष संसारपूर्वकही होताहे।

(६) हे आत्मन! वह अज्ञानभाव (उजरे) उजड़े अर्थात् विनाश

सुमरहु आतम ध्यान, जिहि सुमरे सिधि होत है ॥
सुमरहिं भाव अज्ञान, सुमरन से तुम होतहो ॥ ७ ॥

दोहा.

मैनकाम जीत्यो वली, मैनकाम रस लीन ॥
मैनकाम अपनो कियो, मैनकाम आधीन ॥ ८ ॥
मैनासे तुम क्यों भये, मैनासे सिध होय ॥
मैनाहीं वा ज्ञानमें, मैनरूप निज जोय ॥ ९ ॥
जोगी सो ही जानिये, वसै संजोगी[1]गेह ॥
सोई जोगी जोग[2]है, सब जोगी सिरतेह ॥ १० ॥

को प्राप्त हुए जिनसे आत्मा (उजरे) उजले अर्थात् प्रगटरूपसे वंद हो रहा था, और जब ज्ञान सूर्य (उजरे) उज्ज्वल देखे गये, तव चारों गतों से (उजरे) छूटे भावार्थ सिद्ध पदको प्राप्त हुए।

(७) हे भाई! ध्यानमें आत्माका स्मरण करो जिसके स्मरणसे कार्य सिद्ध होता है, अथवा जिससे सिद्ध होते हो, अज्ञान भावों के (सुमरेहिं) बिल्कुल नष्ट होजाने से तुम (सुमरनसे) स्मरण करनें योग्य (परमात्मा) हो सक्ते हो।

(८) मैं बलवान कामको न जीत सका और (मैंनकाम) मैं 'नकाम' व्यर्थ रसलीन अर्थात् विषयाशक्त हुआ. मैनकाम कहिये कामदेवके आधीन होकर मैंने अपना काम न किया अर्थात् आत्मकल्यान नहिं किया।

(१०) (पी) हे प्रिय! तुम (तारी) ध्यानको भूल करके अथवा तारी कहिये मोहरूपी नसा पी कहिये पिया और (तारीतन) संसार की अथवा मोहकी रीतियों में लवलीन हो रहेहो, इसलिये हे प्रवीण तुम ज्ञान की (तारी) ताली अर्थात् कुंजी (चाबी) 'खोजो' तलाश करो, जो (तारी)

---

१ तेरहवें गुणस्थानमें २ योग्य है.

तारी पी तुम भूलके, तारीतन रसलीन ॥
तारी खोजहु ज्ञानकी, तारी पति परवीन ॥ ११ ॥
जिनै भूलहु तुम भर्ममें, जिन भूलहु जिनधर्म ॥
जिनैं भूलहिं तुम भूलहो, जिन शासनको मर्म ॥ १२ ॥
फिरे बहुत संसारमें, फिर २ थाके नाहिं ॥
फिरे जबहिं निर्जरूपको, फिरे न चहुं गति माहिं ॥१३॥
हरी खात हो बावरे, हरी तोरि मति कौन ॥
हरी भजो आपा तजो, हरी रीति सुख हौन ॥ १४ ॥

द्व्यक्षरी दोहा.

जैनी जाने जैन नैं, जिन जिन जानी जैन ॥
जेजे जैनी जैन जन, जानैं निज निज नैन ॥ १५ ॥

तुम्हारी (पत) लज्जा है अथवा तुम प्रवीन और तारीपति कहिये ज्ञानरूपी तारीके पतिहो

(१४) हे (बावरे) भोले जीव ! तेरी मति किसने हरली है, जो तू (हरी) (सचित्त वस्तुएँ) खाता है, अब आपो (ममत्व) छोड़ करके (हरी) सिद्ध भगवान को भजो अर्थात् ध्यावो. यही सुखहोनेंवाली (हरी) ताजी अथवा उत्तम रीति है.

(१५) जैनी जैनशास्त्रोक्त नयोंको जानता है, और (जिन) जिन्हों ने उन नयोंको (जिन) नहीं जानीं, उनकी (जै न) जय नहीं होती है. इसलिये (जेजे) जो जो (जैनजन) जिनधर्मके दास जैनी हैं वे अपनी २ (नैन) नयोंको अवश्य ही जानें अर्थात् समझें.

---

(१) एक प्रकारका नशा. (२) मत (निषेधार्थ). (३) जिनेश्वर भगवानको. (४) भ्रमण करें. (५) पलटै, सन्मुख होवै. (६) आत्मरूप.

परमारथ परमें नहीं, परमारथ निज पास ॥
परमारथ परिचय विना, प्राणी रहै उदास ॥ १६ ॥
परमारथ जानें परम, परं नहिं जाने भेद ॥
परमारथ निज परखिवो, दर्शन ज्ञान अभेद ॥ १७ ॥
परमारथ निज जानिवो, यहै परमको राज ॥
परमारथ जाने नहीं, कहौ परम किहि काज ॥ १८ ॥
आप पराये वश परे, आपा डारयो खोय ॥
आपैं आप जाने नहीं, आप प्रगट क्यों होय ॥ १९ ॥
सब सुख सांचेमें वसै, सांचो है सब झूठ ॥
सांचो झूठ वहायके, चलो जगतसों रूठ ॥ २० ॥
जिनकी महिमा जे लखें, ते जिनें होहिं निदान ॥
जिनवानी यों कहत है, जिन जानहु कछु आन ॥ २१ ॥
ध्यान धरो निजरूपको, ज्ञॉन माहिं उर आन ॥
तुम तो राजा जगतके, चेतहु विनती मान ॥ २२ ॥
चेतन रूप अनूप है, जो पहिचानें कोय ॥
तीन लोकके नाथकी, महिमा पावे सोय ॥ २३ ॥
जिन पूजहिं जिनवर नमहिं, धरहिं सुथिरता ध्यान ॥
केवलपदमहिमा लखहिं, ते जिय सम्यकवान ॥२४॥

(२०) सम्पूर्ण सुख सांचेमें अर्थात् सच्चे स्वरूपमें है, और सांचा अर्थात् पौद्गलिकदेह रूपी सांचा बिलकुल झूठा अर्थात् अस्थिर है इसलिये, (सांचो झूठ) इस देहरूपी झूठे, सांचेको त्याग करके, संसारसों (रूठ) रुष्ट हो-कर चल अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर.

१ दुखित. २ परन्तु. ३ आतमा. ४ आप अपनेंको नहीं जानता. ५ तीर्थंकर. ६ हृदयमें ज्ञान लाकरके.

मुद्दत लौं परवश रहे, मुद्दत कर निज नैन ॥
मुद्दत आई ज्ञानकी, मुद्दतकी, गुरु वैन ॥ २५ ॥
ज्ञान दृष्टि धर देखिये, शिष्ट न यामहिं कोय ॥
इष्ट करै पर वस्तुसौं, भिष्ट रीति है सोय ॥ २६ ॥
तुम तौ पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव ॥
लिप्त भये गोरस विषें, ताको कौन उपाव ॥ २७ ॥
वेदभाव सव त्याग कर, वेदे ब्रह्मको रूप ॥
वेदे माहिं सव खोज है, जो वेदे चिद्रूप ॥ २८ ॥
अनुभवमें जोलौं नहीं, तोलौं अनुभव नाहिं ॥
जे अनुभव जानें नहीं, ते जी अनुभव माहिं ॥ २९ ॥
अपने रूप स्वरूपसौं, जो जिय राखै प्रेम ॥
सो निहचै शिवपद लहै, मनसावाचानेम ॥ ३० ॥

(२५) हे आत्मन्! तुम अपने नेत्रोंको (मुदित) मुद्रित अर्थात् वंद करके (मुद्दतलौं) वहुत समय तक परवश अर्थात् पुद्गलके वशमें रहे; परंतु जव ज्ञानकी (मुद्दत) अवधि आई, तव गुरुके वचनोंने (मुद्दत) मदत अर्थात् सहायता कीन्हीं.

(२९) जवतक अनुभव="अनु-पश्चात्' भव=संसारमें नहीं अर्थात् जवतक थोड़े भव वाकी न रहें, तवतक 'अनुभव', अर्थात् सम्यक ज्ञान नहीं है, क्योंकि जो अनुभव (सम्यक ज्ञान) नहीं जानते हैं, वे 'अनुभव', अर्थात् पीछे संसारमें ही पड़े रहते हैं,

(१) उत्तम. (२) प्यार. (३) 'भ्रष्ट' खराव. (४) 'गो' इन्द्रियोंके 'रस' विषयमें. (५) स्त्रीपुंनपुंसकभाव. (६) आत्माका स्वरूप जान. (७) शास्त्रोंमें. (८) पता. (९) यदि चिद्रूपको जानता हो तो. नहीं तो कुछ नहीं. १० मनसे और वचनसे.

प्रश्नोत्तर.

षट दर्शनमें को शिरैं? कहा धर्मको मूल? ॥
मिथ्यातीके ह्वै कहा? 'जैन' कह्यो सु कबूल ॥ ३१ ॥
वीतराग कीन्हों कहा? को चन्दा की सैन? ॥
धांमद्वार को रहत है? 'तारे' सुन शिख वैन ॥ ३२ ॥
धर्म पन्थ कोनें कह्यो? कौन तरै संसार? ॥
कैहो रंकवल्लभ कहा? 'गुरु' वोलै वच सार ॥ ३३ ॥
कहो स्वामि को देव है? कौ कोकिल सम काग? ॥
को न नेह सज्जन करै? सुनहु शिष्य विनराग ॥ ३४ ॥
गुरु सङ्गति कहा पाइये? किहि विन भूलै भर्म? ॥
कहो जीव काहे मयी? 'ज्ञान' कह्यो गुरु मर्म ॥ ३५ ॥
जिनैं पूजैं ते हैं किसे? किहतें जगमें मान? ॥
पंचमहाव्रत जे धरैं, 'धन' वोले गुरु ज्ञान ॥ ३६ ॥

छिन छिन छीजै देह नर, कित ह्वै रहो अचेत ॥
तेरे शिर पर अरि चढ्यो, काल दमामों देत ॥ ३७ ॥
जो जन परसों हित करै, निज सुधि सबै विसार ॥
सो चिन्तामणि रत्न सम, गयो जन्म नर हार ॥ ३८ ॥
जैसे प्रगट पतङ्गके, दीप माहिं परकाश ॥

---

(३१) छहों दर्शनमें जैनदर्शन श्रेष्ठ है, धर्मोंका मूल जैन है, मिथ्यातीके जैन अर्थात् जै (विजय) नहीं होती.

---

(१) घर. (२) गरीवका वल्लभ अर्थात् प्यारा गुरु (भारी) पदार्थ होता है. (३) जो कोयल विना राग (मोटी आवाज) कीहो वह काग समान ही है. (४) जो जिन भगवानकी पूजा करते हैं वे धन अर्थात् धन्य हैं. (५) सूर्य.

तैसे ज्ञान उदोतसों, होय तिमिरको नाश ॥ ३९ ॥
चार माहिं जोलों फिरै, धरै चारसों प्रीति ॥
तौलों चार लखै नहीं, चार खूंट यह रीति ॥ ४० ॥
जे लागे दशवीससों, ते तेरह पंचास ॥
सोरह वासठ कीजिये, छांड चारको वास ॥ ४१ ॥
विधि कीजे विधि भाव तज, सिद्ध प्रसिद्ध न होय ॥
यहै ज्ञानको अंग है, जो घट बूझै कोय ॥ ४२ ॥
वारं व्यसन को नृपति जो, प्रभु जुआ तो ज्ञान ॥
तुम राजा शिवलोकके, वह दुरमतिकी खान ॥ ४३ ॥
आप अकेलो ब्रह्म मय, परयो भरमके फंद ॥
ज्ञानशक्ति जानें नहीं, कैसें होय स्वछंद ॥ ४४ ॥
शिवस्वरूपके लखतहीं, शिवसुख होय अनन्त ॥
शिव समाधिमें रम रहे, शिव मूरति भगवंत ॥ ४५ ॥

---

(४०) जीव जब तक चार माहिं अर्थात् चार गतीन (देव, मनुष्य नरक, तिर्यञ्च)में फिरता है और चार (क्रोध, मान, माया, लोभ) में प्रीति रखता है, तब तक चार अनन्त चतुष्टय (अनन्तसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तबल; अनंतवीर्य) को प्राप्त भी नहीं कर सक्ता है, अर्थात् कर्मोंसे रहित नहीं हो सक्ता है, यह चार खूंटकी रीति है.

(४१) जो दश+बीस=तीस कहिये तृष्णासे अथवा स्त्रीसे अनुरक्त हुए. वह तेरह+पंचास+कहिये तेसठ हैं अर्थात् मूर्ख हैं. इसलिये सोलह+बासट+अठहत्तर कहिये आठ कर्मोंको हतकर तर कहिये तिरो और चार गतिनका वास छोड दो (इसमें संख्या शब्दोंसे श्लेप रूप द्वितीय अर्थ ग्रहण कर कविने चतुराई दिखाई है.)

---

(१) सात.

बालापन गोकुलवसे, यौवन मनमथ राज ॥
वृन्दावन पर रस रचे, द्वारे कुवजा काज ॥ ४६ ॥
दिना दशकके कारणे, सब सुख डारयो खोय ॥
विकल भयो संसारमें, ताहि मुक्ति क्यों कोय ॥ ४७ ॥
या माया सों राचिके, तुम जिन भूलहु हंस ॥
संगति याकी त्यागके, चीन्हों अपनो अंस ॥ ४८ ॥
जोगी न्यारो जोगतें, करै जोग सब काज ॥
जोगें जुगत जानें सबै, सो जोगी शिवराज ॥ ४९ ॥
जाकी महिमा जगतमें, लोकालोक प्रकाश ॥
सो अविनाशी घट विषें, कीन्हों आय निवास ॥ ५० ॥
केवल रूप स्वरूपमें, कर्म कलङ्क न होय ॥
सो अविनाशी आतमा, निजघट परगट होय ॥ ५१ ॥
धर्म्माधर्म्म स्वभाव निज, धरहु ध्यान उरआन ॥
दर्शन ज्ञान चरित्रमें, केवल ब्रह्म प्रमान ॥ ५२ ॥
निज चन्दाकी चाँदनी, जिहि घटमें परकाश ॥
तिहिँ घटमें उद्योत है, होय तिमरको नाश ॥ ५३ ॥

(४६) कृष्णजी बालापनमें गोकुलमें रहे. यौवनमें मथुरामें, और फिर कुब्जा परस्त्रीके रसमें मग्न हो उसके द्वारे वन्दावनमें रहे. इसी प्रकार हे जीव ! तू बालापनमें तो ' गोकुल, अर्थात् इन्द्रियोंके कुल समूहमें अथवा उनकी केलिमें रहा, और जवानीमें मनमथ अर्थात् कामदेवके राज्यमें रहा अर्थात् वशमें रहा, और पीछे वृन्दावन जो कुटुम्ब समूह उसमें रचा. काहेके लिये, 'द्वारे कुवजाकाज, कहिये द्वार जो आस्रव उसके कवजेमें आनेको अथवा द्वार जो मोक्षका उसको कुब्ज अर्थात् वन्द करनेकेलिये,

१ आत्मा. २ मन वचन कायके योग. ३ योग्य (उचित). ४ योग. (ध्यान). ५ मोक्ष.

जित देखत तित चांदनी, जब निज नैनन जोत[1] ॥
नैन मिचेत[2] पेखै नहीं, कौन चांदनी होत ॥ ५४ ॥

ज्ञान भानु[3] परगट भयो, तम अरि नासे दूर ॥
धर्म कर्म मारग लख्यो, यह महिमा रहिपूर ॥ ५५ ॥

जेतन की संगति किये, चेतन होत अजान ॥
ते तनसों ममता धरै, आपुनो कौन सयान ॥ ५६ ॥

जे तन सों दुख होत है, यहै अचंभो मोहि ॥
चेतन सों ममता धरै, चेतन! चेत न तोहि ॥ ५७ ॥

जा तनसों तू निज कहै, सो तन तौ तुझ नाहिं ॥
ज्ञान प्राण संयुक्त जो, सो तन तौ तुझ माहिं ॥ ५८ ॥

जाके लखत यहै लख्यो, यह मै यह पर होय ॥
महिमा सम्यक् ज्ञानकी, बिरला बूझै कोय ॥ ५९ ॥

छहों द्रव्य अपने सहज, राजत हैं जग माहिं ॥
निहचै दृष्टि विलोकिये, परमें कबहूं नाहिं ॥ ६० ॥

जड़ चेतन की भिन्नता, परम देवको राज ॥
सम्यक होत यहै लख्यो, एक पंथ द्वै काज ॥ ६१ ॥

समुझै पूरण ब्रह्मको, रहै लोभ लौं लाय ॥
जान बूझ कूए परै, तासों कहा वसाय ॥ ६२ ॥

जाकी प्रीतिप्रभावसों, जीत न कबहू होय ॥
ताकी महिमा जे धरैं, दुरबुद्धी जिय सोय ॥ ६३ ॥

जाकी परम दशाविषें, कर्म कलङ्क न कोय ॥
ताकी प्रीतिप्रभावसों, जीव जगतमें होय ॥ ६४ ॥

---

१ ज्योतिप्रकाश. २ बन्द होते. ३ सूर्य. ४ चातुर्य्य. ५ ममता.

अपनी नवनिधि छांड़ि कै, मांगत घर २ भीख ॥
जानं बूझ कूए परै, ताहि कहौ कहा सीख ॥ ६५ ॥
मूढ़ मगन मिथ्यातमें, समुझै नाहिं निठोल[1] ॥
कानीं कौड़ी कारणे, खोवै रतनं अमोल ॥ ६६ ॥
कानी कौड़ी विषय सुख, नरभव रतन अमोल ॥
पूरव पुन्यहिं कर चढ्यो, भेद न लहैं निठोल ॥ ६७ ॥
चौरासी लखमें फिरै, रागद्वेष परसङ्ग ॥
तिनसों प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञानको अङ्ग ॥ ६८ ॥
चल चेतन तहां जाइये, जहां न राग विरोध ॥
निजस्वभाव परकाशिये; कीजे आतम वोध ॥ ६९ ॥
तेरें बाग[3] सुज्ञान हैं, निज गुण फूल विशाल ॥
ताहि विलोकहु परमतुम[4], छांडि आल जंजाल ॥ ७० ॥
छहों द्रव्य अपने सहज, फूले फूल सुरंग ॥
तिनसों नेह न कीजिये, यहै ज्ञानको अंग ॥ ७१ ॥
सांच विसारयो भूलके, करी झूठसों प्रीति ॥
ताहीतें दुख होत हैं, जो यह गही अनीति ॥ ७२ ॥
हित शिक्षा इतनी यहै, हंस सुनहु आदेश ॥
गहिये शुद्ध स्वभावको, तजिये कर्म कलेश ॥ ७३ ॥

सोरठा.

ज्यों नर सोवत कोय, स्वप्न माहिं राजा भयो ॥
त्यों मन मूरख होय, देखहि सम्पति भरमकी ॥ ७४ ॥
कहहु कौन यह रीति, मोहि बतावहु परमतुम ॥
तिन ही सों पुनि प्रीति, जो नरकहिं ले जात हैं ॥ ७५ ॥

१ निठल्ला वेकाम मूर्ख. २ फूटी. ३ बगीचा ४ शुद्धात्मा !

अहो! जगतके राय, मानहु एती वीनती ॥
त्यागहु पर परजाय, काहे भूले भरममें ॥ ७६ ॥
एहो! चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी ॥
जो नरकहिं लै जाय, तिनही सों रांचे सदा ॥ ७७ ॥
तुम तौ परम सयान, परसों प्रीति कहा करी ॥
किहिंगुण[1] भये अयान, मोहि बतावहु सांच तुम ॥ ७८ ॥
कर्म्म शुभाशुभ दोय, तिनसों आपौ[2] मानिये ॥
कहहु मुक्ति क्यों होय, जो इन मारग अनुसरैं ॥ ७९ ॥
मायाहीके फन्द, अरुझे चेतनराय तुम ॥
कैसे होहु स्वच्छन्द, देखहु ज्ञान विचारके ॥ ८० ॥
एहो! परम सयान, कौन सयानप[2] तुम करी ॥
काहे भये अयान, अपनी जो रिधि छांड़िके ॥ ८१ ॥
तीन लोकके नाथ, जगवासी तुम क्यों भये ॥
गहहु ज्ञानको साथ, आवहु अपने थैल[3] विषैं ॥ ८२ ॥
तुम पूँनों[4] सम चन्द, पूरण ज्योति सदा भरे ॥
परे पराये फन्द, चेतहु चेतनरायजू ॥ ८३ ॥
जानहिं गुण पर्य्याय, ऐसे चेतनराय हैं ॥
नैनन लेहु लखाय, एहो! सन्त सुजान नर ॥ ८४ ॥
सब कोउ करत किलोल, अपने अपने सहजमें ॥
भेद न लहत निठोलै[5], भूलत मिथ्या भरममें ॥ ८५ ॥

दोहा.

आन न मानहि औरकी, आनैं उर जिनवैन ॥

(८६) जो और (अन्यधर्मवालों) की (आन) आज्ञा अथवा

१ किसकारण. २ चतुरता. ३ मोक्षस्थल. ४ पूर्णिमा. ५ मूर्ख.

आनन देखै परमको, सो आनें शिव ऐन ॥ ८६ ॥
'लो' गनको लागो रहे, 'भ' वजल वोरै आन ॥
ये द्वयअक्षर आदिके, तजहु ताह पहिचान ॥ ८७ ॥
जित देखहु तित देखिये, पुद्गलहीसों प्रीत ॥
पुद्गल हारे हार अरु, पुद्गल जीते जीत ॥ ८८ ॥
पुद्गलको कहा देखिये, धरै विनाशी रूप ॥
देखहु आतम सम्पदा, चिद्विलासचिद्रूप ॥ ८९ ॥
भोजन जल थोरो निपट, थोरी नींद कपाय ॥
सो मुनि थोरे कालमें, वसहिं मुकतिमें जाय ॥ ९० ॥
जगत फिरत कै जुग भये, सो कछु कियो विचार ॥
चेतन अव किन चेतहू, नरभव लह अतिसार ॥ ९१ ॥
दुर्ल्लभ दश दृष्टान्तसों, सो नर भव तुम पाय ॥
विषय सुखनके कारणे, सर्वस चले गँवाय ॥ ९२ ॥
ऐसी मति विभ्रम भई, विषयन लागत धाय ॥
कै। दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय ॥ ९३ ॥
देखहु ,नो निज दृष्टिसों, जगमें थिर कछु आह ॥
सबै वि[illegible]शी देखिये, को तज गहिये काह ॥ ९४ ॥

[illegible]ज्ञा नहीं मानता है, [illegible] अपने हृदय में भगवानके वचनों को धारण करता और परम अर्थात् शुद्ध [illegible]त्माका 'आनन' मुख अर्थात् रूप अवलोकन [illegible] है, वह यथार्थ मोक्ष[illegible]को प्राप्त करता है.

[illegible] लोभ. २ अत्यन्त. ३ युग. ४ श्रेष्ठ. ५ सर्वस्व. ६ दौड़के.
[illegible] इस शतकके ९१. ९२. ९३. नं. के दोहे वैराग्यपचीसीमें भी आये हैं.

केवल शुद्ध स्वभावमें, परम अतीन्द्रिय रूप ॥
सो अविनाशी आतमा, चिद्विलास चिद्रूप ॥ ९५ ॥
जैसो शिवखेतहिं[1] वसै, तैसो या तनमाहिं[2] ॥
निश्चय दृष्टि निहारिये, फेर रंच कहुं नाहिं ॥ ९६ ॥
चेतन कर्म उपाधि तज, रागद्वेषको संग ॥
जे प्रगटै निज सम्पदा, शिव सुख होय अभंग ॥ ९७ ॥
तू अनन्त सुखको धनी, सुखमय तोहि स्वभाव ॥
करते छिनमें प्रगट निज, होय वैठ शिवराव ॥ ९८ ॥
ज्ञान दिवाकर[3] प्रगटते, दश दिशि होय प्रकाश ॥
ऐसी महिमा ब्रह्मकी, कहत भगवतीदास ॥ ९९ ॥
जुगल चन्दकी जे कला, अरु संयमके भेद ॥
सो संवत्सर जानिये, फाल्गुण तीज सुपेद ॥ १०० ॥

इति परमात्मशतकम्.

---

१०० (जुगलचन्दकी जे कला) चन्द्रकी सोलह कलाके जो जुगल (दूने) वत्तीस और संयम (नियम) के भेद सत्रह अर्थात् १७३२ सम्वत्की फाल्गुण सुपेद (सुदी) तीज— "फाल्गुणशुक्ल तृतीया सम्वत् १७३२ विक्रमाव्दको यह परमात्मशतक वनाया."

१ सिद्धपरमात्मा. २ मोक्षक्षेत्रमें. ३ सूर्य.

अथ चित्रबद्धकविता.

अनुष्टुपछन्द,

आपा थान न था पाआ ।
चार मार रमा रचा ॥
राधा सील लसी धारा ।
साद साम मसा दसा ॥ १ ॥

पादानुपादगतागत चित्रम्.

आ	पा	था	न
चा	र	मा	र
रा	धा	सी	ल
सा	द	सा	म

दोहा.

पर्म सेव पर सेव तज, निज उधरन मनधारि ॥
धर्म सेव वर सेव सज, निज सुधरन धनधारि ॥ २ ॥

त्रिपदीबद्धचित्रम्.

प	से	प	से	त	नि	उ	र	म	धा
र्म	व	र	व	ज	ज	ध	न	न	रि
ध	से	व	से	स	नि	सु	र	ध	धा

त्रिपदीपंचकोष्टकं.

पर्म	पर	तज	उध	मन
सेव	सेव	निज	रन	धारि
धर्म	वर	सज	सुध	धन

अन्य सप्तकोष्टकंत्रिपदी.

पर्म	वप	सेव	जनि	उध	नम	धा
से	र	त	ज	र	न	रि
धर्म	वर	सेंव	जिन	सुध	नध	धा

दोहा.

जैन धर्म में जीव की, कही जात तहकीक ॥
अैन धर्म में जीत की, लही बात यह ठीक ॥ २ ॥

एकाक्षर त्रिपदीबद्ध चक्रम्.

जैं	ध	में	व	क	जा	त	की
न	र्म	जी	की	ही	त	ह	क
अै	ध	में	त	ल	वा	य	ठी

कपाटबद्ध चक्रम्.

जै	न	{ }	न	अै
धं	र्म		र्म	ध
में	जी		जी	में
व	की	{ }	की	त
क	ही		ही	ल
जा	त		त	बा
त	ह		ह	य
की	क	{ }	क	ठी

अश्वगतिबद्ध चित्रम्.

जै	न	ध	र्म	में	जी	व	की
क	ही	जा	त	त	ह	की	क
अै	न	ध	र्म	में	जी	त	की
ल	ही	बा	त	य	ह	ठी	क

छन्द (मात्रा १०) अनुप्रासरहित.

न तनमें मैंन तन, तहेम सु सुमहेत ॥
न मनमें मैंन मन, मैं सु मैं हों हों मैं सु मैं ॥ ४ ॥

सर्वतोभद्रगति चित्रम्.

न	त	न	मैं	मैं	न	त	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	म	न	मैं	मैं	न	म	न
मैं	सु	मैं	हों	हों	मैं	सु	मैं
मैं	सु	मैं	हों	हों	मैं	सु	मैं
न	म	न	मैं	मैं	न	म	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	त	न	मैं	मैं	न	त	न

मात्रिक सवैया (३२मात्रा)

या मनके मान हरनको भैया, तू निहचै निज जानि दया।
को हित तोहि विचारत क्यों नहिं, रागरुद्वेष निवारि नया॥
भर्मादिक भाव विछेद करो, ज्यों तोहि लोपन प्रकाश भया।
यामन मानह कोन भलो, नन लोभ न कोह न मान मया॥ ५॥

पर्वतवद्ध चित्रम्.

या
म
न
के मा न
ह र न को भै
या तू नि ह चै नि ज
जा नि द या को हि त तो हि
वि चा र त क्यों न हिं रा ग रु द्वे
ष नि वा रि न या भ र्मा दि क भा व वि
छे द क रो ज्यों तो हि लो प न प्र का श भ या
न

दोहा.

जैन धर्ममें जीवकी, कही जात तहकीक ॥

अैन धर्ममें जीत की, लही बात यह ठीक ॥ ३ ॥

चटाई बद्ध चित्रम्.

जै न ध र्म में जी व की

क ही जा त त ह की क

अै न ध र्म में जी त की

ल ही बा त य ह ठी क

दोहा- करमनसों कर युद्ध तू, करले ज्ञान कमान ॥
तान स्ववलसों परम तू, मारो मनमथ जान ॥ ६ ॥

चक्र बद्ध चित्रम्.

दोहा.

परम धरम अवधारि तू, पर संगति कर दूर ॥
ज्यों प्रगटै परमातमा, सुख संपति रहै पूर ॥ ७ ॥

धनुषबद्धचित्रम्.

आभीर छंद.

रामदेव चित चाहि। सामदेव नित गाहि॥

जामदेव मित पाहि। तामदेव हित ठाहि॥ ८॥

सर्वतो भद्रगति चित्रम्.

दोहा— आप आप अप जाप जप, तप तप खप वप पाप॥
काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप त्रप दप दाप॥ ९॥

विंशातिपत्र कमलाकार बद्ध चित्रम्.

दोहा.

आप आप थप जाप जप, तप तप खप वप पाप ॥
काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप त्रप टप टाप ॥१॥

हारवद्धचित्रम्.

नाग बद्ध चित्रम्.

षटपद.
श्री रिषभ अजित संभव अभिनंदन ।
सुमति नलिन सुपार्श्व चन्द्रप्रभ वंदन ॥
सुविध शीतल श्रांस वासु पूज्य अरि गंजन ।
नाथ जगत भय हरै विमल अभि रंजन ॥
सु अनंत धर्म जिनचन्द शांति अरि कुंति मलि ।
वंदि मूलि मुनि न मि नेमि नरपास श्रीवीरवलि ॥
॥१०॥

दोहा

अरि परि हरि अरि हेरि हरि, घेरि घेरि अरि टारि ॥
करि करि थिरि थिरि धारि धरि, फिरि फिरि तरि तरि तारि ॥११॥

चामराकार बद्ध चित्रम्.

(कमलाकार पूर्ववत् जानना)

द्वितीय नाग बद्ध.
षट्पद.
तजहु पंचरिपु चलन,
रचहु निजपरजी। पापरीतपर
हरहु रटतकिमवरजी ॥ मनधर
पर्म स्वरूप, देख अदभुत बदन । पूरन
निज गुन भरयो, सुमति जीते मदन॥
यहु एक बहुत कर्म नमिलें, छिन २
नृत्य करंत। यहि जान पंच पद सुम-
रिलै, सुभवसागरहि नरंत॥
१२

तृतीय नागबद्ध- बहिर्लपिका.

श्री	पु	र
अ	जि	त
रा	व	न
ना	रा	च
ज	य	ना
लो	च	न
सा	ग	र
सु	न	य
नि	र	खि
शी	त	ल
भु	बिं	बं
अ	ली	न
जै	न	नै
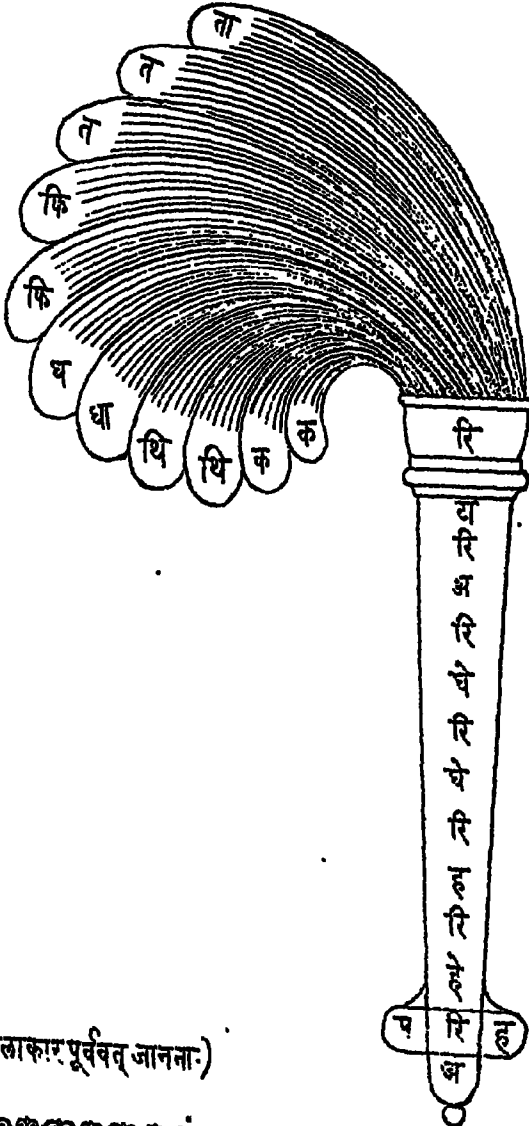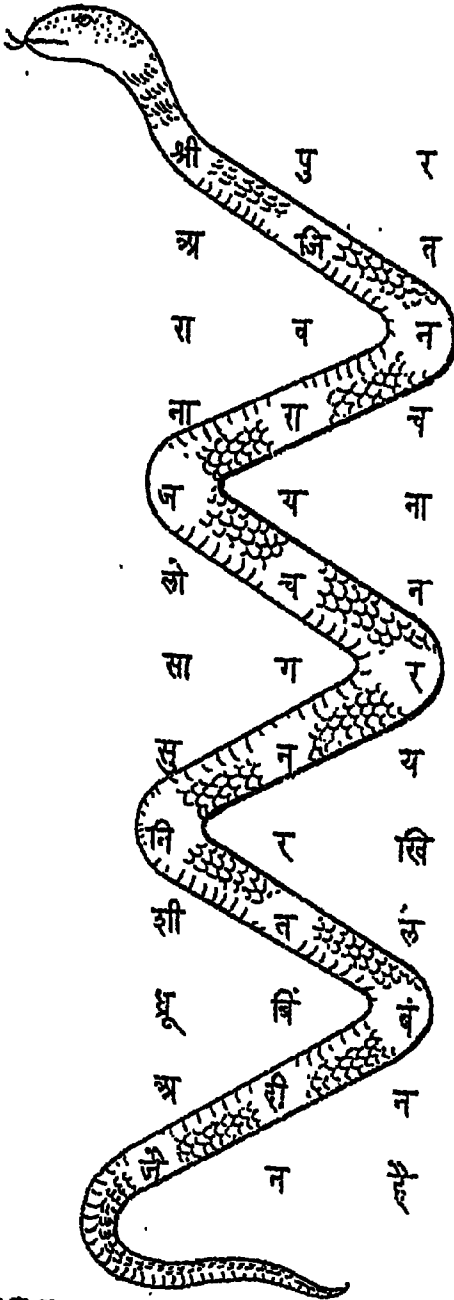
षटपद.

कहां अंसको जनम? नाम कहा दूजे जिनको? । कौन सीय अपहरीं? कहो तीजो संहनको?॥
दयावंत कहा करै? कौन वर्णादिक पेखै?। कों अति जल संग्रहे? श्रवण गुण को कहु लेखै?॥
साधु चलत किम धरणिपर? मह्लिपुर जिन कवन हुव?॥ कवन अकिंचन? कवन प्रभु? कवन शिरोमणि धर्म तुव?॥१३॥

अथग्रन्थकर्त्ता परिचय. चौपाई ।

जंबूद्वीप सु भारत वर्ष । तामें आर्य क्षेत्र उत्कर्ष ॥
तहाँ उग्रसेन पुर थान । नगर आगरा नाम प्रधान ॥ १ ॥
तहाँ वसहिं जिनधर्मी लोक । पुण्यवन्त वहु गुणके थोक ॥
वुद्धिवन्त शुभ चर्चा करें । अखय भँडार धर्मको भरें ॥ २ ॥
नृपति तहाँ राजै औरंग । जाकी आज्ञा वहै अभंग ॥
ईति भीति व्यापै नहिं कोय । यह उपकार नृपतिको होय॥३॥
तहाँ जाति उत्तम वहु वसै । तामें ओसवाल पुनि लसै ॥
तिनके गोत वहुत विस्तार । नाम कहत नहिं आवै पार॥ ४ ॥
सवतें छोटो गोत प्रसिद्ध । नाम कटारिया रिद्धि समृद्ध ॥
दशरथसाहु पुण्यके धनी । तिनके रिद्ध वृद्धि अति घनी ५॥
तिनके पुत्र लालजी भये । धर्मवंत गुणगण निर्मये ॥
तिनके पुत्र भगवतीदास । जिन यह कीन्हों 'ब्रह्मविलास'६॥
जामें निज आतमकी कथा । ब्रह्मविलास नाम है यथा ॥
वुद्धिवंत हँसियो मत कोय । अल्पमती भाषा कवि होय ॥७॥
भूल चूक निज नयन निहार । शुद्ध कीजियो अर्थ विचार ॥
संवत सत्रह पंचपचास । ऋतुवसंत वैशाख सुमास ॥ ८ ॥
शुक्लपक्ष तृतिया रविवार । संघ चतुर्विधको जयकार ॥
पढत सुनत सवको कल्यान । प्रगट होय निजआतम ज्ञान९॥
तिहूं कालके जिन भगवान । वंदन करों जोर जुग पान ॥
भैया नाम भगवतीदास । प्रगट होहु तसु ब्रह्मविलास॥१०॥
वहुत वात कहिये कहा घनी । जीव यहै त्रिभुवनको धनी ॥
प्रगट होय जव केवल ज्ञान । शुद्ध स्वरूप यही भगवान ॥ ११॥

इति श्रीआगरानिवासी भैया भगवतीदासजीकृत ब्रह्मविलास सम्पूर्ण.

विना टका पैसा खर्च किये ही

सैंकड़ों शास्त्रोंका—

दान.

जो कोई महाशय अपने यशके इच्छक हों तथा जिनवाणीका
प्रचार करकें जैनसमाजका हितसाधन करना चाहैं अथवा
शास्त्रदानके द्वारा असमर्थ विद्यार्थियों वा जैनी
भाइयोंको सैंकड़ों ग्रंथोंकी स्वाध्याय करानेका पुण्य
लेना चाहैं तो वे महाशय हमसे पत्रव्यवहार
करें. हमने अपने शारीरिक वा मान-
सिक परिश्रमसे ऐसा ही एक उपाय
निकाला है कि, उसकेद्वारा सैकड़ों
ग्रंथ विना पैसा खर्च किये
ही दान कर सक्ते
हैं.

यदि
इच्छा हो तो नीचे लिखे पतेसे हमारे साथ
पत्रव्यवहार करें.

आपका
दास—
पन्नालाल जैन मैनेजर—
जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय.
पो० गिरगांव, वम्बई.